प्रोफेसर रामदरश मिश्र

(सरस्वती सम्मान से सम्मानित व्यक्तित्व)
(संरक्षक)

INTERNATIONAL PEER- REVIEWED(REFEREED) JOURNAL

RNI (UPHIN/2021/80567)

साहित्य मेघ

ISSN: 2583 - 5750

(साहित्यिक हिंदी मासिक)
प्रकाशन का आरंभिक वर्ष/माह : अप्रैल २०२१

सम्पादक मण्डल

भारत

प्रोफेसर ओमप्रकाश सिंह
opsingh@mail.jnu.ac.in
विभागाध्यक्ष भारतीय भाषा केन्द्र,
जे.एन.यू.)नई दिल्ली
M:(९८९९४४६८६१)

प्रोफेसर चन्द्रदेव यादव
cyadav@jmi.ac.in
विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग,जामिया मिल्लिया इस्लामिया,नई दिल्ली
M: (९८१८१५८७४५)

प्रोफेसर जितेंद्र श्रीवास्तव
jksrivastava@ignou.ac.in
विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग,
इंदिरा गांधी ओपन विश्वविद्यालय (इग्नू),
नई दिल्ली M:9818913798

प्रोफेसर राज कुमार
M:09415201281
drrajkumar@bhu.ac.in
हिंदी विभाग,काशी हिंदू विश्वविद्यालय ,वाराणसी

प्रोफेसर प्रभाकर सिंह
(9450623078)
prabhakarhindi@bhu.ac.in
प्रोफेसर,हिंदी विभाग,काशी हिंदू विश्वविद्यालय,वाराणसी

प्रोफेसरश्रद्धा सिंह ९४१५५३०५८७
shraddha.singh@bhu.ac.in
प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ.आभा गुप्ता ठाकुर (9450960955)
abhag.hindi@bhu.ac.in
प्रोफेसर, हिंदी विभाग,काशी हिंदू विश्वविद्यालय,वाराणसी

डॉ.गाजुला राजू (9059379268)
raju.g@allduniv.ac.in
सहायक प्राध्यापक,हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज २११००२

डॉ.जर्नादन 9026258686
janardan@allduniv.ac.in
(सहायक प्राध्यापक)
हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज

डॉ. बिजय कुमार रबिदास
bkrabidas@allduniv.ac.in
9432345604
सहायक आचार्य हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज २११००२

विदेश

प्रोफ़ेसर उल्फत मुहीबोवा
ulpatxon_muxibova@tsuos.uz
M:998946443037
Tashkand State University of Oriental Studies, Tashkand,Uzbekistan

प्रोफेसरग्युज़ेल स्त्रेलकोवा
str@iaas.msu.ru.
M: +79199933635
एशिया और अफ़्रीकी देश अध्ययन संस्थान,मास्को राजकीय विश्वविद्यालय,मास्को

Farzaneh Azam Lotfi
f.azamlotfi@ut.ac.ir
Associate Professor
Department of foreign languages
University of Tehran,Iran

परामर्श मण्डल

भारत

डॉ. प्रताप सहगल
(९८१०६३८५६३)
प्रो. अब्दुल बिस्मिल्लाह
(९८११३०६३३१)
डॉ.शशि सहगल
(९८९९१६६१२९)
प्रो. कृपाशंकर पाण्डेय
(९९८४५२३७०६)
प्रो. मोहन
(९८७११११५५००)
(दिल्ली विश्वविद्यालय)
प्रो.लालचंद राम
९९९००७०८९५
विभागाध्यक्ष,एन सी ई आर टी
प्रो.राम आहलाद चौधरी
(९४३२०५१५००)
(विभागाध्यक्ष कलकत्ता विश्वविद्यालय)
प्रोफेसर (पूर्व) शत्रुघ्न कुमार
shatrughnakumar@ignou.ac.in
प्रो.चंदा देवी
(८००४९२८४४१)(इला. यू.)
प्रो. रामकली सराफ
(९३८९४३२१६५)
डॉ० प्रभा पंत
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग,
एम०बी०रा०स्ना०महाविद्यालय,हल्द्वानी
dr.prabhapant@gmail.com
प्रो. रूबी जुत्शी
कश्मीर यूनिवर्सिटी
९४१९०५८५८५

विदेश

प्रो. सरन घई
(±१ (६४७) ९९३-०३३०)
कनाडा
तेजेन्द्र शर्मा
(४४ ७४००३१३४३३)
(Ùet.kesâ.)
प्रो. पुष्पिता अवस्थी
(±९१ ७०५८४-६२९५१)
(www.pushpitaawasthi.com)
नीदरलैंड
डॉ. सुरेश चंद्र शुक्ल
'शरद आलोक'
(±४७ ९००७०३१८)
(speil.nett@gmail.com)
नॉर्वे
अनुराग शर्मा
(±१ (४१२) ६९२-१३६२)
(indiasmart@gmail.com)
अमेरिका
रेखा राजवंशी
(±61 403116301)
ऑस्ट्रेलिया

प्रकाशक, मुद्रक और मालिक डॉ. मो. सलीम ने अज़ीम इंडिया प्रिंटर्स, अटाला, प्रयागराज (इलाहाबाद) में छपवा कर ४८३ अटाला, प्रयागराज (इलाहाबाद) से प्रकाशित किया।सम्पादक डॉ.मो.सलीम,४८३अटाला,प्रयागराज (इलाहाबाद)सभी मामले प्रयागराज (इलाहाबाद) की ही अदालत में होंगे।

साहित्य मेघ

sahityamegh.com
sahityamegh@gmail.com

जुलाई २०२३

डॉ. दानिश	डॉ.राजविंदर कौर
९६९६४८६३८६	९७५९९१२४३४
प्रधान संपादक	सह-संपादक (अवैतनिक)
डॉ.तबस्सुम जहां	श्रीमती एस.के.'सुमन'
९८७३१०४११०	९१७०६८०२३५
उप-संपादक (अवैतनिक)	आर्थिक सलाहकार

वार्षिक : १५००/- (भुगतान के लिये :९६९६४८६३८६)

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों की इतिहास-दृष्टि	डॉ० राजेन्द्र गौतम	4
साहित्य और मानवीय मूल्य	डॉ.पूरनचंद टंडन	11
नो बार' एक्ससेप्टिंग दलित	डॉ. बिजय कुमार रबिदास	17
सिंधी भाषा ः इतिहास और वर्तमान	डॉ.राजीव कुमार सिंह	21
'कथा साहित्य का पुनर्पाठ' का अनुशीलन	आदर्श उपाध्याय	24
स्वाधीनता आंदोलन के दौर की जेल में लिखी गयी हिंदी कविताएँ	कुलदीप कुमार	33
बाबासाहेब अम्बेडकर के क्रांतिकारी विचार और दलित साहित्य की अवधारणा	शंतनु वसंतराव नैताम	38
जीवनीपरक उपन्यास के रूप में 'भारती का सपूत'	अभिषेक कुमार पाण्डेय	45
अभिधा लक्षणा व्यापार विमर्श	रत्नेश पाण्डेय	52
मधु कांकरिया के उपन्यासों में नारी- विमर्श '	आकांक्षा मिश्रा	57
छूटे पन्नों से उड़ान संभव है!	आकांक्षा	61
मिथिलेश्वर के उपन्यासों में बदलते ग्रामीण जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति	अनूप कुमार	82
'हल्दीघाटी' और 'जौहर' के आईने से श्यामनारायण पाण्डेय का स्वातंत्र्य चिंतन	अमन वर्मा (दीप अमन)	85
नारी स्वाधीनता का संघर्ष और 'एक जमीन अपनी' उपन्यास	मनीष कुमार शुक्ला	89
भारतीय चिंतन परम्परा में वेदान्त दर्शन	भुमिका मनसुख सोलंकी	92
ताजमहल के आंसू'	सौरभ मिश्र	97
दिल्ली यूनिवर्सिटी कोर्स में शामिल करेगा दिव्यांग साहित्य	समाचार	98
डॉ. बी.आर. अंबेडकर विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी साहित्य' विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन	समाचार	99

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों की इतिहास-दृष्टि

डॉ० राजेन्द्र गौतम

पूर्व प्रोफेसर
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का सर्जन उनके व्यक्तित्व की भाँति परम्परा का विकास होते हुए भी सभी परम्पराओं को उत्तीर्ण करता हुआ निरन्तर आधुनिक के साथ जुड़ता रहा है। उन्हें आलोचक, निबन्धकार अथवा उपन्यासकार के रूढ़ वृत्तों में नहीं बाँधा जा सकता, वरन् उनके लेखन का सहज स्वभाव लोक-संस्कृतिपरक है। इसीलिए उनका साहित्य सांस्कृतिक-सामाजिक अतीत से जुड़ा रह कर भी वर्तमान का मार्गदर्शन करता है। इसी के लिए उन्होंने निबन्ध लिखे हैं; जो निबन्धों में नहीं अँट पाया, उसे हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन के क्रम में कहा और जब उन्हें लगा कि अब भी वे अपने मन्तव्यों की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं कर पाये हैं तो उन्होंने उपन्यास लिखे। यो इस फक्कड़ बाबा ने कविताएँ भी लिखी हैं। उनके द्वारा व्यवहत ये सभी विधाएँ एक दूसरी की पूरक हैं। इनकी केन्द्रीय प्रवृत्ति अतीत के माध्यम से प्रगतिशील मूल्यों की स्थापना है पर अतीत से जुड़ कर भी वे पुनरुत्थानवादी मानसिकता से ग्रस्त नहीं रहे। उनकी पारम्परिकता जड़ता का प्रतिकार करती है. उनकी स्वच्छन्द वृत्ति सामाजिक इतिहास की गरिमा से भास्वर है, उनकी विराट् उन्मुक्तता मानवता की स्थापना का ध्येय लिए है। वे निरन्तर परिवर्तन का उद्घोष करने वाले ऊर्जा-पुज थे। अतीत को वे मानवानुभव के रूप में देखते हैं। उनके उपन्यास उनके व्यक्तित्व को सम्पूर्णता का प्रतिनिधित्व करते हैं।

डॉ० रघुवीर सिंह की विशिष्ट गद्य-कृति 'शेष स्मृतियाँ' की 'प्रवेशिका' में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने एक मार्मिक सत्य का उद्घटन करते हुए लिखा है 'हृदय के लिए अतीत मुक्तिलोक है, जहाँ वह अनेक बन्धनों से छूटा रहता है और अपने शुद्ध रूप में विचरता है। वर्तमान हमें अन्धा बनाये रहता है। मैं समझता हूँ कि जीवन का नित्य स्वरूप दिखाने वाला दर्पण मनुष्य के पीछे रहता है, आगे तो बराबर खिसकता हुआ परदा रहता है।' लगता है आचार्य द्विवेदी ने अपने इस ज्येष्ठ आचार्य के मन्तव्य को ही अपने सम्पूर्ण लेखन का आदर्श बना लिया है। इसलिए आगे खिसकते हुए परदे के भ्रमों से सचेत रहते हुए प्रतिविम्बनधर्मी दर्पणी अतीत के अन्वेषण में निरन्तर रचनारत रहे। इस दर्पणी अतीत को वर्तमान के लिए प्रासंगिक बनाना आजीवन उनकी प्राथमिकता रही।

आचार्य द्विवेदी जी द्वारा प्रणीत चार उपन्यासों 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारुचन्द्रलेख', 'पुनर्नवा एवं -- 'अनामदास का पोथा' में से प्रथम तीन का सम्बन्ध सीधे रूप में भारत के मध्यकालीन इतिहास से जुड़ा है। जबकि 'अनामदास का पोथा अथ रैकव आख्यान' का इतिहास शुद्ध इतिहास न होकर पौराणिक इतिहास है। यों उन्होंने १९-६-१९७६ के 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित मनोहरश्याम जोशी को दिए गए एक साक्षात्कार में अपने उपन्यासों को शुद्ध 'गल्प' ही माना है और गल्प को 'कल्प' कहा है। लेकिन उनका यह कथन उसी प्रकार का 'वंचक कथन' है, जिस प्रकार उनके उपन्यासों के आमुख पाठक

को थोड़ा बहकाने की कोशिश करते हैं। वह बात दूसरी है कि उन की यह 'वंचना' सोद्देश्य है। इसके माध्यम से वे पाठक को तथ्यों के शुष्क रेगिस्तान से निकाल कर सर्जना की रम्य वीथियों में ले आते हैं। निरवधि प्रवहमान काल में मूल्यों के संस्थापक के रूप में वे अपने उपन्यासकार को सजग रखते हैं, जिसके परिणामस्वरूप इनके उपन्यासों में कथानक ऐतिहासिकता के किनारे अवश्य प्रदान करता है परन्तु उनके बीच प्रवाहमान सदानीरा में उनकी संवेदना के द्रवित हिमालय का ही जल है।

आचार्य द्विवेदी के पात्र एक इतिहास को अवश्य प्रस्तुत करने हैं लेकिन यह इतिहास उन तथ्यान्वेषी विद्वानों के इतिहास से भिन्न है, जिन्होंने राजप्रासाद से बाहर झाँकने का प्रयास नहीं किया है। यह इतिहास एक ओर सम्बद्ध कालखण्ड के सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश को सम्पूर्णता के साथ अभिव्यक्त करता है. दूसरी ओर उस युग की सम्पूर्ण मूल्यवत्ता को भी संस्थापित करता चलता है। यदि द्विवेदी जी ने अपने लोक-संस्कृति-उन्मुख उपन्यासों को 'गल्प' कहा है तो इसलिए कि वे इनकी प्रामाणिकता के लिए पुरातत्त्व के अवशेषों के संग्राहक के पास नहीं गए हैं। इसकी अपेक्षा वे मानव-वृत्तियों की प्रामाणिकत्ता पर विश्वास करते हुए नित्य विकासमान सामाजिकता को प्रस्तुत करते हैं। इतिहास का उपयोग उनके उपन्यासों में एक ऐसे व्यापक फलक को पृष्ठभूमि के रूप में रखने के लिए हुआ है, जिसके द्वारा प्रगतिशील मानवता की स्थापना की जा सके। क्योंकि अपने महत्त्वपूर्ण उपन्यास 'पुनर्नवा' में समस्त ऐतिहासिक-सामाजिक संघर्ष के चित्रण के बाद वे जिस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, उसकी सामयिक एवं शाश्वत सार्थकता असंदिग्ध है। उनका निष्कर्ष है : 'अगर निरन्तर व्यवस्थाओं का संस्कार नहीं होता रहेगा तो एक दिन व्यवस्थाएँ तो टूटेंगी ही, अपने साथ धर्म को भी तोड़ देंगी।' मनुष्य सामाजिक विकास के क्रम में अनेक व्यवस्थाओं का निमार्ण करता है। किंतु यह भी एक कटु सत्य है कि ये व्यवस्थाएँ क्रमशः रूढ़ होकर मनुष्यता का ही दमन आरम्भ कर देती हैं। आचार्य द्विवेदी इस दमन का प्रतिकार व्यवस्थाओं के निरन्तर संस्कार के द्वारा ही सम्भव मानते हैं। उनकी इस मान्यता में इतिहास के प्रति जड़ताग्रस्त मानसिकता का प्रतिकार भी स्पष्ट है।

प्रस्तुत सन्दर्भ में साहित्य एवं इतिहास के पारस्परिक सम्बन्ध पर कुछ विचार करना अप्रासंगिक न होगा। ये दोनों संकाय स्वतन्त्र होते हुए भी परस्पर सम्बद्ध हैं। इतिहास साहित्य का उपजीव्य है और साहित्य इतिहास की प्रामाणिकता का एक आधार पहला मानव अनुभवों का आलेख है, दूसरा उन अनुभवों के आलोक में जीवन की भावमयी व्याख्या प्रस्तुत करता है लेकिन दोनो एक दूसरे के निकट होकर भी अपनी प्रक्रिया में भिन्न हैं। एक मूलतः तथ्यपरक है. दूसरा भावाश्रित एक शास्त्र की ओर झुकता है दूसरा शास्त्र के बाहर-भीतर सब को घेरे रहता है। यों इतिहास भी मानव मूल्यों की स्थापना का उद्देश्य लेकर चलता है लेकिन उसका मूल लक्ष्य प्रामाणिक सत्यों का अन्वेषण है। साहित्य में जिस युग का चित्रण होता है, उसमें केवल वही नहीं होता जो बाहर से दिखलाई देता है, बल्कि उसमें वह भी चित्रित होता है, जो कवि मन की आँखों से देखता है। इतिहासकार यदि समग्रता में से प्रासंगिक सामग्री चुन लेता है तो साहित्यकार इतिहास द्वारा उपलब्ध कराए गए आलेखों के आधार पर समग्रता को प्रासंगिक बनाता है। एक की प्रवृत्ति विश्लेषणात्मक है, दूसरे की संश्लेषणात्मक मानव के क्रिया व्यापार का अध्ययन दोनों का विषय है पर साहित्य भाव प्रक्रिया को चित्रित करता है, इतिहास उसकी परिणति का। द्विवेदी जी इतिहास की असदिग्ध महत्ता के प्रति पूर्णतः आश्वस्त थे। क्योंकि वे इतिहास-बोध को पीछे देख सकने वाला मनुष्य का तीसरा नेत्र मानते थे। उनका कहना है 'इतिहास-प्रेम की बात में नहीं जानता मगर इतिहास-बोध को पलायन समझना आधुनिकता नहीं आधुनिकता का विरोध है। आधुनिकता की तीन शर्तें हैं। एक इतिहास-बोध, दूसरे इस लोक में ही कल्याण होने की आस्था, तीसरी व्यक्तिगत कल्याण की जगह सामूहिक कल्याण की एषणा। मैं आग्रहपूर्वक यह कहना चाहता हूँ कि जो इतिहास को स्वीकार न करे वह आधुनिक नहीं और जो चैतन्य को न माने वह इतिहास नहीं (१९ जून, १९७६ के 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में प्रकाशित पूवीक्त साक्षात्कार) । द्विवेदी जी द्वारा प्रस्तुत की गई आधुनिकता की यह व्याख्या लीक पीटने वाले आधुनिक बुद्धिजीवियों को अवश्य देख और सीख लेनी चाहिए। स्पष्टतः यहाँ वे इतिहास की अपेक्षा इतिहास-बोध के महत्व को रेखांकित करते हैं। वे उस शाश्वततावादी इतिहास-बोध के पोषक नहीं हैं, जो पाखण्ड रचते हुए पारलौकिक

जगत् का प्रलोभन देकर मनुष्य के कल्याण की बात करता है। वे तो इसी लोक में मनुष्य के कल्याण का लक्ष्य रखते हैं। आधुनिकता की जिन तीन शर्तों का उल्लेख आचार्य जी ने किया है, उनमें तीसरी शर्त और भी रेखाकनीय है। व्यक्तिगत कल्याण द्विवेदी जी के साहित्य का लक्ष्य कभी नहीं रहा है। वह उनकी इतिहास दृष्टि का भी आधार नहीं बना है। उनका गन्तव्य तो सामूहिक कल्याण हो रहा है। 'चारुचन्द्रलेख' में नाटी माता द्वारा चन्द्रलेखा को पिलाई गई यह डाँट द्विवेदी जी के इसी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती हैः 'जहाँ तक तुमने अशेष मानव जाति को रोग जरा, मृत्यु से मुक्त करने का संकल्प किया था, वहाँ तक तो तुमने ठीक किया, परन्तु बाद में तुमने अपनी सिद्धि को व्यक्तिगत अहंकार का विषय बना लिया, वहाँ तुम तपोभ्रष्ट हो गई।'

जिस उत्तर-आधुनिक युग में इतिहास की गठरी को अप्रासंगिक कह कर एक ओर पटक कर चल देने का परामर्श दिया जा रहा हो, वहाँ द्विवेदी जी का यह मजबूत दावा कि इतिहास को अस्वीकार कर आधुनिक नहीं हुआ जा सकता, विशेष अर्थ रखता है। यह दावा इसलिए भी अर्थवान है क्योंकि वे चैतन्यहीन इतिहास को स्वीकार नहीं करते। उन्होंने अपने इतर साहित्य की भाँति उपन्यासों में भी इतिहास की ही साधना की है और उनमें उनकी उपर्युक्त इतिहास-दृष्टि का हो प्रतिपादन हुआ है। पूर्वोक्त साक्षात्कार में वे यह भी स्वीकार करते हैं कि इतिहास की साधना को शव-साधना कहना चाहें तो कह लें लेकिन 'इतिहास कुलीन शव है उसे आँधे मुँह लिटा कर हम जैसे कई साधना करते हैं। कई मुँह उलटने पर घबरा जाते हैं... विरल ही हैं जो प्रलोभनों से विमुख होकर उस शक्ति से साक्षात्कार कर पाते हैं, जो वर्तमान को अधिक सुघर बनाने में और भविष्य के लिए सही मार्ग सुझाने में सहायक होती है।' लोक से लिया गया यह अघोरी रूपक श्रमण संस्कृति की एक धारा की ओर तो ध्यान खींचता ही है, मध्यकालीन धर्म-साधना की पत्ते भी खोलता है।

उपर्युक्त शव-साधना के सन्दर्भ में द्विवेदी जी ने यद्यपि विनम्रतावश स्वयं को अधूरा साधक कहा है लेकिन अपने उपन्यासों में उन्होंने इतिहास-सिंधु के मंथन से मानवता के कल्याण के लिए जो अमृत निकाला है, वह निस्संदेह उन्हें प्रलोभन-विमुख साधक ही प्रमाणित करता है। उनके सभी उपन्यास 'वर्तमान को अधिक सुघर बनाने में और भविष्य के लिए सही मार्ग सुझाने में सहायक हैं. इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। 'बाणभट्ट' की 'चन्द्रदीधिति', 'चारुचन्द्रलेख' की 'मैना' और 'पुनर्नवा' की 'मृणाल' को केन्द्र में रखकर उन्होंने भारतीय मध्यकालीन इतिहास का अवगाहन कर जिस उद्बोधनपरक साहित्य की रचना की, वह अपनी प्राणवत्ता में अजेय, प्रासंगिकता में सार्थक, सर्जनात्मकता में सौष्ठवमय एवं संवद्येता में सर्वग्राह्य है। पुरुष वर्ग में भी उन्होंने चण्ड, चन्द्रमौलि और रैक्व जैसे मस्तमौला दिखते पर भीतर गहरे अन्तर्द्वंद्वों से गुजरते पात्रों की सृष्टि की है।

'आणभट्ट की आत्मकथा' के बाण हर्ष और चन्द्रदीधिति जैसे ऐतिहासिक पात्र उस आधारभूमि का निर्माण करने में पूर्णतः समर्थ है, जिस पर रचनाकार ने अपना कला-सौध खड़ा किया है। इस उपन्यास की केन्द्रीय समस्या वाणकालीन राजवंशीय इतिहास को प्रस्तुत करने की नहीं है, वरन् मुख्य समस्या भट्टिनी की रक्षा की है। भट्टिनी नारी की गरिमा एवं उदात्तता का, समस्त भारतीयता का, अपने समाज की आस्था का प्रतीक है और स्वयं भट्टिनी के लिए उस आस्था का प्रतीक-चिह्न है. 'महावराह'! 'महावराह' की रक्षा नहीं हो पाती। स्वतन्त्रता का संघर्ष परोक्ष भयों से आक्रान्त हो जाता है। अतीत के इस संघर्ष को आचार्य जी अपने युग की भूमि पर खड़े हुए देख रहे थे। स्पष्टतः उस अतीत में वर्तमान की ही समस्याएँ प्रतिबिम्बित होती हैं। यह उपन्यास लगभग उसी दौर में रचा जा रहा था, जब हम राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर रहे थे पर इस युग-चितक की आशंकाएँ साधार थीं। उनके समक्ष यह बड़ा प्रश्न था कि क्या राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेने से व्यक्ति की अस्मिता की रक्षा सम्भव हो पाती है? क्या इस स्वतन्त्रता से ही व्यक्ति का विवेक स्वयं उसका मार्ग-दर्शक बन सकता है? वे जानते थे कि ऐसा नहीं है। इसलिए उन्हें इतिहास की शव साधना के माध्यम से यह सन्देश देना पड़ा, 'सत्य के लिए किसी से न डरना, गुरु से भी नहीं, मंत्र से भी नहीं, वेद से भी नहीं।' शास्त्रों के भय से थर-थर कांपती जनता को दिया गया यह अभय-सन्देश संजीवनी से कम नहीं। भय व्यक्ति की स्वतन्त्रता का -- उसके विवेक का विनाशक है। वर्षों से पराजय का बोध सहती आ रही जाति को अतीत के

मन्थन से लेखक भयमुक्ति का जो मंत्र देता है, वहीं उसके लिए सर्वाधिक प्रासंगिक है। ऊपर भट्टिनी की रक्षा को नारी गरिमा की रक्षा मानने का जो संकेत दिया गया है, वह आज विशेष रूप से प्रासंगिक है। आज के 'स्त्री विमर्श' के घटाटोपी मंथन में से जो सार तत्त्व निकल कर आता है, साहित्य में उसका करणीय पक्ष (ऑपरेटिव क्लॉज) नारी की गरिमा की रक्षा का प्रयास ही है। 'स्त्री विमर्श' का दूसरा प्रमुख पहलू स्त्री का दमन करने वाली पुरुष की वर्चस्ववादी मानसिकता का विरोध भी है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में महामाया द्विवेदी जी की विशेष सृष्टि है। महामाया इसी पुरुष वर्चस्व के विरोध में खड़ी है। वही भट्टिनी की वेदना को सही ढंग से पहचान पाती है। तभी वह कहती हैः 'पुरुष का सत्य और है, नारी का सत्य और!' भट्टिनी वास्तव में सामंती समाज की मानसिकता की शिकार है। यह मानसिकता जिस प्रकार धरती को और राज्यों को हस्तगत कर लेना चाहती है, उसी तरह इसके मन में स्त्री के धर्षण की, हस्तगत कर लेने की, अधिकार जमाने की कामना भी रहती है। इस मानसिकता के अवशेष अभी मिटे नहीं हैं। यह सही है कि जिस समय बाणभट्ट की आत्मकथा' की रचना हुई थी, तब 'स्त्री विमर्श' का वैसा आन्दोलनकारी रूप नहीं था, जैसा आज है लेकिन एक प्रगतिशील रचनाकार फासीवादी मनोवृत्तियों पर चोट किए बिना नहीं रहता। द्विवेदी जी निस्संदेह ऐसे प्रगतिशील रचनाकार थे जिन्हों रोग की जड़ को पहचाना था। अपने उपन्यासों में ऐतिहासिक अनुभव के फलक पर घटनाक्रम को चित्रित कर वे इन रोगों का निदान खोजते ही नजर आते हैं।

स्त्री विमर्श और दलित विमर्श के सन्दर्भ में आज विवाद का एक बड़ा मुद्दा यह भी रहा है कि क्या स्त्री और दलित से जुड़ी समस्याओं पर स्त्री और दलित को ही लिखने कहने का अधिकार है? इस सन्दर्भ भी द्विवेदी जी का दृष्टिकोण वैज्ञानिक और तर्कसंगत हैं। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में आया यह कथन जरा ध्यान से देख लेना चाहिएः 'स्त्री के दुःख इतने गंभीर होते हैं कि उसके शब्द उसका दशमांश भी नहीं बता सकते। सहानुभूति के द्वारा ही उस मर्म वेदना का किंचित आभास पाया जा सकता है।' समस्या के दोनों पक्ष यहाँ प्रस्तुत हैं। स्त्री के दुःखों की निजता का उसका केवल अनुभूति-सापेक्ष होने का सच झुठलाया नहीं जा सकता पर सहानुभूति को अपनी एक भूमिका जरूर है। भले ही इस सहानुभूति से उस वेदना का 'किंचित आभास ही पाया जा सके' तथापि पुरुष वर्चस्व वाले समाज की कुठित संवेदनाओं को यह सहानुभूति कचोटती जरूर है। लेखक यही कर सकता है। उसके पास परकाया प्रवेश की क्षमता है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। आज के स्त्री विमर्श और दलित विमर्श के सन्दर्भ में द्विवेदी जी द्वारा प्रस्तावित 'सहानुभूति' का साथ छोड़ना उचित न होगा।

भारतीय समाज की समस्या जितनी वर्ग-भेद के कारण है, उतनी ही वर्ण-भेद के कारण भी है। बीसवीं शताब्दी मानवीय अस्मिता की पहचान की शताब्दी रही है। हिंदी साहित्य का वह दौर, जिसमें द्विवेदी जी रचनारत थे, इस अस्मिता को पहचानने और इसे गौरव दिलाने के लिए ही संघर्षरत दिखलाई देता है। स्तर-भेद की त्रासद विडम्बनाओं को लक्षित कर द्विवेदी जी पात्र के माध्यम से एक कचोटने वाला सवाल उठाते हैंः 'यहाँ इतना स्तर भेद है कि मुझे आश्चर्य होता है कि यहाँ के लोग कैसे जीते हैं? तुम यदि किसी यवन कन्या से विवाह करो तो इस देश में एक भयंकर सामाजिक विद्रोह माना जाएगा। जहाँ भारतवर्ष में समाज में एक सहस्र स्तर हैं, वहाँ उनके समाज में कठिनाई से दो-तीन होंगे। भारतवर्ष में जो ऊँचे हैं, वे बहुत ऊँचे हैं, जो नीचे हैं, उनकी निचाई का कोई आर-पार नहीं।' नयी सदी में पहुँच कर हम भी हम इस स्तर भेद मिटाने में सफल नहीं हुए हैं। कई बार तो अन्तरजातीय विवाह के सन्दर्भ में घोर प्रगतिशील बुद्धिजीवियों को अति घोर दकियानूसी प्रवृत्ति सामने आती है। द्विवेदी जी ने भारतवर्ष के समाज में जातियों का जितना समग्रतापरक अध्ययन किया है, उतना कम ही समाजशास्त्रियों ने किया है। उनका यह अध्ययन दलित विमर्श के वर्तमान आन्दोलन को भी दिशा दे सकता है। द्विवेदी जी के उपन्यासों में उनकी विशेष इहिास दृष्टि का प्रतिपादन है तथापि उन्होंने इनमें ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा नहीं को है। अति विराट् स्तर पर ऐतिहासिक तथ्यों को सर्जनात्मकता में ढालने की कला 'चारुचन्द्रलेख' में देखी जा सकती है। जन-शक्ति के संगठन की यह अद्भुत रचना हैं। इस उपन्यास का कथानक द्विवेदी जी के इतर अध्ययन का भी केन्द्र बिंदु रहा है। 'मध्यकालीन धर्म

साधना' का अध्ययन 'चारुचन्द्रलेख' के समानान्तर ही सम्भव है। उनके इतिहास दर्शन और साहित्य दर्शन का सार लोकसंग्रह है जबकि अनेक मध्यकालीन धर्म-साधनाएँ लोक-विमुख थीं। इस उपन्यास के कुछ कथन देखिए १. 'उन बकवादी निठल्लों के चक्र में न पड़ी। ये बिगाड़ना जानते हैं, संवारना नहीं। इन्होंने व्यक्तिगत साधनाओं के द्वारा सत्य को खण्डित किया है।' २. 'परित्यक्त शिशुओं और लांछित बन्धुओं के क्रन्दन और आह से वायुमण्डल व्याप्त है, उस समय भी क्या सहज समाधि सम्भव है?' ३. 'माया को घनीभूत करने का ढोंग करने वाले लोग माया के सब से मजबूत वाहन सिद्ध हुए हैं।.. सिद्धियाँ मानव को कुछ विशेष बल नहीं देतीं। एक साधारण किसान, जिसमें दया माया हैं, सच-झूठ का विवेक है, और और बाहर-भीतर एकाकार है, वह भी बड़े से बड़े सिद्ध से ऊँचा है।' ४. 'सिद्धियाँ मानव को पशु, पक्षी, अजगर, प्रेत बना दें, किंतु मनुष्य को मनुष्य बनाने में तब तक सहायक न होगी, जब तक सहज शरीरधर्मी को ही परम लक्ष्य समझा जाता रहेगा। ' ५. 'साधारण प्रजा हमें सिद्ध समझती है, वह श्रद्धा से नहीं भय से पूजा करती है। आज आततायी के खड्गाघात से सिद्धियों का सारा खिलवाड़ टूट कर गिर गया है।'

ये कथन उस अंध-काल में उठने वाले प्रश्नों पर सार्थक टिप्पणियाँ तो हैं ही, उस समूचे विश्रृंखल परिवेश पर भी टिप्पणियाँ हैं, जिसका स्वरूप लगभग ऐसा थाः 'चन्द्रलेखा का सिंहवाहिनी, महिषमर्दिनी और जनपद पार्वती रूप दो नावों पर एक साथ सवारी करने से कीलित होकर मानवीय भूमि से स्खलित हो गया है। सातवाहन साक्षात शक्ति से विच्युत होकर निःशक्त हो गये हैं। रानी से प्रेरित होकर भी विद्याधर ग्रहकक्षाओं के असत्य व्यापार में भ्रमित है । सिद्धयोगी गोरख प्रचारित योगसाधना से अपसृत होकर मांसपिड नारी के विनोदन में षोडशी कुलकन्याओं की सिद्धि में, पंचमकार, पंच पवित्र और चतुश्चंद्र की निवीर्य साधनाओं में लीन होकर सामाजिक कल्याण से उपरत हैं। सारे जगत को भूल कर व्यष्टि-मुक्ति की चिंता के कारण कल्याणाभिनिवेश कुंचित हो गया है। संगठित होकर धर्म-संप्रदाय जनता को आतंकित कर रहे हैं...।' यदि कान लगा कर सुनें तो इन विडम्बनाओं की प्रतिध्वनियाँ आज भी हमारे चारों ओर गूंज रही हैं।

प्रश्न उठता है कि इस विश्रृंखलता से दो-चार होने का उपाय क्या है? द्विवेदी जी ने वह उपाय इतिहास के अनुभव से ही प्रस्तुत किया है। वे जानते हैं कि जन-जागृति के बिना परिवर्तन सम्भव नहीं क्योंकि ' राजाओं, राजपुत्रों और देवपुत्रों को आशा पर निश्चेष्ट बने रहने का निश्चित परिणाम पराभव है।' स्वतन्त्रता के पश्चात् भी हम कुछ पुराने राजाओं और कुछ नए सामतों के हाथों में देश की बागडोर सौंप कर निश्चिंत हो गये हैं। बीच-बीच में 'देवपुत्रों' की कृपा का फल भी जनता चखती रही है। इसका परिणाम आज हम देख हो रहे हैं। प्रजाजन की आज जो स्थिति है, वह इन नए राजाओं, राजपुत्रों और देवपुत्रों के भरोसे बदलने वाली नहीं है। यदि वह बदलेगी तो विराट् जन-जागृति से ही।

भारत का पिछली अनेक शताब्दियों का इतिहास राजनैतिक पराजय का ही नहीं, जनता के पराभव का भी करुण आख्यान रहा है। इस पराजय की जड़ बहुत गहरी हैं। राजनैतिक पराजय सामाजिक मनोबल के टूटने की अन्तिम परिणति होती है और सामाजिक मनोबल के टूटने का कारण है बिखराव! व्यक्तियों के स्वार्थ के कारण समूह के कल्याण की उपेक्षा भारतीय जनमानस की नैतिकता के बल को मध्यकाल में प्रचलित सामाजिक विकृतियों ने भी तोड़ा है। नैतिक बल शौर्य का आधार होता है और नपुंसक कायरता लज्जाजनक हिंसा को जन्म देती है। 'चारुचन्द्रलेख' टूटते-बिखरते मध्यकालीन समाज की मानसिक टूटन का और शेष शक्तियों को संयमित कर सम्पूर्ण बल के साथ विरोधों के सामने डटने के संकल्प का महाकाव्यात्मक निरूपण है। सातवाहन के रूप में युद्धरत भारतीय शक्ति आगे चलकर अपनी अन्तःप्रेरणाओं को खोकर गरिमाच्युत होती. है, लेकिन आचार्य जी ने इस अतीत का, इस इतिहास का निरपेक्ष चित्रण नहीं किया है बल्कि उसके माध्यम से वह उद्बोधनात्मक ऊर्जा प्रवाहित की है, जो किसी जाति के अस्तित्व के लिए अनिवार्य है। 'चारुचन्द्रलेख' के एक-एक पृष्ठ से आह्वान का स्वर गुंजित होता है, जो पाठक में अदम्य उत्साह का संचार करता है। यह है इस आह्वान का स्वरः 'सूर्य-चन्द्र और अग्नि के पुत्रो, क्या बेखबर सो रहे हो? धरती कसमसा उठी हैं, नगाधिराज की पथरीली धरती में दरार पड़ती दिखाई दे रही है, गंगा जमना की शीतल धारा सूखती नजर आ रही है। किस दिन तुम्हारा

तेज काम आएगा? किस दिन के लिए इस पवित्र धरती ने अन्न उड़ेल-उड़ेल कर तुम्हारा पालन किया था? उठो, जागो एक हो जाओ।' एक हो जाना कब से भारत की बहुत बड़ी समस्या रही है!

गुप्तकालीन इतिहास से सम्बद्ध उपन्यास 'पुनर्नवा' में घटनात्मक एवं पात्रात्मक विस्तार अधिक है। देवरात एवं मृणालमंजरी के अभिजात एवं उदात्त परिणय से प्रारम्भ होने वाली यह रचना लोक-आख्यान के नायक गोपाल को अपना केन्द्र बिन्दु बना लेती है। आभीर संस्कृति का मूर्त चित्र उकेरती हुई यह कृति आततायी एवं दुर्दम शक्तियों से नैतिक शौर्य के संघर्ष की महागाथा को युग सन्दर्भ के साथ उद्घाटित करती है। यह परम्परा का आख्यान ही नहीं है, इसमें परिवर्तमान सामाजिकता के प्रगतिशील मूल्यों की अभिव्यक्ति भी है। यह उपन्यास समाज के प्रत्येक वर्ग का विराट् फलक पर चित्रण करता है।

'अनामदास का पोथा रूढ रूप में ऐतिहासिक नहीं है लेकिन भारतीय वैदिक एवं पौराणिक साहित्य का एक अपना इतिहास-बोध है जिसके अनुरूप ही सुदूर अतीत से छान्दोग्य उपनिषद् की यह गाथा एक राष्ट्र के सांस्कृतिक इतिहास से जुड़ी हुई है। प्रत्यक्ष रूप में यह रैक्व की वैयक्तिक गाथा प्रतीत होती है परन्तु गहन स्तर पर यह एक पूरी सामाजिक व्यवस्था को समेटे है। इस व्यवस्था का आदर्श है 'प्रकृति को सुनियन्त्रित रूप में चलाने का नाम ही संस्कृति है। संतान परम्परा को नष्ट न होने देना– 'प्रजातन्त्र या व्यवच्छेसी।' इसके अतिरिक्त इसमें गहरा यथार्थ बोध भी है। रैक्व की साधना अन्ततः इस निष्कर्ष पर पहुंचती है 'मेरे पास अगर वह बुद्धि की परीक्षा लेने आएगी तो उसे गाड़ी खींच कर दीन-दुखियों तक खाद्य पहुंचाने को कहूंगा। इसी में उसकी बुद्धि की परीक्षा हो जाएगी। माँ, जो दीन-दुखियों की सेवा नहीं कर सका, वह क्या बुद्धि की परीक्षा करेगा? मै अब थोड़ा-थोड़ा रहस्य समझने लगा हूँ। कोरी वाग-वितंडा ज्ञान नहीं है।' स्पष्टतः आचार्य जी ने वाग-वितंडा के लिए ये ऐतिहासिक पोथियाँ नहीं रचीं बल्कि वे ऐतिहासिक ज्ञान के सहारे जीवन-अम्बुधि में बहुत गहरे उतरे हैं। १९४०-५० के आसपास शोषण के प्रतिकार का साहित्य रचने का दावा तो बहुतों ने किया, पर संवेदना की आँच 'निराला', केदारनाथ अग्रवाल अथवा नागार्जुन जैसे गिने-चुने रचनाकारों में ही थी। निस्संदेह वह आँच आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंधों और उपन्यासों में मौजूद है। गाड़ी खींच कर दीन-दुखियों तक खाद्य पहुंचाने वाला रैक्व काम-ज्वर से पीडि़त भी हुआ है पर जब वह संसार की सबसे बड़ी व्याधि से-- भूख से-- परिचत होता है तो वह 'उसकी बुद्धि की परीक्षक' और अनुराग की आधार शुभा को भी दीन-दुखियों की सेवा में प्रवृत्त करता हैं।

बीसवीं शताब्दी में आधुनिकता बोध की चर्चा विशेष रूप से होती रही पर अधिकांश के लिए आधुनिकता बोध संकीर्ण यथार्थ और परम्परा की अस्वीकृति से भिन्न नहीं रहा, जबकि द्विवेदी जो के लेखन में (उनके उपन्यासों में विशेषकर) आधुनिकता बोध का स्वस्थ रूप उपलब्ध होता है। उन्होंने परम्परा से जुड़ कर इतिहास का विश्लेषण किया है। लेकिन उनके द्वारा निरूपित परम्परा एवं विश्लेषित इतिहास आधुनिक संवेदना के साथ दृढ़ता के साथ अन्तर्ग्रन्थित है। उनका इतिहास-बोध मूल्य-निरपेक्ष तथ्यों के आकलन की अपेक्षा जिजीविषा की परम्परा में अभिव्यक्ति पाता है और जीवन के नैरन्तर्य की पुष्टि करता है। गत दो शताब्दियों में भारतीय मनीषा और जनसमुदाय को एक तीव्र बौद्धिक आलोड़न के बीच से गुजरना पड़ा है। 'स्व' को पहचान कर उसे वर्तमान में अस्तित्वमय रखना इसकी सबसे बड़ी समस्या रही है और इस समस्या का समाधान मिल पाया है, इतिहास-बोध से। द्विवेदी जी की व्युत्पन्न सिसृक्षा ने आधुनिक संवेदना को सही रूप में अभिव्यक्त करने के लिए अपने उपन्यासों को सांस्कृतिक-सामाजिक इतिहास के साथ से जोड़ा है। उन्होंने यदि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में वैयक्तिक जागरूकता को अभय का मंत्र दिया है तो 'चारुचन्द्रलेख' में राष्ट्रीय एवं सामाजिक गरिमा को बनाए रखने का मार्ग दिखलाया है। 'पुनर्नवा' में जीवन के उदात्त आदर्शों की स्थापना और व्यवस्था-परिमार्जन पर बल दिया गया है। 'अनामदस का पोथा' में शास्त्र-ज्ञान की अपेक्षा लोकवेद की प्रतिष्ठा और स्वतन्त्रता के सही अर्थों का उद्घाटन किया गया है। इन उपन्यासों में मध्यकालीन धर्म-साधना की विकृतियों का खुलासा कर नारी की गरिमा तथा संघर्ष को मुखरित किया है।

द्विवेदी जी के उपन्यासों में ऐतिहासिकता के तत्त्वतः दो रूप हैं। एक रूप सम्बद्ध युगों के आचार-विचार, सामाजिक रूढि़यों-रीतियों, धर्म-साधना, उपासना पद्धति,

पारिवारिक परिवेश तथा सभ्यता आदि के सजीव चित्रण का है। दूसरा वह रूप है, जहाँ व संस्कृति-प्रवाह तथा विचार-प्रवाह के माध्यम से अतीत से जुड़ते तो हैं पर अन्ततः उनका इतिहास-बोध अतीतातीत होकर वर्तमान के भविष्य का निर्माण करने वाली शक्ति बन कर अवतरित होता है। यह रचनात्मक शक्ति ही द्विवेदी जी द्वारा की गई इतिहास की शव-साधना की उपलब्धि है। एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि ऐतिहासिकता का कोई भी रूप उनके उपन्यासों की कला में व्याघातक नहीं बना है। औपन्यासिकता पर इतिहास कहीं हावी नहीं हुआ। कहीं भी साहित्य को इतिहास के सामने छोटा नहीं होना पड़ा। न 'शब्दार्थ का साहित्य' कहीं खण्डित हुआ न ही 'लोकोत्तर आनन्द' कहीं बाधित हुआ है। 'निविड़ निज मोह संकट' का निवारण भी द्विवेदी जी के उपन्यासों में बखूबी हुआ है पर इनसे बढ़ कर महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि उनके उपन्यासों का शिल्प हर दृष्टि से आधुनिक भी है। इसका कारण द्विवेदी जी के व्यक्तित्व में परम्परा और आधुनिकता का संतुलन है। भारतीय काव्यशास्त्र की समृद्ध परम्परा से तो उन्होंने स्वयं को जोड़ा ही है। उसके अधुनातन विकास से भी वे कटे नहीं हैं। आज के साहित्य के पूर्व पर्याय 'काव्य' को ग्रहण कर ही वे उपन्यास रचना में सलग्र होते हैं, इसी से उनमें पाश्चात्य पद्धति के औपन्यासिक तत्वों के निर्वाह के साथ-साथ भारतीय नाट्य तत्त्वों का संश्लिष्ट संगुफन हैं। 'अनामदास का पोथा' इस दृष्टि से सर्वाधिक नाट्य तत्त्वों से सम्पन्न है जबकि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में महाकाव्यात्मक तत्त्व अधिक प्रचुरता से उपलब्ध होते हैं। दो दशक पूर्व 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय तथा कई अन्य संस्थाओं द्वारा 'बाणभट्ट की आत्मकथा' तथा 'अनामदास का पोथा' का सफल मंचन इन उपन्यासों में निहित नाट्य-तत्त्वों एवं महाकाव्यात्मक तत्त्वों के कारण भी सम्भव हुआ है। कथ्य की दृष्टि से इन उपन्यासों की सफलता के मूल में इनकी ऐतिहासिकता का वह चिर आस्थामय स्वरूप है, जिसने अपने आराध्य को, अपने पूज्य को इन्होंने क्षण भर के लिए भी आखों से ओझल नहीं होने दिया। उनका आराध्य देव है साधारण मनुष्य! उनके लिए भट्टिनी की गरिमा अतुलनीय है पर निपुणिका की करुणा भी साधारण नहीं। 'चन्द्रलेखा' महान् है पर मैना का औदार्य भी असीम है। 'पुनर्नवा' की मृणालमंजरी या मंजुला ने नारी के महत्त्व को दृष्टि-वृत्त से बाहर नहीं किया है और 'अनामदास का पोथा' का रैक्व तो 'भूखे, नंगे, दरिद्रों' के अस्तित्व के कारण समाधि तक नहीं लगा पाया। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में आए कुमार कृष्णवर्धन का यह कथन द्विवेदी जी के उपन्यासों के इतिहा-बोध की सही पहचान कराता है 'इतिहास साक्षी है कि देखी-सुनी बात को ज्यों का त्यों कह देना या मान लेना सत्य नहीं है। सत्य वह है, जिससे लोक का आत्यंतिक कल्याण होता है, ऊपर से वह जैसा भी झूठ क्यों न दिखाई देता हो, वही सत्य है। लोक अथवा जन-कल्याण प्रधान वस्तु है। वह जिससे सधता हो वही सत्य है।' स्पष्टतः आचार्य द्विवेदी ने अपने इतर साहित्य की तरह उपन्यासों में भी एक ही देवता की पूजा की है, वह देवता है, साधारण मानव उनके उपन्यासों के इतिहास-बोध का भी यही सार है! उनका स्पष्ट कथन हैः 'मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ, जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षिता से न बचा सके, उसके हृदय को परदुःख कातर और संवेदनशील न बना सके उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।'

संपर्कः ९०६, झेलम, प्लाटः ८, सेक्टरः ५, द्वारका, नई दिल्ली-११० ०७५ मो. ९८६८१४०४६९

साहित्य और मानवीय मूल्य

डॉ.पूरनचंद टंडन

उत्तर आधुनिक घटाटोप से चतुर्दिक घिरे हुए समय में जब साहित्य और मानवीय मूल्य कहीं गहरे अवमूल्यन के दुर्दम दबाव में हों तथा 'पॉपुलर कल्चर' की पैरवी कर साहित्य को मनोरंजन का एक माध्यम मात्र मान लिया गया हो और जिस आधुनिक समाज से उसका पड़ोस और अपना परिवार तक छूटता जा रहा हो तब साहित्य और मानवीय मूल्यों की बात करना एक नज़र में मूढ़ता प्रतीत हो रही है, पर आज आप सब सुधीजनों के बीच इस चुनौती को स्वीकार कर कुछ कहने का दुस्साहस कर रहा हूँ तो इसके पीछे साहित्य और मानवीय मूल्यों के प्रति मेरी अप्रतिहत आस्था ही प्रमुख है। निजी तौर पर मेरे लिए साहित्य खंड-खंड में बंटी कोई वस्तु नहीं है और मानव मात्र की एकात्मकता भी मन में कहीं ऐसे गहरी धंसी है कि राष्ट्र, राज्य, समाज, जाति वर्ण के आधार पर मानव-मानव के बीच खड़ी की गई दीवारें साहित्य का सजग पाठक होने के नाते मुझे बराबर व्यर्थ लगती रही हैं। मुझे साहित्य प्राचीन, मध्ययुगीन और नवीन रूपों में अलग-अलग नहीं दिखता, बल्कि अपनी संश्लिष्टता में वह मुझे और आप सबको भी भीतर तक डूबोता-मथता रहा है और अपने 'सहित' भाव के साथ हमें मानव-मात्र के प्रति, समग्र मानवीय मूल्यों को आत्मसात करने के प्रति निरंतर प्रेरित-प्रबोधित भी करता चलता है। मोटे तौर पर सच्चा, साहित्य, मानवीय अनुभूतियों की यथार्थ अभिव्यक्ति है। न पशु और न ही देवता-साहित्य दोनों के पल्ले नहीं पड़ता, दोनों से सरोकार नहीं रखता। साहित्य का विशुद्ध सरोकार मानव-मात्र से है। इसलिए साहित्य को किसी भी युग और काल में प्रयासपूर्वक मानव-मूल्यों का प्रवक्ता घोषित करने को कोई तुक नहीं है, बल्कि सच यह है कि शुरू से मानवीय मूल्यों का संश्लिष्ट भाव ही 'सत्यं शिवं सुंदरं' के रूप में साहित्य के तत्व, सत्व और मूल स्वरूप को विनिर्मित करता रहा है।

दरअसल मानव को सच्चे अर्थों में मानव बनाने का श्रेय जिस तरह उदात्त मानवीय मूल्यों को है, उसी तरह साहित्य को सबके लिए विनिर्मित और प्रतिष्ठित करने का श्रेय भी, मानवीय मूल्यों को ही है। ऋग्वेद का ऋषि कहता है कि ''मैं अपने कवित्व को बादलों में से फूटकर बाहर आने वाली पावस की धारा समझता हूँ।'' इस तरह पावस की धारा की तरह निर्बाध और वेगपूर्ण साहित्य वह संगीत है जो कि मानव के अंतर्मन से उद्भूत होता है। आचार्य भर्तृहरि ने 'साहित्य, संगीत, कला विहीनः, साक्षात्पशुः पुच्छ विषाण हीनः कहकर वस्तुतः साहित्य का गौरवगान ही नहीं किया है, बल्कि साहित्य का मानव से अनिवार्यतः सम्बद्ध भी बताया है। गौरतलब है कि मूल्य ऊपर से थोपे नहीं जा सकते, किसी भौतिक वस्तु के समान मनचाहे रूप में बनाए नहीं जा सकते, बल्कि मूल्य तो मनुष्य की अंतरचेतना में बसे संस्कारों की चेतना धारा के रूप में अंतर्व्याप्त रहते हैं। इस तरह जीवन मे श्रेष्ठता गुणवत्ता व महत्ता की दृष्टि से जो आवश्यक व उपयोगी है, वही मूल्य है। भारतीय संस्कृति व जीवन-दर्शन में चार पुरूषार्थ - धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष - जीवन के लक्ष्य माने गए हैं, जिनमें से प्रथम तीन को 'मूल्य' माना गया है। दयानंद सरस्वती के चिंतन व दर्शन से प्रस्तुत मूल्य 'आत्मवत सर्वभूतेषु' के सिद्धांत पर आधारित थे। डॉ. नगेन्द्र ने 'आनंद' और 'कल्याण' को मानव जीवन के दो व्यापक मूल्या माना। 'अश्रेय' मानव-मूल्यों की व्यावहारिकता और अर्थवत्ता सिद्ध करते हुए उन्हें 'योगः कर्मषु कौशलम' का ही प्रतिरूप मानते हैं। महादेवी वर्मा ने नैतिकता और मानवीय मूल्यों को एक ही माना है क्योंकि विकास जीवन का धर्म है

और विकास के इस क्रम में मनुष्य ने कुछ जीवन-मूल्यों का आविष्कार किया है। ये सिद्धांत में नैतिक मूल्य कहे जाते हैं और व्यवहार में हम उन्हें मानवीय मूल्य कहते हैं, परंतु वे व्यापक रूप से जीवन मूल्य ही हैं।' (चिंतन के क्षण-महादेवी वर्मा, पृ. ६३)

पाश्चात्य विचारकों में प्लेटो ने मानव जीवन में मूल्यों को सर्वोच्च स्थान दिया है। मार्क्सवादी धारणा के अनुसार मूल्य समाज-सापेक्ष हैं, क्योंकि मनुष्य के सामाजिक प्राणी होने के कारण उसके जीवन में 'अर्थ' का महत्व असंदिग्ध है और उसके जीवन के समस्त मानवीय मूल्य अर्थ से सम्बध होकर सर्वहारा वर्ग की समस्याओं और उनके समाधान से जाकर जुड़ा जाते हैं। वर्ग भेद रहित समाज की कल्पना स्वयं में समस्त मानवीय जीवन मूल्यों की आधार भूमि के रूप में सिद्ध होती है। क्रोचे जीवन में सौंदर्यात्मक, धार्मिक व बौद्धिक मूल्यों के अतिरिक्त नैतिक व आर्थिक मूल्यों को भी महती स्थान देते हैं। जॉन दैवी मूल्यों को निरपेक्ष व शाश्वत न मानकर मानव निर्मित मानते हैं। स्वार्क्ष ने जहाँ 'स्वतंत्रता' को मूल्यों का स्रोत घोषित किया, वहीं अज्ञेय ने भी स्वतंत्रता को मानव संस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण मूल्य माना है, क्योंकि यही उसे पशुत्व से मुक्ति दिलाती है। कतिपय विचारकों के अनुसार मानवता सभी मानवीय मूल्यों की समष्टि है। मानव अपने जीवन में जो कुछ भी कार्य करता है, उन सबके पीछे मानवता उद्देश्य रूप में निहित रहती है, यही मानवता समस्त मानवीय मूल्यों का आधार भी है। यह मानव एवं मूल्यों के बीच एक अदृश्य कड़ी के रूप में कार्यरत है, क्योंकि जब मनुष्य में किसी अन्य मनुष्य के प्रति मंगल की या हित की भावना जागृत होगी है तो यह अवस्था मानवता कही जाएगी और बाद में वह अपने उद्देश्य को जब व्यवहार में लाएगा तो वह 'मूल्य' कहे जाएंगे। डॉ. धर्मवीर भारती के अनुसार सार्थकता का पहलू सबसे बड़ा मानव मूल्य है। डॉ. जगदीश गुप्त की धारणा है कि बिना मानवीय संवेदनाओं को केंद्र में रखे 'मूल्य' की कल्पना नहीं की जा सकती।

दरअसल, मानवी जीवन मूल्यों की प्रयोगशाला के समान है, जहाँ नए मूल्यों के आविष्कार, प्राप्त मूल्यों के परिष्कार तथा अप्रासंगिक मूल्यों के बहिष्कार की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। दूसरे, यह बात महत्वपूर्ण है कि आज के चिंतन ने उन पुरानी धारणाओं को खारिज कर दिया है, जिनके अनुसार समस्त मूल्यों का स्रोत एक मनुष्येतर सत्ता, ईश्वर को माना जाता था। आज मूल्यों का स्रोत मनुष्य है। मूल्य मानव सापेक्ष होते हैं और उनका महत्व मात्र मनुष्य के संदर्भ में ही है। मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है। वह अपनी विवेक शक्ति के कारण ही मूल्यों को निर्धारित करता रहता है। मूल्यों का बोध वस्तुतः उसकी विकासशील दृष्टि का ही परिचायक है।

जहाँ तक साहित्य और मानवीय मूल्यों का सवाल है, तो यह सर्वज्ञात है कि साहित्य पर सभ्यता का दबाव पुराना है। समाज में हमारे आस-पास और मूल्यों की दुनिया में जो कुछ होता है, उसका सीधा असर रचना पर पड़ता है। इनमें होने वाले परिवर्तन के प्रति उसकी एक अनंत हिस्सेदारी रहती है। निर्मल वर्मा के अनुसार अंततः सारे बाह्य परिवर्तन मनुष्य के निजी जीवन और मानव संबंधों के वृत्त में ही फलित होते हैं।' हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तो एक लेख ही लिखा है - 'मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है।'

हम देखते हैं कि जिस 'आदिकाल' को स्वतोव्याधानों का युग कहा गया, जिस दौर में सामाजिक, राजनीतिक या बाह्य अंतर्विरोधों की सर्वाधिक जटिल भूमिका थी, उस काव्य के कवि लेखक इन बाह्य जटिलताओं तक ही केंद्रित नहीं रहे, बल्कि मनुष्य के भीतर उसके विकल मन में जो उत्थान-पतन का द्वंद्व चल रहा था, उसे पकड़ने की भी कोशिश इस युग की रचनाएँ करती रही। आदिकालीन राजकीय संरक्षण में राजा की वीरता और विकास दोनों कवि के उपश्रीव्य थे। हिंदी के इस आरंभिक साहित्य में धार्मिक और ऐहिक तत्व एक-दूसरे से घुले-मिले हैं और यहाँ मानव-मूल्यों का बहुत गहरा अंतर्विरोध है, जिसे आदिकाल के पहले कवि सरहया और आखिरी कवि विद्यापति में देखा जा सकता है। 'शरीर नष्ट हो जाने वाला है' - सरहया इस बात की चेतावनी देने वाला कवि है, वहीं विद्यापति एक ऐसी दुनिया की सृष्टि करते हैं जो रंग-बिरंगे गुलाबों से भरी हुई है। मादक प्रेम की तन्मयता से भरे हुए इस कवि की राधा रात भार जागती है और आकांक्षा करती है कि इस रात की सुबह न हो।

इस तरह, आदिकाल में जो लोकाश्रित साहित्य रचा गया, उसका धर्म और राजदरबार से कुछ लेना-देना नहीं था। संदेश रासक, बसंत विकास, ढोलामास, रा हुहा, विद्यापति की पदावली और अमीर खुसरो की पहेलियाँ-मुकरिया - ये सभी रचनाएँ जनता के बीच और जनता की बोली-वाणी तथा परिस्थितियों के संदर्भ में लिखी गई और इनकी सामग्री युग परिवेश के भीतर मानव-मूल्यों की विराटता के बीच विनिर्मित हुई है। पृथ्वीराज रासो में मानव मूल्यों की प्रभूत अभिव्यक्ति मिलती है। पृथ्वीराज के चरित्र में धर्मनिरपेक्षता, दया, क्षमा आदि मानव-मूल्यों का दिग्दर्शन

होता है यथा-

का काया मायाति का, का ग्रहनी ग्रह कौन।
अप्पौं अंख्यौ मिध्यते, जो देक्खियौ सुलौन।

मानव मूल्यों की दृष्टि से आदिकालीन साहित्य की देन यह है कि इस युग के कवियों ने लौकिक ऐषणाओं को काम्य माना है, त्याज्य नहीं तथा राजा अथवा स्वामी की उद्देश्य सिद्धि के लिए हँसते-हँसते प्राण उत्सर्ग करने की प्रेरणा आदिकालीन साहित्य ही प्रदान करता है। निरंतर विराट को लघु के आगे पराजित करने वाला साहित्य ही होता है। अपभ्रंश का एक दोहा जो मानव मूल्य की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है, इस प्रकार -

जो पुच्छुहु बड्डाहि घर तो बड्डा घर ओहि,
बिब्यालजन अव्युद्धरण कन्त कुडीरई जोइ।

तुम बड़े घर की बात पूछते हो कि गाँव में बड़ा घर कौन, तो बड़ा घर तो वही है, जिसमें छोटी-सी कुटिया में बैठा व्यक्ति दूसरों के दुःख, दूसरों को दुर्बल देखकर सहायता के लिए चल पड़ता है, उसके पास कुछ नहीं है।

भक्तिकाल की रचनाएँ वस्तुतः गहरे आत्ममंथन की प्रक्रिया से निकली रचनाएँ हैं। भक्ति कविता को जो लोग गिड़गिड़ाहट समझते हैं, वे भक्तिकाल की अधूरी व्याख्या करते हैं। सौम्यता एवं आत्मनिरीहता के भाव क साथ निणञ्य का अद्भुत विवेक इस कविता में दिखाई पड़ता है। भक्ति में धर्म-साधना का विषय नहीं है, भावना का विषय है। गौरतलब है कि मूलतः समग्रता की चिंता के भीतर से मूल्य का जन्म होता है। भक्ति आंदोलन इसी समग्रता की चिंता से जुड़कर भक्ति को चरम मूल्य के रूप में प्रस्तावित करता है। कबीर कहते है कि 'हरि भगति जाने बिना बूड़ि मुआ संसार।' तुलसीदास ईश्वर से वरदान मांगते है - 'केहुं भगति तिहुं पाप नसावनि।' वस्तुतः मध्यकालीन भक्ति का एक भावात्मक सौंदर्यात्मक और भावनात्मक मूल्य हैं।

मानवीय मूल्यों की एक लंबी सूची है राम के पावन चरित्र में। वे मर्यादापुरूषोत्तम हैं, प्रेम, करूणा, दया, शरणागत वत्सलता, सत्यनिष्ठा आदि गुण उनके चरित्र की पूंजी है और सच्चे प्रेम के द्वारा उन्हें पाया जा सकता है - हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तें प्रकट होय भगवाना।

प्रेम ही परमात्मा है - 'प्रेम हरि को रूप है'। जैसे गांधीजी ने सत्य को ईश्वर माना, उसी प्रकार तुलसी ने प्रेम को ईश्वर माना और वह प्रेम ही सत्य है, शील है, सुंदर है, शक्ति है, धर्म है - वह सभी कुछ है जो शाश्वत है, अलौकिक है। अतः राम ही जीवन-मूल्य है और उन्हें पाने के लिए भक्त परम पवित्र प्रेम को माध्यम बना सकता है।

कबीर ज्ञान-मार्गी थे, परंतु प्रेम को उन्होंने भी परम तत्व माना। 'ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय' परंतु वे सत्य और प्रेम को व्यक्तित्त्व न दे सके। सूर ने प्रेम को व्यक्तित्व दिया कृष्ण के रूप में, मीरा ने प्रेम के स्वरूप गोविंद को अपने पति रूप में स्वीकार किया। अपना संपूर्ण वर्चस्व, लोकलाज, पद-प्रतिष्ठा, पूरा जीवन दिया और तोलकर किया इन मूल्यों के मूल्य-प्रेम स्वरूप गोविंद को -

मई री, मैं तो गोविंद लीनो मोल।
कोई कहै हलकौ, कोई कहै भारी, मैं लीनों तराजू तोल।

जीवन देकर भी प्रेम मोल किया जाए तो यह जीवन मूल्य ही तो हुआ। मीरा ने इस जीवन-मूल्य में अमरत्व पा लिया।

तुलसी ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के ऊपर राम-पद प्रीति को ही जीवन मूल्य माना -अरथ न धर्म न काम रूचि, गति न चहऊँ निखान

जनम जनम रति-राम पद यह वरदान न आन।

राम 'व्यक्ति चरित्र' नहीं 'मूल्य-चरित्र' हैं, जीवन मूल्यों के साकार विग्रह हैं। तुलसी ने रामराज्य का जो वर्णन किया है - दैहिक, दैविक, भौतिक तापा। रामराज्य काहुहिं नहिं व्यापा। वस्तुतः वह मानव-जाति के किए एक आदर्श की परिकल्पना है। तुलसी के काव्य में सर्वत्र लोकमंगल की भावना विद्यमान है।

'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अबस नरक अधिकारी।

जैसी उक्तियाँ तुलसी के चिंतन के मूल्यों का ही परिणाम हैं। तुलसी वेद मत, साधुमत और लोकमत - तीनों का समन्वय करने के पक्षपाती थे। लोकमत को उन्होंने सर्वाधिक महत्व दिया। तुलसी का काव्य स्वांतः सुखाय की प्रतिज्ञा से लिखा गया, फिर भी उनके 'स्व' में 'पर' भी पूर्ण रूपेण समाहित है। उनकी मान्यता कितनी उदान्त है। -

कीरिति मानिति भूति भली सोई। सुरसिर सम सब कह हित होई कीर्ति, कविता और संपत्ति वही उत्तम है, जो गंगा की तरह सबका हित करने वाली हो।

तुलसी का साहित्य सबकी चिंता का उद्देश्य लेकर रचित है। उनकी मूल्य चेतना के केंद्र में मनुष्य है, उसके सपने, उसकी आकांक्षाएँ हैं। दरअसल, हर बड़ा कवि मानवीय संवेदनाओं का ही चितेरा होता है।

कबीर ने बाह्यडंबरों पर जो कड़ी चोट की, वह वस्तुतः मानवीय मूल्यों को समग्रतः स्थापित रहने के उपक्रम

का ही हिस्सा था। मानव-मात्र में एक ही सत्ता संचारित है, विभेद की सारी कोशिशें व्यर्थ हैं, 'इश्क मस्ताना' कबीर इसे समझकर फिर सबको समझाना चाहते हैं -

जौ रे खुदाइ मसीति बसतु है और मुलुक किए केए।
तीरथि मूरति राम निवासी दुहु महिं किनहुं न हेरा।

दरअसल, कबीर के ऐसे सारे सवाल मानवीय मूल्यों को जगाने के ही बड़े प्रयास है। कबीर अपने अंतर्जगत का वैविध्य संधान करते है और उसी से जीवन की विराटता का सृजन करते हैं।

जायसी मानवीयता की पृष्ठभूमि पर कविता रचते हैं। 'हिंदू तुरक दुबौ रन गाने' उनके यहाँ दोनों पक्षों का पूरे आदर और आत्मीयता से उल्लेख हुआ है। पद्मावत में प्रेम को अपार विशिष्टता देकर जायसी अपने साहित्य को मानवीय मूल्यों की आधारभूमि पर खड़ा करते हैं -

मानुष प्रेम भयहु बैकुंठी नाहिं तो साहकार भी मुट्ठी।

इसी तरह सूरदास गृहस्थ जीवन और परिवार की पृष्ठभूमि पर प्रेम और वात्सल्य भाव का सघन-तन्मय चित्र रचकर मानवीय मूल्यों का सहज आलोक भर देते हैं। रामचंद्र शुक्ल के अनुसार 'इन कृष्णोपासक वैष्णव कवियों ने जीवन के प्रति अनुराग जगाया, या कम से कम जीने की चाह बनी रहने दी। दरअसल, विषम परिस्थितियों के बीच किसी जाति की जीवनेच्छा को बनाए रखना सबसे बड़ा मानवीय मूल्य है।

सूफी कवियों ने भी प्रेममार्गी काव्य धारा का विधान रचकर प्रेम को सर्वश्रेष्ठ मानव-मूल्य के रूप में प्रस्तावित किया। इस तरह कह सकते हैं कि समग्र भक्ति कविता अखंडता एवं समन्वय का काव्य है। कबीर, जायसी, तुलसी, सूर आदि यद्यपि भिन्न-भिन्न काव्यधाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं तथापि इन सभी कवियों के मूल्य बोध एक हैं। प्रेम, भक्ति, परोपकार, करूणा आदि मानव-मूल्यों की स्थापना का विरोध कर मानव जीवन के प्रति जिजीविषा को भी प्रबल बनाया है।

इसी तरह मानव मूल्यों के निकष पर अब्दुर्रहीम खानख्वाजा का साहित्य और व्यक्तित्त्व सचमुच अपूर्व रहा है। उनके संबंध में एक बेमिसाल दोहा इस प्रकार है -

खानखाना नवाब हो मोहि अचंभो एह।
आयो किम गिरि मेरू मन, साढत्र तिहस्यी देह।।

मुझे यह आश्चर्य है कि खानखानॉ का मेरू पर्वत जैसा मन साढ़े तीन हाथ की देह में कैसे समाया है।

रहीम को सच्चा हिंदुस्तानी बताते हुए विद्यानिवास मिश्र जी लिखते हैं कि - 'सारा जीवन राजराम में बीता और बात उसने की आम आदमी के जीवन की।'

रहीम ने अपने उदार, संवेदनशील और सहिष्णु ह्रदय को वास्तविक अनुभवों के बीच रखकर जिस मार्मिकता का परिचय दिया, वही अबाध गति से उनके दोहों में प्रवाहित हुआ। रहीम के अनुसार वही परोपकार सच्चा परोपकार है, जिसे जोखिम उठाकर किया जाए। घोड़ा अपने गले को रस्सी से बंधवाता है, कुएँ से जल भरता है और अपने अस्तित्व को जोखिम में डालकर प्यासों की प्यास बुझाता है -

रहिमन रीति सराहिये, जो घट गुन सम होय।
भीति आप पै डारि कै, सबै पियावै तोय।

मनुष्य का मनुष्य के साथ संबंध महत्वपूर्ण है, यह सबसे बड़ा मूल्य है। रहीम का अद्भुत दोहा है -

रूठे सुजन मनाइए जो रूठे सौ बार। रहिमन फिरि फिरि पोहियत टूटे मुकता हार।

यूं तो रीतिकालीन साहित्य श्रृंगार प्रधान है, जहाँ नैतिकता लगातार चेरी की भूमिका में है, पर ऐसे समय में भी वृंद, बिहारी, गिरिधर कविराय, दीनदयाल गिरि सरीखे नीति कवियों ने वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक मूल्यों को स्थापित किया। उन्होंने नीतिपरक पदों के द्वारा जन-सामान्य और शासन दोनों को ही उचित दिशा प्रदान की है। एक कथानक प्रसिद्ध है - राजा जय सिंह नवोढ़ा नायिका के प्रेमपाश में इस तरह लिप्त हो गए थे कि उन्हें राजकाज की सुध-बुध जाती रही -

नहिं पराग नहीं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल
अली एकि ही सौं बंध्यो, आगे कौन हवाल।

एक कवि, एक क्रांतिदर्शी, तथा एक राष्ट्रभक्त की भूमिका में बिहारी ने राष्ट्र के शासक को कर्त्तव्यबोध जैसे अमूल्य मानवीय मूल्यों का अहसास कराया। धर्म, राजनीति, समाज, व्यवहार, व्यापार, भक्ति, वैराग्य, सत्संग, स्त्री, कपट, आडंबर, धन आदि से सम्बद्ध बिहारी के ऐसे सैकड़ों दोहे हैं जो साहित्य और मानवीय मूल्यों के बीच निकट संबंध को रेखांकित करते हैं।

रीतियुगीन कवियों ने श्रृंगार, वीर एवं नीति के साथ-साथ धर्म और दर्शन पर भी आंशिक रूप से प्रकाश डाला है। रीतिकालीन कवि मानस और मानव में अपभेदता को स्वीकार करता है। जीवन के प्रति ऐहिकतामूलक दृष्टिकोण, श्रृंगार भाव तथा कलात्मक प्रवृत्ति के बावजूद भूषण, वृंद तथा गिरिधर कविराय आदि कवियों ने वीरता, भक्ति, नीति तथा जीवन के प्रत्येक पहलू पर विचार रखते हुए समाज को

लोकहित परखता के भाव से विमुख नहीं होने दिया।
आधुनिक काल में साहित्य का चहुँमुखी विकास हुआ। अनेक नए गद्य रूपों का प्रस्फुटन हुआ और इनमें जीवन के परंपरागत मूल्यों के साथ-साथ नवीन मूल्यों का भी सूत्रपात मिलता है। भारतेंदु अंधेर नगरी विषस्य विषमौषधम् 'भारत दुर्दशा' आदि नाटकों में युगीन समस्याओं को भली-भांति प्रतिबिंबित करने के साथ ही जनता और समाज से जुड़ाव को स्थापित करके मूल्य विकृत भी करते हैं। भारतेंदुयुगीन सहित्य में सत्य, न्याय, त्याग, उदारता आदि मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था उत्पन्न करने, प्राचीन संस्कृति के प्रति प्रेम जगाने पर अधिक बल दिया गया है। प्रसाद ने अपने नाटकों में ऐतिहासिक कथानकों के परिवेश में नए मूल्यों को संजोया है।
आधुनिक युग में 'उपन्यास', 'मानव मूल्यों' का समावेश व्यापक फलक पर करते हैं। प्रेमचंद ने उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र यूं ही नहीं कहा है। भारतेंदु हरिश्चंद्र, बाल कृष्ण भट्ट, सरदार पूर्ण सिंह, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी , विद्यानिवास मिश्र के निबंध मानव-मूल्यों की प्रस्थापना के बड़े आयामों को उद्घाटित करते हैं। रामचंद्र शुक्ल की आलोचना जिस 'सभ्यता समीक्षा' का आधार रचती है, वह वस्तुतः मूल्य समीक्षा ही है। इसी तरह महादेवी के रेखाचित्र और संस्मरण मार्मिक मानवीय आख्यान की तरह पढ़े जाने को विवश करते हैं। आधुनिक काल की मिशनरी पत्रकारिता बलिदान और कर्तव्यपालन का बृहत् मूल्य विनिर्मित करती है।
गद्य की तरह आधुनिक काल का प्रत्येक पद्य-चरण-भारतेंदु युग, द्विवेदी युग, छायावादी काव्य, राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता - मानवीय मूल्यों के जाग्रत बोध को ही परिलक्षित करता है। आधुनिक युग के अंतर्गत भारतेंदु युग की राष्ट्रीयता, द्विवेदी युग की नैतिकता, छायावादी तथा राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा के प्रणेताओं की सांस्कृतिक चेतना और प्रगतिवाद के समर्थकों द्वारा वर्गभेद मिटाने के आंदोलन की पृष्ठभूमि में लोक कल्याण की भावना ही सक्रिय रही है।
भारतेंदु सहित उनके मंडल के सभी रचनाकारों ने राष्ट्रीय भावना का जाग्रत मूल्यबोध स्थापित किया -

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।।

भारतेंदुयुगीन कविता में जिन नवीन प्रवृत्तियों का उद्गम हुआ, द्विवेदी युग में वे क्रियात्मक रूप में विकसित हुई। मानवीय मूल्यों के प्रति द्विवेदी युग के कवियों का दृष्टिकोण समन्वयात्मक है। मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, श्रीऔध, रामनरेश त्रिपाठी जैसे कवियों ने अतीत के गौरव-गान के साथ-साथ पौराणिक पात्रों का मानवीय स्वरूप भी अंकित किया। प्रियप्रवास, वैदेशी वनवास, जयद्रथ वध, पंचवटी, साकेत, रामचरित-चिंतामणि आदि द्विवेदी युगीन काव्यों में स्वार्थ से परमार्थ की, संग्रह से त्याग की, स्वहित से जातीय एवं देश-हित की महत्ता सिद्ध करके अंततः मानव मूल्यों एवं भारतीय संस्कृति के पुनीत आदर्शों की स्थापना की गई है।
द्विवेदी युग की कविता का सबसे प्रमुख स्वर मानवीय मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा मानी जानी चाहिए -

यही पशु प्रवृत्ति है कि आप-आप ही चरे
मनुष्य है वही जो कि मनुष्य के लिए मरे।

दूसरी और राष्ट्रभक्ति को भी इस युग की कविता प्रेरणा मूल्य बतलाती है -

जिसे न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है
वह नर नहीं निरा पशु है और मृतक समान है।
ग ग ग ग
जहाँ देश हित प्रश्न सामने आ जाता है।
लाखों सिर अर्पित हो मरना सिखलाता है।

इसी तरह, जयशंकर प्रसाद के विश्वबंधुत्व, कर्मण्यता, साहस, नैतिकता, संयम, त्याग, बलिदान, राष्ट्रीयता आदि महज मानवीय मूल्यों का प्रकाश फैलाया है। 'कामायानी' जहाँ मानवीय संस्कृति का प्रसारक-प्रस्थानक ग्रंथ है, वहीं 'चंद्रगुप्त' नाटक में प्रसाद राष्ट्रीय भावधारा का स्रोत जगाते हैं।
कुकुरमुत्ता, सरोज-स्मृति, भिक्षुक, वह तोड़ती पत्थर, विधवा जैसी निराला की कविताएँ छायावाद की रोमानी चेतना से अलग मानव-मूल्यों की मार्मिक चेतना जगाती है। साहित्य में दुःख अकेला होते हुए भी अकेला नहीं होता, निराला की कविताएँ इसका प्रमाण है।
पंत ने वीणा, ग्रंथि, पल्लव, गुंजन, स्वण किरण आदि रचनाओं में आस्था, सौंदर्य, प्रेम, आनंद, संयम आदि जीवन मूल्यों को उजागर करते हुए प्रेम को जीवन का श्रेष्ठ मूल्य माना है -

मन को विराट की आत्मा से कर सवन्युक्त
तुम प्यार करो, सुंदरता में रहना सीखो
जो अपने ही में पूर्ण स्वयं है लक्ष्य स्वयं
कवि यही महत्तर ध्येय अनुज के जीवन को।

प्रगतिवादी काव्य मानवतावाद को उच्चादर्श के रूप में प्रतिष्ठित करता है। विषमता पद, दलन-शोषण का विरोध कर प्रगतिवादी

कविता समता, कर्मण्यता, आशावादिता का संदेश देती है। प्रयोगवाद में लघुमानव के बहाने लघु परिवेश को केंद्रीभूत करने का प्रयास है। गिरिजा कुमार मान्द्रर भावी उज्ज्वल मानवता का आशालोक रचते हैं -

अब युग की अंधियारी रजनी मिटने को है,
जन रवि का अग्र प्रकाश चरण
अंकित हो रहा है, धरा के कैसे आंचल पर
जिस में मानवता छिपी धूप बन सोती है।

नई कविता में जहाँ मानव स्वातंन्र्य, मानव स्वाभिमान मानव विशिष्टता, मानव विवेक, मानव निष्ठा तथा आत्मविश्वास जैसे जब-जब मूल्यों का क्षय होता है, वचह नए कवि की चिंता का सबसे बड़ा कारण बनता है। विशेष रूप से 'अंधायुग, संशय की एक रात, एक कंठ विषपायी आदि रचनाओं में युद्ध और मानव-मूल्यों का संघर्ष एक विशिष्ट धरातल पर विश्लेषित हुआ है।

मानव स्वातंन्र्य को एक अहम् मूल्य मानते हुए इसकी रक्षा हेतु नया कवि शांति का हामी हैं इस संदर्भ में सर्वेश्वर की कविताओं - 'कथाकार और सिपाही', 'सिपाहियों के गीत' का उल्लेख किया जा सकता है। इनके अतिरिक्त अज्ञेय, लक्ष्मीकांत वर्मा, जगदीश गुप्त की कविताओं में भी मानव स्वातंन्र्य की अभिव्यक्ति हुई है।

नया कवि मानव स्वाभिमान को बचाना चाहता है, फलतः 'संशय की एक रात' का राम, युद्ध न चाहते हुए भी स्वाभिमान की रक्षा करना चाहता है। नए कवि की दृष्टि में प्रत्येक व्यक्ति विशिष्ट है, वह भीड़ नहीं है। मानव विशिष्टता में जो व्यापकता है, वह भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर, सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय तथा धर्मवीर भारती आदि कवियों में मिलती है। 'कनुप्रिया' के कनु का नाम भी इस संदर्भ में किया जा सकता हैं।

छायावादी दृष्टि, वेदना को अक्श दया के रूप में देखती है, जबकि नया कवि वेदना को मानवता के स्तर पर पहचान कर अभिव्यक्ति देता है।

दुःख सब मांजता है और चाहे स्वयं सभी को मुक्ति देना वह न जाने, किंतु इसे मांगता है। उन्हें यह, सीख देता है कि सब को मुक्त रखें।

मानव आस्था में नए कवि की आस्था इतनी है कि वह रहता है -

धर्मवीर भारती- आस्था न कांपे, मानव, फिर मिट्टी का भी देवता हो जाता है।

नई सदी में जागा आत्मविश्वास भी मानव मूल्य के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। जितनी ईमानदारी से नया कवि अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता है, वह उसके आत्मविश्वास का ही परिणाम है। शमशेर की पंक्तियाँ उल्लेखनीय है - बात बोलेगी/ हम नहीं/भेद खोलेगी/बात ही/ सत्य का मुख।

आज उपभोक्तावादी संस्कृति के अंधाधुंध प्रसार के दौर में मानव चेतना खंडित दिख रही है, लेकिन समकालीन रचना जगत के कई नए हस्ताक्षर निरंतर खंडित मानव चेतना और खंडित व्यक्तित्व को सार्थकता प्रदान कर रहे हैं। निश्चय ही आधुनिक साहित्य की दृष्टि उदार, व्यापक और मानवतावादी है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने साहित्य में स्थान-स्थान पर साहित्य के मूल्यों की बात की है। उनकी स्पष्ट धारणा है कि मनुष्य को केंद्र में रखकर ही हमें साहित्य के मूल्य स्थापित करने होंगे। हमें साहित्य में उन मूल्यों की रक्षा करनी होगी जिसके कारण मनुष्य ने कभी स्वयं को पशुता से भिन्न और श्रेष्ठ सिद्ध किया था। परस्पर मैत्री-भाव और समस्त प्रकार के भेदों की समाप्ति ही, मनुष्यता के उपयुक्त मूल्य है। साहित्य ही इनका प्रेषण कर सकता है। सब मूल्यों के केंद्र में मनुष्य ही विद्‌यमान है। अतः उसी के लिए हमें नए सिरे से सब कुछ गढ़ना है, तोड़ना नहीं, टूटे को जोड़ना है। भेदभाव की जयमाला से हम पार नहीं उतर सकते। मनुष्य एक है, उसके सुख-दुख को समझना, उसे मनुष्यता के पवित्र आसन पर बैठाना ही हमारा कर्त्तव्य है।

डॉ. पूरनचंद टंडन
संकल्प
डी-६७, शुभम एंकलेव,
पश्चिम विहार, नई दिल्ली-११००६३

नो बार' एक्ससेप्टिंग दलित

डॉ. बिजय कुमार रबिदास

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
मो. ९४३२३४५६०४

हिन्दी की दलित कहानियां जाति-व्यवस्था के गर्भ से उत्पन्न हुई हैं। पिछले तीन दशकों में सैकड़ों दलित कहानियां लिखी गई हैं। जिनमें लूट, हत्या, बलात्कार, हिंसा, आदि की सबसे ज्यादा अनुगूँज सुनाई पड़ती है। लेकिन समय के साथ अब इन कहानियों की संरचना में एक तरह का बदलाव आया है। यह बदलाव जयप्रकाश कर्दम की कहानी 'नो बार' में देखी जा सकती है। जिसे उन्होंने पारम्परिक लीक से अलग हटकर शहरी परिवेश के ताने बाने में रचा हैं। इस शहरी परिवेश में सवर्ण जातियों का एक नया मध्यवर्ग है, जो अखबार के माध्यम से मैट्रिमोनियल में विवाह के लिए विज्ञापन देते हैं। इसमें कुछ ऐसे भी विज्ञापन होते हैं, जिनमें जाति की जगह पर 'कास्ट नो बार'(जाति का बंधन नहीं) लिखे होते हैं। ऐसे विज्ञापनदाताओं से जब कोई दलित जाति का लड़का संपर्क करता है तो सवर्ण जाति के लोग उसकी जाति देखकर वैवाहिक प्रस्ताव ठुकरा देते हैं। ऐसे लोग अपने समान दूसरी ऊँची जातियों से वैवाहिक संबंध आसानी से बना लेते हैं, लेकिन कभी किसी दलित से कोई संबंध नहीं बनाते हैं। जयप्रकाश कर्दम जी ने शहर के सवर्ण लोगों की इसी जातिवादी मानसिकता को 'नो बार' कहानी के माध्यम से दिखाने की कोशिश की हैं।

यह कहानी राजेश नाम के एक दलित लड़के की है। वह पढ़ा-लिखा सरकारी दफ्तर में आयकर अधिकारी के पद पर कार्यरत है और शादी के लिए रोज अखबार की मैट्रिमोनियल्स के कॉलम पढ़ता है। एक दिन उसकी नज़र एक ऐसे विज्ञापन पर जाती है, जिस पर लिखा होता है, 'वांटेड सूटेबल ग्रूम फॉर एम. ए., २५ इयर्स, १५८ सेंटीमीटर, ह्वीटिश, स्लिम, शार्प फीचर्ड, ब्यूटीफुल गर्ल, एक्सपर्ट इन हाउस होल्ड, हाइली एजुकेटेड प्रोग्रेसिव फैमिली, कास्ट नो बार।'१ विज्ञापन में 'कास्ट नो बार' साफ़ लिखा होता है, जिसका मतलब हुआ जाति का कोई बंधन नहीं। अर्थात लड़का किसी भी जाति का हो, लड़की वालों को इससे कोई दिक्कत नहीं है। राजेश खुद भी अन्तर्जातीय विवाह करना चाहता था। अखबार में अन्तर्जातीय विवाह का विज्ञापन देखकर उसे खुशी होती है और वह तत्काल अपना पूरा बॉयोडाटा लिखकर लड़कीवालें के घर के पते पर भेज देता है। बॉयोडाटा लिखते समय वह अपनी जाति भी लिखना चाहता था फिर सोचा कि जब सामने वाले ने जाति का कोई बंधन नहीं रखा है, तो ऐसे में अपनी जाति का उल्लेख करना ठीक नहीं है। यही सोचकर वह बॉयोडाटा में अपनी जाति नहीं लिखता है। एक सप्ताह के बाद लड़की के पिता उसे अपने घर पर आमंत्रित करते हैं। वहां उसकी मुलाकात अनिता से होती है। अनिता के पिता राजेश के सामने खुद को बहुत प्रगतिशील विचारों वाला व्यक्ति बताते हैं और अन्तर्जातीय विवाह के समर्थन में लम्बी-लम्बी बातें करते हैं। राजेश को बड़ी खुशी होती है कि उसका वैवाहिक रिश्ता एक प्रगतिशील, सभ्य परिवार में होने जा रहा है। अनिता को देखते ही वह पहली नज़र में पसंद कर लिया था। बाद में वे दोनों मिलते हैं, एक-दूसरे को अच्छी तरह समझते हैं और अंत में शादी करने का निणन्य कर लेते हैं। उसके बाद अनिता के पिता शादी का दिन तय करने के लिए राजेश को एक दिन अपने घर पर बुलाते हैं और बातों ही बातों में उन्हें आभास होता है कि राजेश एक दलित लड़का है। फिर वे बहुत असहज हो जाते है और अनिता से राजेश की जाति पूछने लगते हैं।

लेखक ने कहानी में सवर्ण समाज के उस जातिवादी चरित्र को उजागर किया है, जो ऊपर से प्रगतिशीलता का दिखावा करते हैं और अन्दर से घोर जातिवादी बने होते हैं। ऐसे लोग अन्तर्जातीय विवाह के पक्ष में जोरदार भाषण देते हैं लेकिन अपनी बहन-बेटी की शादी कभी किसी दलित के यहां नहीं करते हैं। लेखक ने सवर्ण जाति के ऐसे छद्म प्रगतिशील लोगों की असलियत सबके सामने लाकर रख दिया हैं। कहानी में अनिता के पिता एक ऐसे ही प्रगतिशील व्यक्ति है। वे राजेश के सामने अपनी प्रगतिशीलता की खूब डींगे हांकते हैं और कहते हैं, 'देखिए राजेश जी, हम बड़े खुले विचारों के आदमी है। जाति-पाँति, धर्म-संप्रदाय किसी प्रकार के बंधन को हम नहीं मानते। ये सब बातें पिछड़ेपन का प्रतीक हैं।'२ अनिता के पिता की ये बातें सुनकर वास्तव में लगता है कि वे जातिवाद के संकीर्ण घेरे से मुक्त हैं। उनके लिए जाति कोई विशेष महत्व नहीं रखती है। वे अन्तर्जातीय विवाह के बारे में भी बड़े सकारात्मक दिखाई देते हैं। उन्होंने खुद अन्तर्जातीय विवाह किया है और अपने बच्चों का भी अन्तर्जातीय विवाह करवाया है, वे राजेश से आगे कहते हैं, 'हमारे परिवार में जितनी भी शादियाँ हुई है, वे सब अन्तर्जातीय हुई हैं। अब देखो मैं ब्राह्मण हूँ और मेरी पत्नी कायस्थ परिवार से है। हमारी बड़ी बेटी की शादी अग्रवाल लड़के के साथ हुई है और हमारे घर में जो बहू आई है, वह पंजाबी क्षत्री है। हमारी नजर में लड़का और लड़की एक-दूसरे को अच्छी तरह देखें, परखें और बातचीत करें। यदि वे दोनों एक-दूसरे को पसंद करते हैं, एक-दूसरे से संतुष्ट होते हैं और उन्हें लगता है कि वे एक-दूसरे के साथ एडजस्ट कर सकते हैं, बस यह काफी है। इसके अलावा सब चीजें गौड़ हैं।'३ यहां तक तो स्पष्ट है कि उनका दृष्टिकोण प्रगतिशील विचारों वाला है। जात-पांत का असर उनके ऊपर नहीं दिखाई देता है। अन्तर्जातीय विवाह के मामलें में भी वे बड़े उदार दिखाई देते हैं। लेकिन लेखक ने उनके असली चरित्र का पर्दाफ़ाश कहानी के अंत में किया हैं। जब, राजेश और उनके बीच में राजनीतिक मुद्दों पर बहसें होती हैं। अनिता के पिता का झुकाव एक हिन्दूवादी पार्टी विशेष की ओर होता है। उनको लगता है कि देश में शासन के लिए यह बेहतर पार्टी है। साथ ही वे मण्डल कमीशन के लागू होने पर भी असंतोष व्यक्त करते हैं और दलित नेताओं को जातिवाद के प्रेरक के रूप में देखते हैं। वहीं राजेश के विचार उनसे एकदम भिन्न हैं। उसका मानना है कि देश और समाज के विकास में हिन्दूवादी पार्टियां सबसे बड़ी बाधा है। इस तरह की पार्टियां देश में जातिवाद और सम्प्रदायवाद को बढ़ावा देती है। राजेश का झुकाव दलित राजनेताओं की ओर है। वह जिस तरह से उनके समर्थन में बातें कर रहा था, उससे अनिता के पिता को उसकी जाति पर सन्देह होने लगता है। यहीं पर अनिता के पिता का असली रूप पाठक के सामने आ जाता है। राजेश का झुकाव दलित राजनेताओं की ओर देखकर उनका व्यवहार बिल्कुल बदल जाता है और वे अनिता से पूछने लगते है, 'इस लड़के की कास्ट क्या है ?'४ इस पंक्ति ने पूरी कहानी की दिशा ही बदल दी है। अब तक जो व्यक्ति खुद को प्रगतिशील बता रहा था और जात-पांत को पिछड़ेपन का प्रतीक घोषित कर रहा था। वह अचानक से राजेश की जाति को लेकर सशंकित होने लगता है। उनके अन्दर का छिपा हुआ जातिवादी रूप निकलकर बाहर आ जाता है। इसके अलावा दलित नेताओं के प्रति उनकी जातिवादी सोच ने उनके चरित्र को पूरी तरह से नंगा कर दिया है। लेखक ने सवर्ण जाति के प्रगतिशील लोगों की इसी जातिवादी मानसिकता को पाठक के सामने उजागर करने की कोशिश की हैं। ऐसे लोग ऊपर से प्रगतिशीलता का स्वांग भरते हैं और अन्दर ही अन्दर जातिवाद से जकड़े हुए होते हैं।

लेखक ने सबसे पहले इन प्रगतिशील लोगों के अन्दर छिपे हुए उस जातिवादी चरित्र को उद्घाटित किया है, फिर उनके नकली प्रगतिशील मुखौटे को उतार फेंका है। आजकल सवर्णों में अन्तर्जातीय विवाह का चलन तेज़ी से बढ़ा है। लेकिन इस अन्तर्जातीय विवाह में सवर्णों ने जाति के स्तर को हमेशा मेंटेन रखा है। अर्थात सवर्ण जाति के लोग अन्तर्जातीय विवाह करते समय अपने समान ऊँची जातियों को ही चुनते हैं, किसी दलित जाति को नहीं। कहानी के शुरू में अनिता के पिता अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन करते हुए दिखाई देते हैं। अपने परिवार के सदस्यों का उदाहरण देकर बताते है कि वे खुद ब्राह्मण, पत्नी कायस्थ, दामाद अग्रवाल और बहू पंजाबी क्षत्री है। लेखक ने यहां यह दिखाया है कि सवर्ण जातियों में एक नया मध्यवर्ग बना है, जो अन्तर्जातीय विवाह कर रहा है। इसे लेकर पाठक के मन में कोई सन्देह नहीं होना चाहिए। लेकिन ये वर्ग जात-पांत की संकीर्णताओं से कभी बाहर नहीं निकला है। ये वर्ग दूसरी जातियों में भले ही विवाह करते हैं लेकिन दूसरी जातियों में भी सवर्ण जाति के लोगों में ही विवाह करते हैं, किसी दलित जाति से नहीं करते हैं। लेखक ने इसी तथ्य पर सबसे ज्यादा जोर दिया हैं। कहानी में अनिता के पिता ऐसे ही वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए दिखाई देते हैं, वे कहते हैं, 'वह सब तो ठीक है कि हम जाति-पाति को नहीं मानते और हमने मैट्रिमोनियल में 'नो बार' छपवाया था, लेकिन

फिर भी कुछ चीजें तो देखनी ही होती हैं । आखिर 'नो बार' का यह मतलब तो नहीं कि किसी चमार-चूहड़े के साथ.... ।'५ अनिता के पिता की इन बातों से स्पष्ट है कि उनके मन में दलितों के प्रति बहुत घृणा है । वे दलितों को अपने बराबर या योग्य नहीं समझते हैं । उन्हें अपनी बेटी की शादी अपने समान ऊँची जाति में ही करनी है । वे अपने 'नो बार' का फार्मूला सवर्ण जातियों पर लागू करते हैं, किसी दलित जाति पर नहीं । लेखक ने ध्यान दिलाया है, ऐसे तथाकथित प्रगतिशील लोग दलितों के साथ कभी अपना वैवाहिक संबंध नहीं बनाना चाहते हैं । उनके मन में जात-पांत की भावना बड़ी प्रबल होती है । जो ऊपर से भले ही दिखाई न दे लेकिन अन्दर ही अन्दर बड़ी तीव्र गति से काम करती है । लेखक ने यह भी स्पष्ट किया है कि यदि कोई दलित पढ़ लिखकर ऊँचे सरकारी पद पर चला जाए तो भी ये सवर्ण जाति के लोग उसके साथ कोई रिश्ता या संबंध नहीं बनाना चाहते हैं । ये लोग हमेशा अपनी जाति का लेवल बरकरार रखना चाहते हैं । सवर्ण समाज का यह तबका ऐसे ही अन्य सवर्ण जातियों में अन्तर्जातीय विवाह करके खुद को प्रगतिशील बता रहे हैं । लेकिन उनकी प्रगतिशीलता के दायरे में दलित कहीं भी नहीं है । लेखक ने जोर देकर समझाया है कि ऐसे लोग समाज में बड़े प्रोग्रेसिव बने रहते हैं और जैसे ही उन्हें आभास हुआ कि सामने वाला दलित है तो उनके अन्दर का दबा हुआ जातिवादी रूप तुरंत सामने आ जाता है । इनकी प्रगतिशीलता एकमात्र दिखावा है । अनिता के पिता के माध्यम से लेखक ने आज के छद्म प्रगतिशील लोगों की ओर ध्यान दिलाया हैं ।

लेखक ने यहां कुछ अन्य बिन्दुओं की ओर भी ध्यान दिलाया है, जिस पर विचार करना जरुरी है ।

विगत कुछ सालों में दलितों की एक नई पीढ़ी तेज़ी से सामने आई है । जो पढ़ लिखकर सरकारी पदों पर आ रहे हैं । दलितों का यह वर्ग सामाजिक असमानता के खिलाफ लगातार बोलता, लिखता रहा है । वैचारिक स्तर पर ये जात-पांत के बंधन से मुक्त है । इसलिए ये अन्तर्जातीय विवाह के नाम पर गैर दलितों से भी विवाह करने के लिए तैयार है । कहानी में राजेश नाम का लड़का आज की नई पीढ़ी के दलितों में से एक है । उसके चरित्र को समझने के लिए लेखक ने पाठक के सामने कुछ सूत्र छोड़ दिए हैं । उन्होंने सीधे तौर पर कहीं पर भी राजेश की आलोचना नहीं की है लेकिन उसे प्रश्न के घेरे में लाकर जरुर खड़ा कर दिया है । राजेश शहरी परिवेश में पढ़ा लिखा एक नौकरी पेशा लड़का है । उसके विचार जातिवादी व्यवस्था को स्वीकार नहीं करते हैं । समाज और उसकी कमजोरियों को अच्छी तरह से समझते हुए भी वह सकारात्मक विचारों को लेकर चलने वाला लड़का है । जब वह अपने पिता को बताता है कि लड़की सवर्ण जाति की है तो उसके पिता आश्चर्य में पड़ जाते है । उन्हें विश्वास ही नहीं होता कि सवर्ण जाति के लोग अपनी जाति से बाहर निकलकर किसी दलित लड़के से भी विवाह कर सकते हैं । उन्होंने अपने पूरे जीवन में इस तरह की बातें कभी नहीं सुनी थी, वे राजेश से कहते है, 'बेटा मै अनपढ़ गँवार आदमी हूँ, ज्यादै नहीं जानता । तुम जिन लोगों की बात कर रहे हो उनके बारे में मैं कुछ नहीं कह सकता, पर दुनियादारी को जो थोड़ा-बहोत मैंने देखा है, उसके आधार पर मेरा सुझाव है कि वो ना पूझें तब भी तुम्हें अपनी सै उनकू अपनी जात बता देनी चाहिए ।'६ राजेश के पिता अनपढ़ और गंवार है लेकिन उनके पास जीवन का पूरा अनुभव है । सवर्ण लोगों की जातिवादी मानसिकता से वे अच्छी तरह परिचित है । इसलिए वे उनके बारे में पूरी तरह से आश्वस्त नहीं है । अर्थात सवर्ण जाति के प्रति उनके मन में एक शंका बनी रहती है । इसलिए वे राजेश को उनसे अपनी जाति बता देने के लिए कहते हैं । लेकिन राजेश अपने पिता की बातों को सिरे से ख़ारिज कर देता है । उस पर अन्तर्जातीय विवाह का अलग ही खुमार छाया हुआ है । जिसके आगे उसे कुछ दिखाई ही नहीं देता है । उसे लगता है कि ऊँच-नीच या भेद-भाव केवल अनपढ़ लोगों में व्याप्त है, वह अपने पिता से कहता है, 'बिना पूछे यदि मैं उनको अपनी जाति बताऊंगा तो यह मेरा पिछड़ापन होगा । पिताजी, दुनिया इक्कीसवीं सदी की ओर बढ़ रही है । पुरानी मान्यताओं और विश्वासों का महत्व ख़त्म हो रहा है । आज केवल उन्हीं बातों का अर्थ और महत्व है, जो बातें प्रासंगिक हैं, जो संकीर्णताओं से ऊपर तथा प्रगतिवाद से जुड़ी हुई हैं । आप जिस दुनियादारी की बातें कर रहे हैं, वह पुरानी लीक को पीटनेवाली अनपढ़ लोगों की दुनिया है । वही जाति-पाति के झमेले में पड़ी हुई है ।'७ राजेश की बातें कुछ हद तक सही भी है । जब अखबार में 'नो बार' छपा है फिर उसे अपनी जाति बताने की जरुरत भी नहीं है । लेकिन उसके चरित्र की एक कमजोरी भी है । उसे लगता है कि इक्कीसवीं सदी में भारत नए युग में प्रवेश कर गया है, जहां पुरानी मान्यताएं और रुढ़िवाद समाप्त हो चुकी है । उसके अनुसार जातिवाद पढ़े लिखे लोगों में नहीं बल्कि गाँव के लोगों में है, आगे वह कहता है, 'दरअसल जाति-पाति और भेदभाव का यह रोग अनपढ़ लोगों में ही है, पढ़ा-लिखा समाज कहाँ जाति को मानता है ? पढ़े-लिखे और शिक्षित समाज में व्यक्ति को जाति से नहीं

उसकी शिक्षा, योग्यता और आर्थिक स्थिति के आधार पर जाना और माना जाता है ।'८ राजेश अपनी बातों में बार-बार जाति का संबंध गांव के लोगों से जोड़ता है । उसे लगता है कि शहर के पढ़े-लिखे लोग जाति-व्यवस्था से बाहर आ गए हैं । लेखक ने इस कहानी में राजेश जैसे दलित लड़कों पर भी तंज कसा है । उन्होंने स्पष्ट किया है, जात-पांत का संबंध शिक्षित लोगों से भी है । पढ़े लिखे लोग भी अन्दर से घोर जातिवादी होते है । कहानी में अनिता के पिता के माध्यम से लेखक ने इस तथ्य को बहुत अच्छी तरह से स्पष्ट कर दिया हैं । ध्यान दें, मैट्रिमोनियल्स पर शादी के लिए जो विज्ञापन दिए जाते है, उसे गाँव के लोग नहीं बल्कि शहर के पढ़े-लिखे लोग देते हैं । ऐसे विज्ञापनों में ज्यादातर जाति का उल्लेख रहता है । फिर यह कैसे मान लिया जाए कि शहर के पढ़े-लिखे लोगों में जात-पांत नहीं हैं ? दूसरी तरफ, देखा जाए तो राजेश का जाति-प्रथा से बाहर निकलकर सोचना गलत भी नहीं है । अर्थात राजेश हर किसी को जाति के चश्में से नहीं देखता है । क्योंकि वह जाति-व्यवस्था में विश्वास नहीं रखता है । उसकी सोच जातिवाद और रुढ़िवाद के खिलाफ है । इसलिए वह ऊँची जाति के पढ़े-लिखे लोगों से भी इसी तरह की अपेक्षा रखता है । लेकिन यह अपेक्षा किसी के भी प्रति हो सकती है पर ये कोई जरुरी नहीं है कि सामने वाला भी राजेश की तरह जातिवाद के संकीर्ण घेरे से ऊपर उठा हुआ हो ।

राजेश अन्तर्जातीय विवाह करना चाहता है । अब प्रश्न ये है कि कौन करेगा उससे अन्तर्जातीय विवाह ? दलित समाज में ही सैकड़ों ऐसी जातियां हैं, जो अपने से दूसरी जाति में विवाह करना पसंद नहीं करते हैं । ऐसे में राजेश किससे अन्तर्जातीय विवाह करेगा ? सवर्ण जाति के लोग तो उससे करेंगे नहीं, इस पर सोचना ही व्यर्थ है । सवर्णों में भी जो लोग अपने ऊपर प्रगतिशीलता का ठप्पा लगाये हुए हैं, उनसे भी किसी तरह की उम्मीद नहीं की जा सकती है । वे अन्दर से कितने बड़े जातिवादी होते हैं, लेखक ने इस कहानी के शुरू मे ही स्पष्ट कर दिया है । अब यदि राजेश किसी से अन्तर्जातीय विवाह कर भी लेता है तो फिर उन दलित समाज की लड़कियों का क्या होगा ? उनसे कौन विवाह करेगा ? जब राजेश जैसे लड़के के साथ कोई अन्तर्जातीय विवाह करने के लिए तैयार नहीं है तो फिर कोई किसी दलित लड़की से विवाह करने के लिए कैसे तैयार हो सकता है ? यह एक विचारणीय प्रश्न है । तो क्या यह मान लिया जाए कि राजेश को अपनी ही जाति में विवाह करना चाहिए ? ऐसा भी नहीं है । अन्तर्जातीय विवाह सामाजिक विषमता को कम करने में बहुत सहायक है । इसे जरुर बढ़ावा देना चाहिए । लेकिन दलित लड़कों का अन्तर्जातीय विवाह करना यह सिक्के का एक पहलू है । हमें सिक्के के दूसरे पहलू पर भी ध्यान देना चाहिए, जिसकी चर्चा ऊपर की गई है ।

जयप्रकाश कर्दम जी ने अपने निजी अनुभव पर इस प्रकरण को कहानी का रूप दिया है । यह कहानी पाठक को नए सिरे से दलित-विमर्श पर विचार करने के लिए बाध्य करती है । इसकी विषय-वस्तु दूसरी दलित कहानियों से बिल्कुल भिन्न और नायाब है । लेखक ने शहरी परिवेश के उस जातिवादी मुखौटे को दिखाया है, जिसे दलित समाज के लोग अक्सर नहीं देख पाते हैं । लेखक ने जाति के इस गहरे रहस्य को बहुत अच्छी तरीके से उद्घाटित किया है । ये कहानी सवर्ण जाति के उन प्रगतिशील लोगों पर भी सीधे कटाक्ष करती है, जो आपस में ही अन्तर्जातीय विवाह करके खुद को प्रगतिशील मान बैठे हैं । इसी तरह जाति-प्रथा केवल गाँवों में ही नहीं है बल्कि शहरों के शिक्षित लोगों में भी है । वहां उसका रूप बदला हुआ है । शहरों में दलितों का शोषण सीधे-सीधे नहीं होता है बल्कि सवर्ण जातियों द्वारा भेद-भाव वाली नीति से उन्हें दलित होने का एहसास दिलाया जाता है । यह भी शोषण का एक रूप है । शहरी परिवेश होने के कारण सवर्णों ने शोषण करने का तरीका बदल लिया है । यह कहानी राजेश जैसे लड़के को भी आईना दिखाती है, जो इस भ्रम में रहते हैं कि शहर के शिक्षित लोगों में जातिवाद नहीं हैं ।

सन्दर्भ-सूची

१. गुप्ता,रमणिका, (सं.) दलित कहानी संचयन, प्रथम संस्करण, २००३,साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या ५२

२. वही, ५३

३. वही, ५३

४. वही, ५९

५. वही, ६०

६. वही, ५६

७. वही, ५६

८. वही, ५६

Address: Dr. Bijay Kumar Rabidas
Assistant Professor
Hindi DepartmentArts Faculty
University Road, old katra
University of Allahabad
Prayagraj Uttar Pradesh
India 211002

सिंधी भाषा : इतिहास और वर्तमान

डॉ.राजीव कुमार सिंह

निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उ.प्र.

प्रस्तावना-

सिंधी - मूलतः सिंधु क्षेत्र की भाषा है। मुअनजो-दड़ो (मृतकों का टीला) एवं हड़प्पा की खुदाई करने से, जिस प्राचीन सिंधु घाटी सभ्यता का पता चलता है, वह सभ्यता ईसा से लगभग तीन हज़ार साल पहले की थी। जिस प्रांत से इस भाषा का नाम सिंधी पड़ा, उस प्रांत का ऐसा नामकरण दो आधारों पर किया गया होगा। एक तो, बहुत पहले सिंध प्रांत और उसके आसपास के स्थान पर समुद्र था। भूकंप के कारण समुद्र (सिंधु) हट गया और वह स्थान सिंधु प्रदेष कहलाया। दूसरा, सिंध प्रांत का नाम सिंधु नदी से पड़ा। यह जानना बहुत जरूरी है कि देष की एक प्राचीन भाषा का स्वरूप कैसा रहा और वर्तमान में उसके प्रसार की कौन-कौन सी दिषाएँ हैं।

सिंधी भाषा की उत्पत्ति वेदों के लेखन या संभवत उससे भी पहले सिंध क्षेत्र में बोली जाने वाली एक प्राचीन भारतीय आर्य बोली या प्राथमिक प्राकृत से हुई। भारत-यूरोपीय भाषा परिवार विष्व का एक अत्यंत विषाल भाषा परिवार है। यूरोपीय भाषा परिवार की भारतीय शाखा को भारतीय आर्य भाषा के नाम से भी जाना जाता है। इसका प्राचीनतम रूप वैदिक संस्कृत है। इसी से सिंधी भाषाओं और अन्य भाषाओं का विकास हुआ। साधारणतः यह माना जाता है कि २००० से १५०० ईस्वी पूर्व भारत के उ्त्तर पष्चिम सीमांत प्रदेष में आर्यों के दल आने लगे। यहीं पहले से बसी हुई अनार्य जातियों को परास्त कर आर्यों ने सप्त सिंधु, जिसे हम आधुनिक पंजाब के नाम से जानते हैं, देष में आधिपत्य स्थापित कर लिया। यहीं से धीरे-धीरे पूर्व की ओर बढ़ते गए और मध्यप्रदेष, काषी, कौषल, मगध, विदेह, अंग, बंग तथा कामरूप में स्थानीय अनार्य जातियों को पराभूत करके उन्होंने वहाँ अपना राज्य स्थापित कर लिया।

भाषा विकास के चरण-

वैदिक संस्कृत से आधुनिक युग की भारतीय भाषा तक आने में इसे निम्न चरणों से होकर गुज़रना पड़ा-

१. आर्य भाषा की प्राचीन मंजिलः- भाषा के विशेषज्ञों ने दुनिया की सभी भाषाओं को अलग-अलग परिवार में विभाजित किया है। दुनिया में बोली के जो भी अनेक परिवार हैं उनमें से एक परिवार 'इंडो यूरोपियन' है। इसे भारत यूरोपीय परिवार भी कहा जाता है। भाषा विशेषज्ञों ने साबित किया है कि यूरोप और एशिया की कई भाषाएँ जैसे-संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, फारसी, रूसी, जर्मन, अंग्रेजी, हिंदी और सिंधी वग़ैरह 'इंडो यूरोपियन' परिवार की बोलियां है।

२. आर्य भाषा की बीच की मंजिलः-   आर्य भाषा बोली जाती थी उसके कितने ही मकानी रूप थे, जिसे 'बुनियादी प्राकृत' बोलियों का नाम दिया गया। उस काल में सिंध देश में आर्य लोग जो बोली बोलते थे उसे प्राकृत सिंधी बोली कहा जा सकता है।

डॉक्टर मुरलीधर जैतली ने सिंधी बोली के विकास की मंजिलें इस तरह समझाई हैं -

(प) पाली सिंधी- ईस्वी सन ५०० साल पहले से लेकर ईस्वी सन की शुरुआत तक।

(पप) प्राकृत सिंधी- ईस्वी सन की शुरुआत से लेकर

५०० ईस्वी तक बोलचाल वाली भाषा को प्राकृत सिंधी कहा जा सकता है। प्राकृत बोली मतलब प्रकृति से पैदा हुई बोली। प्रकृति शब्द का मतलब है 'कुदरत' और दूसरा अर्थ है 'असली सूरत'। प्राकृत बोली की असली सूरत है, संस्कृत में से पैदा हुई बोली।

(पपप) अपभ्रंश सिंधी- ५०० से १००० ईस्वी तक सिंध देश में जो बोली या भाषा बोली जाती थी, वह थी अपभ्रंश सिंधी। पाली वाले समय में आर्य लोगों ने प्राकृत बोलियां अख़्तियार कीं और उच्चारण बहुत ज्यादा बिगाड़ दिया। उन्हीं बिगड़ी बोलियों को अपभ्रंश कहा जाता है। आर्य परिवार की आधुनिक भारतीय भाषाओं में सिंधी, हिंदी, पंजाबी, उर्दू, कष्मीरी, गुजराती, मराठी, बांग्ला, उड़िया और असमिया प्रमुख हैं। संस्कृति से विकसित होने के कारण इन भाषाओं में न केवल संस्कृत के शब्द प्रचुर मात्रा में मिलते हैं, बल्कि व्याकरण के कई रूप भी इनमें लगभग समान हैं।

३. आर्य भाषा की नई मंजिलः- सन ६३१ से ७११ तक सिंध देश की भाषा अपभ्रंश सिंधी थी। राजा दाहिर सेन भारतीय उपमहाद्वीप के पश्चिमी क्षेत्र में सिंध का अंतिम हिंदू शासक था। ७११ इस्वी में मुहम्मद बिन क़ासिम ने सिंध पर जीत हासिल की और राजा दाहिर सेन को जीतकर, सिंध में अरबों के राज्य की बुनियाद रखी। अरबों ने तकरीबन ३०० साल राज्य किया, उस समय में अपभ्रंश सिंधी भारतीय आर्य भाषा के विकास की बीच की मंजिल पार करके, नई मंजिल में दाखिल होने वाली राह पर आगे बढ़ रही थी। १०५० से १५२० ई. तक सूमर और समा वंश का सिंध पर ज़ोर था। उनकी मातृभाषा सिंधी थी, इसलिए सिंधी बोली उस समय के राज्य में बहुत बढ़ी। सिंध में और लोगों की हुकूमत शुरू होने से लेकर सन् १८४३ में अंग्रेजों के सिंध जीतने तक, देश की सरकारी कारोबार की बोली फ़ारसी थी। इसी वजह से सिंधी में बहुत अधिक फारसी शब्द आ गए।

सिंध में अंग्रेजों की हुकूमत १८४३ ई. से लेकर १९४७ तक रही और अनेक अंग्रेजी शब्द सिंधी बोली के अंग बन गए। जब अंग्रेजी हुकूमत थी तब सिंधी बोली के लिए एक वर्णमाला मुकर्रर नहीं हुई थी। इस समय में जो अरबी सिंधी वर्णमाला काम में आ रही है वह १८५३ ई. में अंग्रेज सरकार ने अपने इल्म ख़ाते के ज़रिए तैयार कर प्रचारित किया।

विभाजन के बाद सिंधी भाषा का विकास-

सन १८४३ से लेकर १९४७ तक सिंध में अंग्रेजों का राज था। १९४७ में जब भारत आज़ाद हुआ तो अंग्रेज़ो को सिंध भी छोड़ना पड़ा। आज़ाद हिंदुस्तान के दो हिस्से हुए- हिंदुस्तान और पाकिस्तान। उस समय बहुत से मुस्लिम पाकिस्तान में शामिल हुए। पूरे सिंध प्रदेष को पाकिस्तान में शामिल करने के बाद, सिंध देश में हिंदुओं में से १२-१३ लाख हिंदू सिंधी, सिंध से हिंदुस्तान आ गए और यहाँ महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, मध्य प्रदेष, उत्तर प्रदेष, दिल्ली आदि में रहने लगे। दुर्भाग्य से आज़ादी के साथ अपनी मातृभूमि के विभाजन और बहुत से हिंदू सिंधियों के बेघर हो जाने की कहानी बहुत ही कारुणिक थी। पाकिस्तान और भारत के अतिरिक्त, कई सिंधी व्यापारी दुनिया के कोने-कोने में, विषेषकर दक्षिण पूर्व एशिया में रहते हैं। विभाजन के बाद भारत में सिंधियों की सामाजिक हालत बहुत बुरी थी, कितने सिंधी परिवार ऐसे शहरों और गांवों में जाकर रहे, जहां बच्चों को सिंधी भाषा की पढ़ाई नहीं हासिल हुई। शिक्षा हासिल करने की सहूलियत नहीं थी। धीरे-धीरे शहरों में सिंधी भाषा पढ़ाई जाने लगी। सिंधियों ने अनेक संस्कृतियों से मिश्रण करना सीखा। धीरे-धीरे अपनी पहचान खो दी। जैसा कि पोपटी हीरानंदानी जी ने कहा था कि भूमि और भाषा अटूट रूप से जुड़े हुए हैं, यदि आप एक को खो देते हैं तो आप अंततः दूसरे को खो देंगे। हिंदुस्तान में विभाजन के बाद भारत और सिंध में सिंधी भाषा दो अलग-अलग रूपों से विकास कर रही है। भारत में जहां भी सिंधी हिंदुओं को रोज़ी रोटी मिली वहां जाकर बस गए। अलग-अलग प्रांतों में जाकर बसने से सिंधी बोली पर बहुत गहरा असर पड़ा।

आज़ादी के बाद का इतिहास-

मान्यता के लिए एक लंबे और कठिन २० साल के संघर्ष के बाद सिंधी भाषा को १० अप्रैल १९८७ को भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया था। अंग्रेजों के राज के असर के कारण सिंध के लोगों पर पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति का गहरा प्रभाव पड़ा। लोगों को नए-नए विषयों की जानकारी प्राप्त होने लगी। इसका नतीजा यह निकला कि सिंधी साहित्य व्यापक और बहुमुखी बनने लगा। पहले के समय में सिंधी साहित्य के विषय बहुत

ही सीमित थे, पर नए दौर में बहुत से नए विषयों पर लिखा जाने लगा। बहुत से साहित्यकारों और रचनाकारों ने सिंधी साहित्य में बहुत योगदान दिया। सिंधी भाषा और साहित्य के विकास के लिए कुछ संस्थाएं खोली गई, जैसे-भारत के विभिन्न प्रांतों में सिंधी अकादमी खोली गई, राष्ट्रीय सिंधी भाषा विकास परिषद (एनसीपीएसएल) की स्थापना आदि। साथ ही रेडियो पर कार्यक्रम किए गए, सिंधी नृत्य, सिंधी लोक कला, सिंधी संस्कृति के ज़रिए सिंधी भाषा का प्रचार-प्रसार किया गया।

विकास के नए संदर्भ-

२६ मई, १९९४ को राष्ट्रीय सिंधी भाषा विकास परिषद (एनसीपीएसएल) को स्थापित किया गया। इसे स्थापित करने का मुख्य उद्देश्य था सिंधी भाषा का वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के ज्ञान के साथ-साथ आधुनिक संदर्भ में विकसित विचारों एवं ज्ञान के प्रसार के लिए कार्य करना।

गौरतलब है कि वर्ष २०१७ में राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान (एनआईओएस) और राष्ट्रीय सिंधी भाषा विकास परिषद के बीच एक समझौता हुआ, जिसके अंतर्गत दोनों संस्थाएं सिंधी भाषा और साहित्य के विकास के लिए मिलकर कार्य करने पर सहमत हुई। इस योजना के तहत एनआईओएस को प्रारंभिक, माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम सामग्री निर्माण का दायित्व दिया गया। एनआईओएस ने माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली में सिंधी भाषा की सामग्री का निर्माण कार्य पूरा कर लिया है। जो पाठ्यक्रम तैयार किए गए हैं उनमें सिंधी की सभी विधाओं का समावेश किया गया है। सिंधी भाषा व साहित्य का संपूर्ण इतिहास, सिंधी कला व संस्कृति का परिचय, सिंधी की प्रमुख रचनाओं का परिचय, सामग्री की उत्तम व्याख्या और प्रस्तुतीकरण आदि विषेषताएँ समाहित हैं। इसके ज़रिए विद्यार्थी सिंधी भाषा और संस्कृति के बारे में विस्तृत जानकारी हासिल कर सकते हैं।

एनआईओएस 'ई-विद्या' चैनल पर सजीव वीडियो कार्यक्रम प्रसारित करता है, जिसके अंतर्गत सिंधी विषय पढ़ रहे विद्यार्थिन्यों के साथ संवाद किया जा सकता है और सुविधा के लिए रिकॉर्डिंग भी उपलब्ध है।

सिंधी समाज में उच्च शिक्षा की ओर बढ़ते कदम-

अपनी मातृभाषा को सीखना और उसका गहरा अभ्यास करने से मनुष्य के विचारों और उनके व्यवहार में विशालता आती है। साथ ही देश के लिए भी एकता के भाव को ताकत मिलती है। सिंधी भाषा और साहित्य का अभ्यास भी देश की एकता के लिए लाभकारी सिद्ध हुआ है। विद्यालय में प्रारंभिक शिक्षा में सिंधी विषय पढ़ने से न सिर्फ अच्छे परिणाम मिलते हैं बल्कि मातृभाषा की भी व्यापक जानकारी मिलती है।

११वीं और १२वीं कक्षा में इच्छानुसार विषय के तौर पर सिंधी पढ़ने से भी उच्चतर शिक्षा में सिंधी में पढ़ाई जारी रखी जा सकती है। बी.ए./एम.ए. सिंधी विषय से पास करने के बाद प्रतियोगिता परीक्षाएं भी सिंधी विषय में दी जा सकती है। प्रतियोगी परीक्षाएं, जैसे-आई.ए.एस. और आर.ए.एस परीक्षाओं में सिंधी विषय लेकर अच्छे परिणाम हासिल किए जा

सकते हैं।

लोक सभा, राज्य सभा, विधान सभा, विधान परिषद में अनुवादक और दूसरे पदों पर कार्य किए जा सकते हैं। आकाशवाणी और दूरदर्शन द्वारा प्रसारित होने वाले सिंधी कार्यक्रमों के लिए, अधिकारी, अनुवादक और उद्घोषक आदि के पदों पर भी नौकरी हासिल की जा सकती है। सिंधी विषय की डिग्री होने से सिंधी अध्यापक या प्राध्यापक की विद्यालय या कॉलेज के पद पर नियुक्ति मिल सकती है। नई शिक्षा नीति के अनुसार विद्यार्थी शोध करने के लिए ४ साल की डिग्री कार्यक्रम के बाद पी.एच.डी. में दाखिला ले सकते हैं।

सिंधी भाषा के विकास के लिए हम सभी को एक साथ आगे बढ़ने की आवश्यकता है। अतएव, एक और सरकारी संस्थाएँ राष्ट्रीय षिक्षा नीति के आलोक में भाषा संवर्धन के लिए कार्य कर रही हैं, दूसरी ओर आम जन को जागरुक होना होगा और सिंधी भाषा व संस्कृति के संरक्षण के लिए समर्पित भाव से कार्य करना होगा।

संदर्भः

१. सिंधी साहित्य का इतिहास, डा. मुरलीधर जैतली

२. सिंधी शइरु जी तारीख़, डा. दयाल आशा

३. ैजंदकंतक ज्तपसपदहनंस क्पबजपवदंतल . सतीश रोहिड़ा

वेबसाइटः

'कथा साहित्य का पुनर्पाठ' का अनुशीलन

आदर्श उपाध्याय

शोध-छात्र
दिल्ली विश्वविद्यालय,दिल्ली ११०००७
सम्पर्क सूत्र- ९९९९७३४१५५

सारांश -

प्रस्तुत शोध आलेख में डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय द्वारा रचित पुस्तक 'कथा साहित्य का पुनर्पाठ' के अनुशीलन पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है ।

प्रमुख पारिभाषिक शब्द -

नवजागरण, वैश्वीकरण,उत्तर आधुनिक विमर्श, पुनर्पाठ,प्रतिमान, स्त्री-विमर्श,दलित विमर्श, भारतीय ज्ञान परंपरा,आलोचना, विचारधारा, बाजारवाद, आदि ।

डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय द्वारा लिखित आलोचनात्मक पुस्तक 'कथा साहित्य का पुनर्पाठ' हिन्दी साहित्य के लिए एक वरदान साबित हो रहा है । इस पुस्तक में कुल ३२ अध्याय हैं। डॉ. उपाध्याय ने कथा साहित्य के उन बिन्दुओं एवं कोनों को विश्लेषण किया है, जो अभी तक किसी भी आलोचक से अछूता था । यह पुस्तक हमें यह बताती है कि वर्तमान समय में संपूर्ण हिंदी कथा साहित्य का पुनर्पाठ क्यों आवश्यक है ? इसमें हिन्दी नवजागरण एवं नवजागरण से पहले एवं बाद के संपूर्ण कथासाहित्य का नया पाठ तैयार करते हुए, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श, दलित विमर्श,उत्तर आधुनिक विमर्श इत्यादि पर पूर्णतः प्रकाश डाला गया है। आलोचक ने भारतीय ज्ञान परंपरा की सापेक्षता में एक अभिनव मूल्यांकन किया है।

पुनर्पाठ की आवश्यकता क्यों - सर्वप्रथम आलोचक ने पुनर्पाठ की आवश्यकता क्यों ? पर विचार करते हुए भूमिका में लिखा है कि,' वैश्वीकरण और विश्वग्राम की प्रतिष्ठा के लक्ष्य से परिचालित वर्तमान दौर में जब साहित्य और आलोचना दोनों ही समसामयिक विमर्शो को विशेष महत्व दे रहे हैं तब यह जरूरी हो जाता है कि हम संपूर्ण कथा साहित्य पर नये सिरे से दृष्टिपात करें। कथासाहित्य की अब तक की उपलब्धियों और संभावनाओं को सही ढंग से विश्लेषित करने के लिए यह आवश्यक है कि हम वर्तमान उत्तर आधुनिक पाठ-केंद्रित आलोचना पद्धतियों के आलोक में उसका वस्तुनिष्ठ पुनर्पाठ तैयार करें। इसके लिए वर्तमान पाठ केंद्रित आलोचना पद्धतियां हमें मूल्यांकन का नया औजार उपलब्ध कराती हैं। हमारे लिए अनुकूल पर्यावरण उपलब्ध कराती हैं। यह भी प्रत्येय हैं कि हिंदी कथासाहित्य के सतर्क पाठ- विश्लेषण द्वारा ही उसके बहुस्तरीय और गहन अर्थ को सही संदर्भ में उद्घाटित किया जा सकता है। इसकी बहुस्तरीय संरचना एवं अद्यतन उपलब्धियों में अर्थ की ऐसी अनेक सुनी-अनसुनी अनुगूँजे हैं जिन्हें सुनने-सुनाने का कार्य वर्तमान उत्तर आधुनिक समीक्षा पद्धतियां बखूबी कर सकती हैं। हिंदी का संपूर्ण कथासाहित्य अपने वैविध्यपूर्ण स्वरूप में एक विशिष्ट अंतर्पाठ का समुच्चय है जिसके हरेक रेशे को अलग करके इसे विराट अर्थदीप्ति और पुनर्नवता प्रदान की जा सकती है। इसकी सृजनात्मक

क्षमता का व्यवस्थित आकलन किया जा सकता है। इसे विश्वस्तरीय विमर्श का हिस्सा बनाया जा सकता है।

साहित्य में संवेदनात्मक औदात्य, वस्तुगत वैविध्य, तथ्यात्मक विवरणों के साथ- साथ वैचारिक संश्लेषण का विशेष महत्व है। हिंदी कथासाहित्य अपने उद्भव काल से ही विचार के महत्व को समझकर चला है। विचार किसी भी साहित्य का मेरुदंड होता है। इस संदर्भ में महाकवि गोस्वामी तुलसीदास ने अत्यंत सुंदर बात कही है जिसका आशय प्रस्तुत कर रहा हूं। उनके अनुसार बुद्धिमान लोग हृदय को समुद्र, बुद्धि को सीप और सरस्वती को स्वाति नक्षत्र के समानकहते हैं। इसमें यदि श्रेष्ठ विचार रूपी जल बरसता है तो मुक्तामणि के समान सुंदर कविता होती है। कहने का आशय यह है कि साहित्य रूपी मोती का निर्माण विचारधारा रूपी जल से ही होता है। कथासाहित्य की अब तक की यात्रा इस बात का सबूत है कि कि वह साहित्य के समाजोपयोगी और लोकधर्मी स्वरूप को लेकर चलने के साथ-साथ मनुष्य में निहित 'स्व' अथवा 'आत्म' के विमर्श को भी आलोकित करती हुई आगे बढ़ी है। यहां हमने विचार के प्रश्न को केवल इसलिए उठाया है कि उत्तर आधुनिकतावाद के आयोजक संयोजक विचारधाराओं के अंत की घोषणा कर चुके हैं। इस कारण समकालीन समाज, साहित्य और संस्कृति के समक्ष एक अभूतपूर्व द्वन्द्व उपस्थित हो गया है। मेरा मानना है कि १ विचारधारा के अंत की बात करना भी प्रकारांतर से एक प्रकार की विचारधारा ही है, क्योंकि विचारधाराओं के अंत की बात भी तो एक भिन्न विचार ही है। यह सर्वज्ञात है कि अपनी भिन्न अवधारणाओं, सांस्कृतिक चिंताओं और सामूहिक अवचेतन के कारण भारत और पश्चिम की सभ्यताएं दो भिन्न मानवीय पर्यावरण की अभिव्यक्ति हैं। दोनों की साहित्यिक दृष्टि और सृजन-क्षेत्र एक दूसरे से अलग हैं। इसलिए किसी नए विचार और विचारधारा के आगमन से दोनों की भिन्न सांस्कृतिक अभिरुचियों भी टकराती हैं। मनुष्य जाति की इस प्रदीर्घ जययात्रा और उपलब्धियों में पूर्व और पश्चिम दोनों के ही भिन्न भिन्न मानव समूहों के ऐतिहासिक योगदान रहे हैं। यदि देखा जाए तो वैज्ञानिक तकनीकी उत्कर्ष और भौतिकवादी सभ्यता की ओर विश्वमनुष्यता को ले जाने की दृष्टि से पश्चिम की युगांतरकारी भूमिका रही है। उसने मानव जीवन को सुखी, स्वस्थ, सुविधासम्पन्न, सुरक्षित और महत्त्वाकांक्षी बनाने में जो सफलता प्राप्त की है उसके कारण पूरब में पश्चिम के प्रति प्रबल आकर्षण पैदा हुआ है। इसके ठीक विपरीत भारत जैसे प्राचीनतम सभ्यता संस्कृति वाले देश औपनिवेशिक और लुटेरी सरकार के अपमान से आक्रांत रहे हैं। फलस्वरूप संपूर्ण प्राच्य जगत को आधुनिक एवं वैश्विक विमर्श के दायरे से बाहर रखने का एक सोचा-समझा षडयंत्र किया जाता रहा है। जबकि भारत के पास विश्व की प्राचीनतम ज्ञान परंपरा है। वह ज्ञान-विज्ञान, साहित्य-संस्कृति, धर्म-दर्शन, मूल्यबोध, संवेदनात्मक औदात्य से विश्व बंधुत्व तक परिव्याप्त है। हम भारतीय अपनी गौरवशाली परंपरा के श्रेष्ठतम रूप को बदलते संदर्भों के साथ समायोजित करते हुए नए मानदंड उपलब्ध नहीं करा सके, जिसके कारण जो हमारा स्वाभाविक अधिकार है वह हमें नहीं मिल पाया है। '१

हिन्दी नवजागरण एवं कथा साहित्य -

इस पुस्तक का प्रथम अध्याय है - हिंदी नवजागरण और आरंभिक दौर के उपन्यास' ।इसके माध्यम से डॉ. उपाध्याय हमें यह बताने की कोशिश करते हैं कि वैश्वीकरण एवं बाजारवाद के समय में हम सम्पूर्ण कथा साहित्य पर गहनता से एवं नए सिरे से दृष्टिपात करें । सन् १८५७ से १९२० के मध्य भारतीय समाज में जो नवोन्मेष उपस्थित हुआ उसे डॉ. रामविलास शर्मा ने नवजागरण तथा पण्डित श्री नारायण चतुर्वेदी ने हिन्दू पुनर्जागरण की संज्ञा प्रदान की। इस नवजागरण से भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति के मध्य संवाद के साथ-साथ अभूतपूर्व टकराहट पैदा हुई। भारतीयों में नयी शिक्षा के प्रति रूझान बढ़ने, भौतिक परिस्थितियों में युगान्तरकारी बदलाव उपस्थित होने, प्रेस और समाचार-पत्रों के सक्रिय होने तथा अंग्रेजों की औपनिवेशक शोषण नीति पर दृढ़ रहने के कारण देशवासियों में आत्मचेतना जागृत हुई। भारतीयों ने अपने इतिहास और परंपरा को अन्वेषित करना आरंभ किया तथा उसमें अपनी अस्मिता की पहचान के प्रति उत्कट ललक पैदा हुई। ऐसी स्थिति में भारतीय राजनीति, सामाजिक संरचानाएं तथा साहित्य-सृजन की प्रक्रिया बड़े ही विलक्षण ढंग से प्रभावित हुई है।'२ इस संदर्भ में डॉ. बच्चन सिंह ने लिखा है, 'भारतीय नवजागरण से संबद्ध महापुरुष ने, राजाराम मोहनराय से महात्मा गाँधी तक, अपनी अस्मिता की प्रतिष्ठा तथा जनता की जागरूकता के लिए भारतीय संस्कृति का आधार ग्रहण किया है। राजा राममोहन राय ने उपनिषदों का सहारा लिया तो विवेकानन्द ने अद्वैत वेदान्त का स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेद का इनके आधार पर उन्होंने धार्मिक भेद-भाव, ऊँच-नीच, छुआ-छूत,

बाह्याडम्बर, जाति-पांति का जमकर विरोध किया। स्पष्ट है कि उनके विचारों को नयी दिशा देने का कार्य अंग्रेजी उपनिवेशवाद तथा तत्कालीन समाज की ज्वलन्त समस्याओं ने किया। इस तरह स्वाधीनता आन्दोलन ने भारतीयता की पहचान के कारक निर्मित किये।

इसके ,' फलस्वरूप नवजागरण कालीन सुधारों के परिप्रेक्ष्य में लिखे गये कथा-साहित्य का विश्लेषण सबसे पहले अभीष्ट है। विश्व के दूसरे नवजागरणों की भांति भारतीय पुनर्जागरण भी परंपरागत संरचनाओं मसलन परिवार, विवाह, धर्म, - समाज, शिक्षण एवं राजनीतिक संस्थाओं के पुनर्गठन का उपक्रम करता है इस दौर में परंपरा के वरणीय पक्षों को ग्रहण करते हुए उसके अन्यान्य सन्दर्भों का प्रतिरोध करके नूतन सत्ता संरचना को उभारने का प्रयास दिखलायी पड़ता है। अतएव इस दौर में जो भी कहानियाँ उपन्यास लिखे गये उनमें जीवन की बहुस्तरीय जटिलताओं की परख भले ही न हो परन्तु वे अपने में व्यापक आशयों को समेटकर अपने सामाजिक दायित्व के निर्वाह के प्रति सतर्कता अवश्य दिखलाते हैं। हमें यह स्वीकार करने मंत कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि भारत में कथा कहने और सुनने की प्रदीर्घ परंपरा के बावजूद आधुनिक उपन्यास का प्रारंभ पाश्चात्य प्रभाव से ही संभव हुआ। हिन्दी के प्रथम उपन्यास को लेकर विद्वानों में आज भी मतभेद कायम है। 'परीक्षा गुरु' (१८८२) को उपन्यास की अधिकांश शर्तों को पूरा करने के कारण आचार्य शुक्ल ने हिन्दी का पहला उपन्यास माना था, जिसके लेखक लाला श्रीनिवासदास हैं। उस दौर के चार आरंभिक उपन्यास हैं- पं. गौरीदत्त का 'देवरानी-जेठानी की कहानी'' (१८७०), श्रद्धाराम फिल्लौरी का भाग्यवती (१८७७), लाला श्रीनिवासदास का 'परीक्षागुरु' (१८८२) तथा राधाकृष्णदास का 'निस्सहाय हिन्दू' (१८८५)। इनमें से आप किसी को भी हिन्दी का पहला उपन्यास मान सकते हैं, क्योंकि इनका मूलभूत वैशिष्ट्य सामाजिक प्रश्नों तथा सांस्कृतिक चिन्ताओं का प्रकटन है। इस दृष्टि से इनमें पर्याप्त साम्य है। लेकिन उपन्यास औसत अनुशासन के निर्वाह की दृष्टि से 'परीक्षा गुरु' ही सफल है। कतिपय विद्वान भारतेन्दु हरिश्चंद्र की एक कहानी, 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' में भी उपन्यास की संभावनाएं तलाशते हैं। इसी दौर में डिप्टी अहमद का 'मिरातुल अरुस' नामक उर्दू में उपन्यास प्रकाशित हुआ। इन सभी उपन्यासों में स्त्री-शिक्षा और समाज-सुधार भावना का प्रबल आग्रह पाया जाता है। इस समय स्त्री की परंपरागत अशिक्षा को दूर कर उन्हें शिक्षित करने का आग्रह उच्चवर्गीय नवशिक्षित वर्ग द्वारा सामने आता है। यह तत्कालीन समाजिक व्यवस्था का यथार्थ निदर्शन है कि इन उपन्यासों की वस्तु-योजना उच्चवर्ग से संबंद्ध है। यदि 'देवरानी-जेठानी की कहानी का आधार मेरठ के अग्रवाल बनिये हैं तो 'मिरातुल अरुस' का वस्तु-विधान दिल्ली के प्रसिद्ध कुलीन वंश पर अवलम्बित है। 'भाग्यवती' में काशी के ब्राह्मण की कथा है तो 'परीक्षा गुरु' में दिल्ली में अपना कारोबार चलाने वाले सुप्रतिष्ठ व्यवसायी की कहानी है। इसी तरह 'निस्सहाय हिन्दू' में गोहत्या की चिन्ता में निमग्न ब्राह्मणों की कथा है। इन उपन्यासों का मुख्य वैशिष्ट्य यह है कि इनमें प्रकारान्तर से ही सही स्त्रियों की सामाजिक हैसियत उठाने और उन्हें शिक्षित करने का संकल्प व्यक्त हुआ है। इनमें मर्यादित रूप में स्त्री-पुरुष रिश्तों को नये सिरे से पारिभाषित करने का प्रयास भी दिखलायी पड़ता है 'भाग्यवती' की भूमिका में श्रद्धाराम फिल्लौरी ने लिखा है कि- 'बहुत दिनों से इच्छा थी कि कोई ऐसी पोथी हिन्दी भाषा में लिखूं कि जिसके पढ़ने से भारतखण्ड की स्त्रियों को गृहस्थ धर्म की शिक्षा प्राप्त हो, क्योंकि यद्‌यपि कई स्त्रियों कुछ पढ़ी-लिखी तो होती हैं ।परन्तु सदा अपने ही घर में बैठे रहने के कारण उनको देश-विदेश की बोलचाल और अन्य लोगों से वरत-व्यवहार की पूरी बुद्धि नहीं होती है।' इस तरह उस समय का लेखक स्त्री-शिक्षा की वकालत तो करता है लेकिन उसको घर के बाहर निकलने की छूट देने की हिमायत नहीं करता। इसे तत्कालीन परिवेश और जनता की चित्तवृत्ति की सीमा भी माना जा सकता है, क्योंकि हम आरम्भिक उपन्यासों में किसी क्रान्तिकारी उद्भावना की अपेक्षा नहीं कर सकते।'३ डॉ.उपाध्याय ने नवजागरण कालीन उपन्यासों के वस्तुनिष्ठ पुनर्पाठ द्वारा यह स्थापित किया है कि इन उपन्यासों ने प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद जैसे बड़े उपन्यासकारों के लिए पृष्ठभूमि तैयार की।इसी क्रम में लेखक ने माधवराव सप्रे की कहानी ' एक टोकरी भर मिट्टी ' को हिंदी की पहली कहानी सिद्ध किया है। साथ ही,पांच अध्यायों में जयशंकर प्रसाद के संपूर्ण कथासाहित्य का अभिनव मूल्यांकन किया है।

दलित विमर्श एवं कथा साहित्य का पुनर्पाठ- लेखक ने ' दलित विमर्श और प्रेमचंद के उपन्यास ' शीर्षक अध्याय में लिखा है कि सदियों से दलितों पर हो रहे अत्याचारों में तब कमी आनी शुरु हो गई, जब विमर्श के माध्यम से साहित्यकारों ने उनकी आवाज को पुरजोर से उठाने की सफल कोशिश की ।इस संदर्भ में वे लिखते हैं कि,' वर्तमान उत्तर आधुनिक दौर

में दलित अवधारणा एवं साहित्य बौद्धिकों में मीमांसा का विषय है जिसके परिप्रेक्ष्य में प्रेमचंद के उपन्यास के पुर्नपाठ और पुर्नमूल्यांकन की अपेक्षा रखते हैं। दरअसल प्रेमचंद के उपन्यासों का फलक इतना विस्तृत है कि वे तमाम जीवन वृत्तियों और विचार सारणियों के समस्त अंतरीपों का अनचाहे ही संस्पर्श कर लेते हैं। उत्तर आधुनिकतावाद एक विराट बौद्धिक एंव सांस्कृतिक आंदोलन है जिसमें समकालीन दौर के तीव्र प्रौद्योगिकीय परिवर्तन और विषम परिस्थितियों सहित संघर्षरत मनुष्यता के समस्त बौद्धिक विमर्श अतंर्भुक्त हैं। यह अपने प्रशस्त रूप में उत्तर संरचनाबाद, विश्वबाजारवाद तथा काले लोगों के संघर्ष जिसे हम भारतीय संदर्भ में दलित विमर्श कहते हैं जैसे अनेक वैचारिक आंदोलनों का संश्लेषण है। इसने न केवल अश्वेत लेखकों के लिए अनुकूल सर्जनात्मक परिवेश उपलब्ध कराया अपितु उनके द्वारा लिखित साहित्य की व्यवस्थित समीक्षा का मार्ग प्रशस्त करते हुए साहित्यानुशीलन की नव्यतम प्रविधियों का विकास भी किया। इस दौर में लैटिन अमेरिकी, अफ्रीकी एवं एशियाई साहित्यकारों के सर्जनात्मक साहित्य की धूम रही तथा ब्लैक पैंथर की स्थापना द्वारा काले लोगों के संघर्ष, आक्रोश, व्यथा को वैचारिक जामा पहनाते हुए अश्वेत मनुष्यता की मुक्ति और मानवाधिकार को तार्किक परिणति प्रदान की गयी। यह उत्तर आधुनिक परिवेश का ही प्रतिफलन है कि आज अमेरिका समेत तमाम पश्चिमी देशों में साहित्य, संगीत, कला एंव क्रीड़ा के क्षेत्र में अश्वेत लोगों का वर्चश्व है और वे फिल्म और फैशन की दुनिया में अपनी उपथिति दर्ज करा रहे हैं। दक्षिण अफ्रिका में अश्वेत क्रांति, नेल्सन मंडेला की जेल से रिहाई तथा राष्ट्राध्यक्ष पद पर उनकी प्रतिष्ठा के पिछे उत्तरआधुनिक विमर्श एवं परिवेश की भी स्वाभाविक भूमिका रही है। सीमाहीन खुलापन उत्तर आधुनिकता का केन्द्रीय विचार है जिसने परंपरागत वर्जनाओं, जकड़नों एवंबन्धनों को विश्व भर में शिथिल कर दिया है। भारतीय संदर्भ में विशेषकर मराठी, गुजराती एवं कन्नड़ में दलित आंदोलन का उभार तथा विगत कुछ वर्षों से हिंदी साहित्य में दलित विमर्श का बढ़ता घटाटोप इस उत्तरआधुनिक विमर्श का ही प्रतिफलन है भले उसके पीछे अपने स्थानिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारण रहे हो। वस्तुतः दलित विमर्श बदलते मानवीय संबंधों के ध्रुवीकरण और पुनर्संघटन को गति प्रदान करता है। उसे बदलते राजनीतिक और आर्थिक चेतना के विकास के परिप्रेक्ष्य में पहचानने के लिए हथियार मुहैया कराता है। भारतीय संदर्भ में दलित शब्द व्यापक अर्थवत्ता लिए हुए है जिसमें केवल हरिजन और नवबौद्ध ही नहीं जाते अपितु गाँव के सीमांत पर रहने वाले सभी अछूत जातियां, आदिवासी, भूमिहीन, खेतिहर मजदूर कष्ट एवं कर्ज में डूबी जनता तथा समस्त घुमक्कड़ जातियों समाहित है। मेरे विचार से इसे आर्थिक दृष्टि से पिछड़े समस्त सुविधाओं से वंचित तथा अमानवीय स्थितियों में जीवन यापन करने के लिए अभिशप्त, तिरस्कृत मनुष्यता का भी समावेश होना चाहिए। दलित समाज, संवेदना दलित सरोकार की तरह ही दलित साहित्य की निश्चित, सुसंगत और वैज्ञानिक व्याख्या प्रतिष्ठित नहीं हो सकी है। मेरी दृष्टि में दलितों के दुःख, संघर्ष, आक्रोश, गुलामी, अद्यःपतन, उपहास, आशा-आकांक्षा एवं जीवन की विसंगतियों का समाहार करते हुए दरिद्रता का कलात्मक शैली में सघन चित्र प्रस्तुत करने वाला साहित्य ही सच्चे अर्थों में दलित साहित्य है। दलित साहित्य डॉ. भीमराव आम्बेडकर तथा महात्मा ज्योतिराव फुले के विचारों के आलोक में अंकुरित हुआ जिसे अनेक रचनाकारों ने अपने अनुभव, चेदना और विद्रोह के रसायन से सिचिंत किया। इसमें निरंकुश वेदना के गर्भ से जन्मा विस्फोटक नकार तथा जड़ व्यवस्था रूपी पर्वत की कठोर सहासी चट्टानों को फोड़कर निकलने बाला प्रपात सदृश भेदक विद्रोह भी है जिसके कारण उसका स्वरूप कहीं-कहीं अपेक्षाकृत ज्यादा आक्रामक उदंड और विद्रोही नजर आता है। कतिपय विद्वान, दलित साहित्य पर बौद्ध धर्म और मार्क्सवाद का प्रभाव चस्पा करते हैं। जबकि तीनों में मूलभूत अंतर यह है कि बौद्ध धर्म धार्मिक समानता, मार्क्सवाद आर्थिक समानता तथा दलित विमर्श सामाजिक समानता के लक्ष्य से परिचालित है।

यह सच है कि दलित विमर्श को पुरस्कृत करने वाले भी दलित साहित्य का कोई स्वायत्त सौंदर्यशास्त्र निर्मित नहीं पा रहे हैं और न ही ऐसी कोई उत्कट (घ्हूाहो) रचना ही दे सके हैं जो समूचे हिन्दी जगत को आपदामस्तक हिला है। आज दलित विमर्श सृजन संघर्ष की उर्वर जमीन तैयार करने के बजाय राजनीतिक अखाड़ेबाजी में अपनी शक्ति संभावना और ऊर्जा का बेजा इस्तमाल कर रहा है। वह प्रेमचंद जैसे विराट रचनाकार को दलित विरोधी बतलाकर अपनी ही जड़ों में मट्ठा डाल रहा है। दूसरी ओर एक वर्ग के लेखक इस जिद्द पर अड़े है कि सच्चा दलित साहित्य वही है जो दलितों द्वारा लिखा गया है। उनके अनुसार एक दलित लेखक अपने समाज की पीड़ाओं, कुंठाओं, यातनाओं, आक्रोश एवं विद्रोह को जितनी तीव्रता, संवेदनशीलता और स्वानुभूत ईमानदारी के

साथ व्यक्त कर सकता है वैसे दलितो के जीवन पर लिखने वाला दलितेतर लेखक नहीं कर सकता। एक वर्ग यह मानकर चलता है कि दलितों के जीवन पर किसी भी वर्ग के लेखक नहीं कर सकता। एक वर्ग यह मानकर चलता है। कि दलितों के जीवन पर किसी वर्ग के लेखक द्वारा लिखित साहित्य के परिधि में आ सकता है। यह भलीभांति संभव है कि कोई प्रतिभावान लेखक अपने प्रतिभा कौशल से एक दलित वर्गीय लेखक की तुलना में दलित मन, उसके जीवन की विद्रूपताओं, यातानाओं, संघर्षी, स्वप्नों तथा स्वप्नभंग की स्थितियों को अपने समूचे पूण्य-पाप के साथ ज्यादा तल्खी और प्रमाणिकता के साथ चित्रित कर सकता है जब हम दलित विमर्श के आलोक में प्रेमचन्द के उपन्यासों पर पुनः दुष्टिपात करते हैं तो पाते है कि उसके विस्तृत कैनवास में भारतीय समाज का हर एक अंग उपस्थित है। उसके भीतर प्रविष्ट होते ही धर्म से पीडि.ति समाज द्वारा उपेक्षित, गाँव के सीमांत पर फेंका गया तथाकथित अछूत समाज, रोटी, कपड़ा, मकान के लिए जद्दोजहद करता हुआ मजदूर वर्ग तथा जीवन की तमाम सुविधाओं से वंचित और युगों से पद दलित अमानवीय स्थितियों में जीने के लिए अभिशप्त मनुष्यता अपने समूचे पाप-पुण्य के साथ उपस्थित मिलेगी। यही कारण है कि दलित विमर्श के परिप्रेक्ष्य में भी प्रेमचन्द के उपन्यास खुले और अप्रत्याशित विमर्श की मांग करते हैं। यहाँ चिंतनीय बिंदु यह भी है कि क्या प्रेमचंद भी उस तर्किक वैज्ञानिक एवं संकुचित अर्थ में दलित समाज के वकील थे जिस रूप में आज दलित साहित्यकारों की जमात हैं? प्रेमचंद के उपन्यासों पर आग्रहमुक्त होकर विचार करने पर हम पाते है कि वे भारतीय समाज-व्यवस्था के भीतर मानवीय उत्पीड़न का मुखर विरोध तो करते हैं परन्तु क्रांति द्वारा सामाजिक परिवर्तन की हिमायत नहीं करते। कारण स्पष्ट है। उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता अपने आप में अपेक्षाकृत ज्यादा व्यापक और गहरे सामाजिक आशयों को समेटे हुए थी। उनके सामाजिक सरोकार वर्ग विशेष तकसीमित न होकर समूचे समाज और मानव मात्र के प्रति थे। वे बयानबाजी और लफ्फाजी के बजाय जटिल सामाजिक व्यवस्था की पेंचीदगी को समझते थे। उन्हें क्रांति द्वारा स्वाधीनता के लिए संघर्षरत भारतीय समाज का अस्थिर और व्यस्त होना कतई गवारा नहीं था। वे पराधीनता की पीड़ा और आजादी के स्वप्न के साथ-साथ वर्ण व्यवस्था में सुधार की बात इसलिए भी करते थे, क्योंकि उन्हें भय था कि यूरोप की भांति क्रांति न जाने किस प्रकार की तानाशाही को जन्म दे। उनका जोर इस बात पर था कि साहित्य जीवन की गंभीर समस्याओं के संबंध में जनमत तैयार करने का शक्तिशाली साधन है। उनका प्रयास इस दिशा में निरंतर बना हुआ था। ये शोषितों, तिरष्कृतों उपेक्षितों और अबलाओं को सहानुभूतिपूर्वक ऊपर उठाने का प्रयास करतें हैं। यहां दलित विमर्श द्वारा उछाला गया सहानुभूति तथा स्वानुभूति जैसे प्रत्यय का अंतर भी देखा जा सकता है। व्यक्ति (एल्राम्) तथा वस्तु (ध्ंराम्) में जो फर्क है वह प्रेमचंद के उपन्यासों में पूरी तरह दृप्त और स्पष्ट है।'४

प्रेमचन्द के 'गोदान' उपन्यास 'कफन' कहानी आदि दलित की जो दयनीय स्थिति परिलक्षित होती है वह किसी से अछूती नहीं है । लेखक देश की आत्मा में झांककर भारतीय जनता के संघर्षशील बल की थाह लेते हुए यह घोषित करते है कि सही नेतृत्व और सम्यक संगठन द्वारा उसे अपराजेय बनाया जा सकता है। यहाँ प्रेमचंद अछूतपन की समस्या पर विचार करने के लिए किसी दलित पात्र को प्रत्यक्ष तौर पर पेश नहीं करते। वे ऐसे प्रसंग की उद्भावना करते है जहाँ रामायण की रस-प्रद कथा का लाभ लेने के लिए सवर्णीं के जूते उतारने की जगह पर कुछ अछूत लोग सिमटकर आ बैठते हैं। चालू कथा के बीच में ठाकुर द्वारा ब्रम्हचारी को जब इस बात का पता चला तो अछूतो को गालियाँ देना शुरू किया शोर मचा, श्रोताओं ने उन दीन-हीन और हाथ जोड़कर क्षमा मांगते हुए अछूतों को जूतों से खूब मारा-पीटा। डॉ. शांतिकुमार द्वारा इस अमानवीय कृत्य का विरोध करने पर अच्छा-खासा हंगामा हुआ। प्रेमचंद वर्णव्यव्था के अमानवीय चेहरे को यहाँ बेनकाब करतें है। उसके पाशविक रवैये की भर्त्सना करते हैं। साथ यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि जूते उतारने की जगह पर भी तथाकथित अछूतों के बैठने पर सवर्णीं द्वारा हंगामा खड़ा करने का साफ अर्थ तो यहीं हुआ कि उनकी दृष्टि में अछूत वर्ग सवर्णी के जूतों से भी ज्यादा अपवित्र और निम्नतर हैं। लेखक के अनुसार प्रेमचंद किसी रणनीतिक पैंतरेबाजी के बजाय दलित अस्मिता को उभारने का उपक्रम करते हैं।लेखक ने स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों का सामाजिक परिदृश्य और जंगल जहां शुरू होता है में चित्रित समस्याएँ जैसे अध्याय में दलित विमर्श के बदलते परिदृश्य का विश्लेषण किया है।

कथा साहित्य का पुनर्पाठ में स्त्री विमर्श-

डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय ने अपनी पुस्तक कथा साहित्य का विमर्श में स्त्री विमर्श पर भी चर्चा करते हुए स्त्री विमर्श की प्रतिमान तमाम लेखिकाओं के उपन्यासों का जिक्र

किया है ।इसमें सात अध्याय स्त्री-विमर्श को आधार बनाकर लिखे गए हैं। लेखक के अनुसार यदि भारत को अपवाद मान लें तो ,'मानव समाज का इतिहास स्त्री को सत्ता, प्रभुत्व एवं शक्ति से दूर रखने का इतिहास है। विश्व के प्रायः सभी देशों, सभी कालों, सभी जातियों, सभी धर्मीं में स्त्री को पुरुषों के बराबर न आने देने की संरचनात्मक व सांस्कृतिक मर्यादाएं निर्मित की गई हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पश्चिम में मताधिकार के लिए चलाए गए अभियान के अंतर्गत स्त्रीवादी सिद्धांत चलाया गया; जिसमें समान अधिकारों और कार्यस्थल की समानता की बात कही गई थी। इसके बाद लेखिकाओं ने इसे साहित्यिक लेखन के क्षेत्र में प्रयुक्त किया। वर्तमान उत्तर आधुनिक विर्मश के दौर में स्त्री-विमर्श, स्त्री-मुक्ति, नारी अधिकारवाद जैसे प्रत्यय बौद्धिकों में मीमांसा का विषय है। लेकिन इस प्रकार के शब्दबंध का उठना ही यह बताता है कि कहीं कुछ गड़बड़ है, कोई अन्याय हो रहा है, कहीं बेचैनी है, कोई आक्रोश है जो फूट पड़ना चाहता है। स्त्री विमर्श न केवल पुरुष प्रधान समाज के परंपरागत दृष्टिकोण का प्रत्याख्यान है अपितु पुरुष व स्त्री के मध्य समानता को अस्वीकार कर नारी के सशक्तिकरण की प्रक्रिया को बौद्धिक व कार्य रूप देने के लिए संकल्पित है। विश्व के विकसित देशों, यूरोप और अमेरिका में सर्वप्रथम महिलाओं ने पुरुष की भांति आजादी, समानता और प्राकृतिक अधिकारों की खुलकर मांग की। स्त्री-विमर्श की प्रमुख लेखिका केट मिलेट (१९७०) के अनुसार जब एक समूह दूसरे समूह पर शासन करता हैं तो दोनों के मध्य स्थापित संबंधों को राजनैतिक माना जाना चाहिए। यही स्त्री-विमर्श के तमाम पहलुओं का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण किया जाय तो कतिपय रोचक तथ्य सामने आते है। पहला यह है जैसे-जैसे नारी अधिक स्वतंत्र होती है, वह अधिक आत्म-निर्भर होने से पुरुष की आवश्यकता व उसमें अभिरूचि कम कर लेती है। अतः पुरुष नारी को बंधन में रखने और उसे अपने प्रति अभिरूचिनिर्भरता बनाएं रखने के लिए करता है। दूसरे अनेक महिलाएं जो कि शिक्षित हैं, व्यवसायों में कार्यरत है व प्रशासन से जुड़ी हुई हैं अंततः महिला होने के नाते परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूपेण अवसरों की समानता से वंचित रह जाती है। तीसरे उच्चवर्ग की महिलाएं भी अपने पति व पिता के स्वामित्व के प्रभावों का शिकार होती हैं। वे भी सम्पत्ति के स्वामित्व का खुलकर प्रयोग नहीं कर सकतीं। प्रियंवदा बिड़ला की वसीयत का मुद्दा इसका ज्वलंत उदाहरण है। चौथे, महिलाएं वर्ग अथवा प्रजाति के कारण नहीं अपितु महिला होने के नाते शोषित होती हैं। उन्हें महिला होने के कारण निम्नकोटि का समूह माना जाता रहा है। महिलाओं को अनिवार्य रूप से लिंग की भूमिकाओं में बाँटा जाता है, जिसके अंतर्गत उन्हें विशेष प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करने के लिए तैयार किया जाता है। पांचवे, वे महिलाएं जो कि सत्ता को प्राप्त करती हैं वे अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए सत्ता की होड़ को अधिक महत्वपूर्ण मानती हैं, न कि महिलाओं के मुद्दों को। राजनीति में वे राजनीतिज्ञ बन जाती हैं और महिला का अनुभव गौण व सार्थकहीन प्रतीत होता है। यह बात इंदिरा गांधी से लेकर मायावती तक समान रूप से लागू होती है।'५

इसी क्रम में प्रोफेसर उपाध्याय आगे लिखते हैं कि,' उत्तरआधुनिकतावाद और उससे परिचालित स्त्री विमर्श ने नारी जीवन, उससे जुड़े तमाम प्रश्नों एवं उनकी दुनियां में लोकतंत्र लाने का सराहनीय कार्य किया है। अब नारी विश्व की आधी आबादी से जुड़े सवालों पर खुला विमर्श करने में सक्षम है वह नारी जीवन के साथ-साथ समय एवं समाज के हर प्रश्न से टकरा रही है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्त्री-विमंश एक बहुस्तरीय, बहुआयामी एवं जटिल प्रत्यय है जिसकी भिन्न संदर्भों में परस्पर भिन्न व्याख्याएं संभव हैं। स्त्री-विमर्श का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण भी उसके एकार्थी निष्कर्ष और सामान्यीकरण की इजाजत नहीं देता। उसका स्वरूप जटिल एवं वैविध्यपूर्ण है जो संदर्भ- विशेष में बदल जाता है। बावजूद इसके अध्ययन की सुविधा के लिए उसका स्वरूप-विश्लेषण और उसकी कोटियों का निर्धारण एक बौद्धिक अनिवार्यता है। यदि स्त्री विमर्श के समग्र पहलुओं की श्रेणियाँ बनायीं जाएं तो वे मोटे तौर पर तीन हो सकती हैं- १. यौन वे राजनीति (इ्‌दतूग्मे द ऐर्ल्ल्तिूब) २. गृहकार्य की राजनीति (इ्‌दतूग्मे द प्‌दलेैदे०) तथा ३. कार्यस्थल की राजनीति (इ्‌दतूग्मे द दे०-र्ज्त्मि) ।यही वे संवेदनशील क्षेत्र हैं जिन्हें चिन्हित (ॐम) करके स्त्री विमर्श पुरुष वर्चस्व को सीधी चुनौती दे रहा है। सन २००६ मेंण इलाहाबाद में आयोजित एक संगोष्ठी के दौरान सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. परमानंद श्रीवास्तव ने कहा था कि, 'यदि स्त्री विमर्श हिंदी साहित्य में उपस्थित है, बावजूद राजेन्द्र यादव के, तो यह स्त्री लेखिकाओं एवं उनकी सामाजिक सोच के कारण है। 'कहने का आशय यह है कि विगत कुछ दशकों से न केवल हिंदी लेखिकाओं ने नारी जीवन को केन्द्र में रखकर विपुल लेखन किया है अपितु उसके अधिकारों के संबंध में अपना चिंतन भी प्रस्तुत किया है। आज यदि भारतीय नारी अपने बहुआयामी व्यक्तित्व के बल पर जीवन के सभी क्षेत्रों में अपनी सक्रिय उपस्थिति का

परिचय दे रही है तो कहीं-न-कहीं स्त्री एवं स्त्रीत्ववादी विमर्श भी उसे कुछ पाने और घटित करने के लिए प्रेरित कर रहा है। वह समय एवं समाज के बदलते सरोकारों के साथ अपने को नवीनतम स्थितियों तथा चुनौतियों के अनुरूप तैयार कर रही है। नारी अपने मानवीय एवं सामाजिक दायित्वों के सम्यक निर्वाह द्वारा ही स्त्री-विमर्श को सार्थकता प्रदान कर सकती है। 'लेखक ने १९९० से अब तक के उपन्यासों,चित्रामुद्गल के सभी उपन्यासों और उत्तर शती के पुरुष कहानीकारों की कहानियों में नारी जैसे संदर्भों का स्त्री-विमर्श के प्रतिमान पर मूल्यांकन किया है।

कथा साहित्य के अन्य बिन्दु एवं कथासाहित्य का पुनर्पाठ साहित्यिक लेखन में डॉ. उपाध्याय ने साहित्य के उस पक्ष पर दृष्टिपात किया है, जो अछूते हैं और नये सिरे से उसे नया आयाम प्रदान किया है। लेखक ने ' आदिम रसगंधों के गायक रेणु, राहुल सांकृत्यायन के उपन्यासों का पुनर्पाठ, पुनर्नवा के आलोक में चंद्रा, किन्नर विमर्श और पोस्ट बॉक्स नंबर २०३ नालासोपारा, हिंदी कहानी के सौ वर्ष, कहानीकार निशंक, कमलाकांत त्रिपाठी का उपन्यास साहित्य, २१ वीं सदी की संभावनावान लेखिका इंदिरा दांगी, उपन्यासकार अभिमन्यु अनत और दिशाहीन जिंदगियों को दिशा दिखाता उपन्यास जैसे अध्यायों में विशाल हिंदी कथासाहित्य का एक गंभीर पुनर्पाठ तैयार किया है। प्रोफेसर उपाध्याय ने डॉ.रमेश पोखरियाल निशंक को समकालीन हिंदी साहित्य का एक बहु आयामी और सांस्कृतिक धारा का रचनाकार सिद्ध किया है। साथ ही, इनकी कहानियों को युगीन परिवेश, सामाजिक गतिविधियों, सांस्कृतिक चिंताओं और मनुष्य के नित- प्रति के संघर्ष का कथात्मक विन्यास कहा है। लेखक ने कमलाकांत त्रिपाठी के संपूर्ण उपन्यासों का विश्लेषण करने के उपरांत लिखा है कि,' कमलाकांत त्रिपाठी विगत ढाई सौ वर्षों के सर्जनात्मक कथाविन्यास द्वारा अलग- अलग उपन्यासों की सृष्टि कर रहे हैं । इन्होंने नई पीढ़ी के समक्ष इतिहास बोध विकसित करने के लिए आधारभूत सामग्री उपलब्ध कराई है । लेखक ने जिस आंतरिक संलग्नता के साथ इतिहास की भीतरी पर्तों में घुसकर विगत ढाई सौ वर्षों के कालखंड में उद्भूत तमाम समस्याओं के अंतः सूत्रों का संधान स्वाधीन भारत की समस्याओं के कारणीभूत तत्त्व के रूप में किया है वह इन उपन्यासों को अतिशय मूल्यवान और ऐतिहासिक महत्त्व का अधिकारी बनाता है।'६ इसके अलावा साहित्यिक लेखन की विविधता में दिशाहीन जिंदगी को दिशा दिखाता उपन्यास' शीर्षक लेख में समकालीन हिंदी कथा साहित्य में कहानी उपन्यास के क्षेत्र में अलख जगाने वाली लेखिका कमलेश बक्शी का उपन्यास 'दिशा खोजती जिंदगीयाँ' शीर्षक उपन्यास जिसमें समकालीन जीवन व वर्तमान दौर के तमाम समस्याओं अस्पताल की दुनिया, मॉडलिंग की दुनिया, प्रतिरोध की भावना व बलात्कार जैसे संदर्भों को लेखिका ने अपने समय के यथार्थ को उजागर किया हैं। डॉ. उपाध्याय इस उपन्यास के निहित पात्रों उपन्यास के विषय की विविधता, समाज के समक्ष तमाम चुनौतियाँ, नारी संबंधी दृष्टिकोण, स्त्री-पुरुष संबंध, बेरोजगारी, क्षेत्रवाद, भाषावाद, स्त्री को कमजोर समझना, न्याय व्यवस्था की अप्रासंगिकता और उपन्यास की पूर्णता में उपन्यास का शिल्प विधान जिसमें भाषा, शैली, तथ्य, कथ्य की रोचकता बड़ा ही धार्मिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इसके अलावा स्वातंत्र्योत्तर हिंदी- उर्दू कहानी का तुलनात्मक संदर्भ और हिंदी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का गहन विश्लेषण किया गया है।

'हिंदी कथा साहित्य का पुनर्पाठ' लेखक की व्यावहारिक समीक्षा कृतियों में से एक है। इस कृति में लेखक ने कथा साहित्य के परंपरागत प्रश्नों का कलात्मक चित्रण कर नूतन परंपरा निर्मित करने और अपने आलोचनात्मक स्तर पर एक गंभीर पुनर्विश्लेषण का प्रयत्न किया है जिसमें प्रथम लेख 'स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी उपन्यास १८५७ से १६२० तक जिसमें १८५७ ई. के भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास के परिवर्तनकारी बिंदुओं में बड़े पैमाने पर जनसहभागिता, अंग्रेजी सत्ता के प्रति आक्रोश की ज्वाला, पुनर्जागरण का उत्प्रेरित होना, भारतेंदु हरिश्चंद्र तथा उस समय के तमाम रचनाकारों का तत्कालीन परिस्थितियों पर लेखन और भारतीय पुनर्जागरण से संबंद्ध महान समाजसुधारकों का आना समाज की ज्वलंत समस्याओं का निवारण करना जैसे तमाम पक्षों पर लेखक ने दृष्टिपात करते हुए लेखक १८५७ के स्वाधीनता संग्राम के समय जातिवाद, धर्मगत भेदभाव की राजनीति को खत्म कर राष्ट्रीय चेतना में सम्मिलित विभूतियों एवं घटनाओं का उच्चतर भावों में सामंजस्य स्थापित करने तथा अंतवैयक्तिक अभिव्यक्तियों का पर्याय प्रस्तुत किया हैं। हिंदी साहित्य के उपन्यासों में प्रथम उपन्यास का दर्जा और औपन्यासिक विषय वैशिष्ट्य सूक्ष्म परिचय देते हुए जीवन का बहुस्तरीय जटिलताओं की परख तथा व्यापक आशयों को समेटकर अपने साहित्यिक दायित्व का निर्वाह बड़ी सतर्कता से किया है। पुनरुत्थानवादी,

उदारवादी, प्रगतिवादी तथा विकासवादी नवजागरण को उजागर किया है। लेखक अपनी नवीन चेतना का पूर्ण रूप से आत्मसात कर साहित्यिक प्रगतिशील. विकसनशील उपन्यासों में मूल कारण औपनवेशिक गुलामी, तत्कालीन परिवेश, बदलती स्थितियों, राजनीतिक एवं सामाजिक आंदोलन तथा सुधार कार्यक्रम आंदोलन का सम्यक मूल्यांकन किया हैं।

डॉ. उपाध्याय ने दलित विमर्श और प्रेमचंद के उपन्यास के अंतर्गत प्रेमचंद साहित्य में सामाजिक यथार्थ के चित्रण पर बल दिया हैं। दलित विमर्श के बदलते मानवीय संबंधों और दलित सरोकार एवं जीवन की विसंगतियों का कलात्मक शैली से चित्र को प्रस्तुत किया है। लेखक की पैनी दृष्टि प्रेमचंद के लेखन में दलित वर्णव्यवस्था दासता से मुक्ति की छटपटाहट को किया है। जाति व्यवस्था के प्राचीन एवं मध्यकालीन इतिहास तथा समाज व्यवस्था की जानकारी के अतिरिक्त अपने सूक्ष्म भेद पैनी दृष्टि से प्रेमचंद के सामाजिक संदर्भी स्थितियों उनके निजी संघर्ष तथा सामाजिक विसंगतियों की गहन पडताल किया है। इसी तरह से प्रेमचंद का औपन्यासिक शिल्प में लेखक प्रेमचंद उपन्यास की संरचना उत्त उन बुनावट तथा यथार्थ दृष्टि को मनोविज्ञान के आधार को प्रस्तुत किया है। प्रेमचंद के उपन्यास में सेवासदन, प्रेमाश्रय, रंगभूमि, कायाकल्प कर्मभूमि उपन्यासों के शिल्प विधान में गंभीरता, भाषिक व्यवस्था कल्पनात्मक प्रवियों की गहराई से पड़ताल कर अनूठे शैल्पिक कौशल का परिचय दिया है। प्रेमचंद का औपन्यासिक शिल्प विधान और भाषिक व्यवस्था बहुआयामी है। एक उर्दू उपन्यासकार का हिंदी के क्षेत्र से आकर उपलब्धियों के अनेक शिखर पार करते हुए उसके सर्वोच्च शिखर गोदान तक का आरोहण हिंदी जगत की सबसे विस्मयकारी घटना है। अंत में यह कहना अपेक्षाकृत ज्यादा वैज्ञानिक और समीचीन होगा कि इनके उपन्यास शिल्प विधान और सामाजिक संपत्तिगत उपलब्धियों के बावजूद भाषिक अनुप्रयोग और शिल्प संरचना की दृष्टि से उस ऊँचाई को नहीं छू पाए है, जहाँ शरतचंद्र एवं फ्रेंच उपन्यासकार पहुँचे है।आलोचक ने प्रेमचंद के शिल्प विधान के कारणों के पूर्णतंत्र की तकनीक का सही विमर्श प्रस्तुत किया है। लेखक प्रेमचंद साहित्य के तमाम पक्षों का अवलोकन करने के पश्चात् प्रिय कवि जयशंकर प्रसाद के उपन्यास कंकाल का यथार्थ दर्शन जिसमेंण लेखक जयशंकर प्रसाद के यथार्थवादी दृष्टि का तथ्यपरक, सूक्ष्मदर्शी तथा समाजशास्त्रीय समझ का परिचय प्रस्तुत करता है। लेखक यथार्थ दर्शन के निरपेक्ष में तमाम तरह की विसंगतियों समाज की वास्तविक विसंगतियों का आंतरिक एवं भौतिक जगत दोनों की वस्तुस्थिति का साहित्यिक कला में सफल संश्लेषण करते हुए लेखक ने पुनर्पाठ के लिए निर्देश तैयार किये हैं।

हिंदी कथा साहित्य के अंतर्गत राहुल सांकृत्यायन के उपन्यासों का विहंगावलोकन जिसमें राहुल के उपन्यासों का रूपात्मक ढांचा और कलात्मक तंत्र की कमजोरी की बारीक पकड़ का परिचय दिया गया है। लेखक ने राहुल सांकृत्यायन के उपन्यासों का अवलोकन करते हुए उनके लेखकीय व्यक्तित्व की पकड़ को भी उद्घाटित किया है। बाईसवीं सदी, जीने के लिए, सिंह सेनापति, मधुर स्वप्न, जय यौधेय ,विस्मृत यात्री आदि उपन्यासों के वर्ण्य- विषय में ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक उद्देश्यों, आकांक्षाओं, विचारों को बताते हुए उपन्यास के शैल्पिक पक्ष की विफलता का कारण भी बताया गया है। लेखक के अनुसार राहुल जी के उपन्यासों में संरचनात्मक एवं शैल्पिक दुर्बलता भले ही मिलती हो परंतु भाषाई दृष्टि से उनमें पर्याप्त विविधता विद्यमान है। ऐसे कितने ही ऐतिहासिक और पुरातात्विक महत्त्व के शब्द हैं, राहुल जी ने जिनका पुनरुद्धर किया है। साथ ही उन्हें वर्तमान संदर्भ में संप्रेषणीय बनाने के लिए नयी अर्थच्छवियों से लैस किया गया है। उदाहरण के लिए राहुलजी ने बंदरगाह को पत्तन तथा खेती के लिए कामीन्त शब्द का प्रयोग किया है जो अपनीअर्थवत्ता में ज्यादा समर्थ जान पड़ते हैं। लेखक ने राहुल के उपन्यासों की शैल्पिक पक्ष का भी अच्छा उदाहरण दिया है। अपनी अंतर्दृष्टि के बलपर लेखक ने अनेकानेक विचारधाराओं उपन्यास के सामाजिक ऐतिहासिक जैसे विषयों की पकड़ तथा औपन्यासिक कृतियों में शिल्पगत शैथिल्य को भी बताया है।

हिंदी उपन्यास बदलते सामाजिक परिवेश के चलते जीवन और जगत के विविध, गहन,बहु आयामी संदर्भ को समेट हुए आगे बढ़ता है। स्वातंत्योत्तर हिंदी उपन्यास सामाजिक परिदृश्य की बात की जाय तो पाते हैं कि यशपाल का उपन्यास मनुष्य के रूप 'झूठा सच'- ये दोनों उपन्यास में भारतीय समाज और सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित करने वाले तत्वों को उजागर किया गया है। यशपाल के दृष्टिकोण से लिखा गया इस उपन्यास के वर्ण्य- विषयों के उद्घाटन में लेखक ने अपनी गहरी सार्थक दृष्टि के द्वारा मानवीय वृत्तियों का परिचय दिया है। फनीश्वरनाथ रेणु के मैला आँचल,

परती परिकथा जैसे आंचलिक उपन्यासों -- जिसमें विवशता और आर्थिक अभाव, परंपराओं, शहरीकरण और ग्रामीण जीवन का यथार्थ बताया गया है। अमृतलाल नागर का बूंद और समुद्र उपन्यास, 'अमृत और विष' उपन्यास, मोहन राकेश का बंद कमरे नरेश मेहता का यह पथ बंधु था ,श्रीलाल शुक्ल का राग दरबारी रामदरश मिश्र का 'जल टूटता हुआ ' शिवप्रसाद सिंह का अलग-अलग वैतरणी , भीष्म साहनी का तमस, मन्नू भंडारी का आपका बंटी' और राही मासूम रजा का कटरा बी आर्जू, निर्मल वर्मा का रात का रिपोर्ट जैसे सभी उपन्यासों का गहन विश्लेषण डॉ. उपाध्याय के पैनी एवं गहरी अंतदृष्टि का परिचय देती है। इसके अतिरिक्त लेखक ने वर्तमान दौर के चर्चित उपन्यासों में समसामयिक मानवीय कलात्मक प्रतिमान तथा उत्तर आधुनिक दौर की आंधी की सापेक्षता में भारतीय जन- जीवन, माननीय रिश्तों की उधेड़ बुन को रेखांकित किया है ।इस प्रकार से लेखक ने अपने विवेचन में पाँच आंगनों वाला घर का पुनर्पाठ और आवां का शिल्प विधान का भी समावेश किया है।इसी विषय वस्तु में लेखक के कथा साहित्य के प्रति गहरी सूझ -बूझ और वस्तुनिष्ठता का परिचय देते हुए संपूर्ण कथासाहित्य का मूल्यांकन इनकी उपलब्धि का प्रमाण देती है। डॉ उपाध्याय के आलोचना कर्म में हिंदी उपन्यासों के वैशिष्ट्य और समाजशास्त्रीय चिंतन, उसमें निहित सौन्दर्यशास्त्रीय चिंतन का सम्यक विश्लेषण प्रस्तुत हुआ है। व्यावहारिक आलोचना में उपन्यासों की रचनावस्तु का और शिल्पविधान दोनों का विश्लेषण किया गया है, जिसमें पुनर्नवा के आलोक में चंद्रा के माध्यम से आचार्य द्विवेदी जी के उपन्यासों में नारी चरित्रों के वैशिष्ट्य को उजागर किया गया है। द्विवेदी जी अप्रासंगिक व्यवस्थाओं तथा नीति-अनीति की रूढ़ियों को तोड़कर जीवन की प्रवाहमान धारा द्वारा उत्पन्न नये मूल्यों को स्वीकारने के पक्षपाती हैं। वे सामाजिक व्यवस्थाओं का निरंतर संस्कार और परिमार्जन चाहते हैं।वे चंद्रा जैसे चरित्र की सृष्टि करके इस कार्य को बखूबी अंजाम देते हैं। उनकी चंद्रा के जिस्म का रेशा रेशा क्रांति से निर्मित है। उसके रक्त की एक-एक बूंद में भावलोक का विद्रोह है।लेखक ने चंद्रा के साहस, स्पष्टवादिता के साथ ही निर्भीकता जैसे गुण को तार्किक परिणति प्रदान की है।इसमें नारी के प्रति आदर्शवादी रवैये के अभिव्यक्ति, समाज व्यवस्था, परंपरागत संरचनाओं के प्रति क्रांति तथा मानवीय संलग्रता का मार्मिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय की यह पुस्तक 'कथा साहित्य का पुनर्पाठ' हिन्दी कथा साहित्य में एक मानक बनकर आई है जो कि कथा साहित्य के हर कोने का अत्यंत गहन और गंभीर विश्लेषण प्रस्तुत करती है। साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं बल्कि मार्गदर्शक भी होता है। एकउत्तम साहित्य मानव जीवन-जगत के उत्थान व विकास के लिए सदैव सहायक सिद्ध होता है। साहित्यकार अपने युग का दृष्टा होता है। वह अपने परिवेश की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक विभिन्न समस्याओं से अवगत होता है। डॉ. उपाध्याय भी अपनी समकालीन स्थिति से अवगत हैं इसलिए इन्होने हिंदी साहित्य की विधा आलोचना पर कार्य किया है, क्योंकि एक अच्छा लेखक ही एक अच्छा आलोचक होता है। आलोचक निष्पक्ष होकर ईमानदारी से गुण व दोषों का विवेचन करता डॉ. उपाध्याय ने सैद्धांतिक व व्यावहारिक दोनों ही प्रकार से आलोचनात्मक लेखन में अपने गति का परिचय देते हुए कथालोचन की एक अनिवार्य मांग को पूरा किया है। यह निसंदेह एक जरूरी और ऐतिहासिक महत्त्व का अधिकारी आलोचना ग्रंथ है जिससे गुजरकर पाठकीय रुचि का भी उन्नयन होता है। यह हिंदी कथालोचन को एक विशिष्ट स्तर और अपेक्षित गंभीरता तक ले जाने वाला ग्रंथ है जिसमें १८५७ से २०२१ तक के कथासाहित्य की तमाम उपलब्धियों का एक साथ निर्वचन हुआ है।

संदर्भ सूची

१- कथासाहित्य का पुनर्पाठ-- करुणाशंकर उपाध्याय, पृष्ठ-७

२- वही- पृष्ठ-२३।

३- वही- पृष्ठ- २५-२६

४- वही- पृष्ठ-८५-८६

५- १५७-१५८

६- वही- २८१

पुस्तक का नाम- कथासाहित्य का पुनर्पाठ --- करुणाशंकर उपाध्याय, यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली -११००३२, प्रथम संस्करण २०२१,पृष्ठ-३०६,मूल्य ७९५

स्वाधीनता आंदोलन के दौर की जेल में लिखी गयी हिंदी कविताएँ

कुलदीप कुमार

शोधार्थी- सरदार पटेल विश्वविद्यालय, गुजरात
संपर्क - ९१५१२७५३९९
ईमेल - kumarkaas94@gmail.com
पता- मलकनपुर, ऐरायां सादात, फतेहपुर, २१२६५३

स्वाधीनता आंदोलन भारतीय इतिहास में सत्तासीन शासकों के शोषण उनकी नीतियों और देश को अंग्रेजी दासता से मुक्त कराने का आंदोलन है। यह मुख्यतः भारतीय राजनीतिक संगठनों द्वारा संचालित अहिंसावादी आंदोलन था जो जनाधार के रूप में राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ एक आवाज बनता है । यह आंदोलन अवाम की मुक्ति का आंदोलन था जो जाति-पाति और धर्म से परे संगठित व सुनियोजित ढंग से स्वतंत्रता की भावना से प्रेरित होकर जन-आंदोलित होता है।

विदित है कि १५वीं १६वीं सदी में यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों के आगमन के बाद से ही हिंदुस्तान धीरे-धीरे दासता की जंजीरों में जकड़ता चला गया । प्रारंभ में जो हमारे यहाँ महज व्यापार के उद्देश्य से आए थे बाद में वही देसी रियासतों की आपसी फूट का फायदा उठाकर कूटनीति और युद्धों से हमारे शासक बन बैठे और धीरे-धीरे हिंदुस्तान पूरी तरह अंग्रेजों के अधीन हो गया। पर ऐसा भी नहीं था कि अंग्रेजों ने इसे आसानी से हासिल कर लिया हो । हिंदुस्तान पर काबिज होने के लिए उन्हें आरंभ से ही भारतीय प्रतिरोधों का सामना करना पड़ा । उन्हें ना सिर्फ भारतीय देशी शासकों के प्रतिरोध बल्कि यहाँ के आदिवासी, किसान और आम-जन के प्रतिरोध का भी सामना करना पड़ा। अंग्रेजो के खिलाफ छुट-पुट विद्रोह प्रारंभ से ही शुरू हो चुके थे किंतु सन १८५७ तक आंदोलन की यह ज्वाला धड़क उठती है और क्रांति का रूप धारण कर अंग्रेजो के खिलाफ अपने आवाम की आजादी के लिए महाविद्रोह के रूप में प्रस्फुटित होता है, जिसे तमाम विचारकों ने प्रथम स्वाधीनता आंदोलन का नाम दिया है। कार्ल मार्क्स भी १८ ५७ के इस आंदोलन को भारतीयों का प्रथम स्वाधीनता संघर्ष बताया है । मैं भी १८५७ के इस आंदोलन को जिसे हमारे इतिहासकारों ने विद्रोह नाम दिया है, को प्रथम स्वाधीनता संग्राम मानने का पक्षपाती हूँ । इस आंदोलन को अंग्रेजों द्वारा तात्कालिक रूप से भले ही दबा दिया गया हो किंतु आम जनता जिसमें विशेष रूप से आदिवासी व किसान इसके बाद भी अपना आंदोलन जारी रखा और अंत तक अपनी स्वाधीनता के लिए संघर्ष करते रहे । १८५७ के बाद और आजादी के पूर्व तक हुए स्वाधीनता आंदोलन दो खेमों में बट चुका था । इसका एक दल गांधी जी के नेतृत्व में अहिंसक रूप से स्वाधीनता के लिए आंदोलनरत था तो दूसरा क्रांति में विश्वास रखते हुए सुभाष, चंद्रशेखर और भगत सिंह के नेतृत्व में क्रांतिकारी ढंग से हिंदुस्तान की आजादी के लिए संघर्षरत था ।

स्वाधीनता आंदोलन के दौर में सत्तासीन शासक के शोषण और नीतियों के खिलाफ जो भी आंदोलन हुए हैं उन्हें दबाने के लिए अंग्रेजी हुकूमत द्वारा आंदोलनकारियों को पकड़कर जेल में कैद कर दिया जाता रहा । जेल में कैद इन आंदोलनकारियों के साथ शामिल थे हमारे साहित्यकार जिन्होंने न केवल प्रत्यक्ष रूप से आंदोलन में भाग लिया बल्कि क्रांति संघर्ष के संचालन के उत्तरदायित्व को भी संभाला । इन साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से आंदोलन को जन-जन से जोड़ने का प्रयास किया और सफल भी रहे । इतना ही नहीं अपनी लेखनी से वे अंग्रेजी हुकूमत को कलम की ताकत दिखा रहे थे

जिनमें कई रचनाकारों को आंदोलनकारियों के साथ कारावास में ठूंस दिया गया किंतु इससे भी ब्रिटिस हुकूमत साहित्यकारों की कलम नहीं पकड़ सके। इन साहित्यकारों ने जेल में रहकर भी अपना क्रांति संघर्ष जारी रखा। इन रचनाकारों ने जेल के जीवन संघर्ष और यातनाओं को अपनी कविताओं में व्यक्त किया। साहित्यालोचकों ने इन साहित्यकारों की जेल में लिखी गई रचनाओं को जेल साहित्य की संज्ञा से विभूषित किया है।

स्वाधीनता आंदोलन के दौर में अनेक रचनाकारों को जेल जाना पड़ा और जेल की यातनाओं से गुजरना पड़ा। जिन रचनाकारों ने जेल में भोगे गए यथार्थ को अपने काव्य रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया उनमें प्रमुखता माखनलाल चतुर्वेदी, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', शिवमंगल सिंह 'सुमन', व अज्ञेय प्रमुख हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं में अपने जेल अनुभव व्यक्त किया।

हिंदी के प्रख्यात साहित्यकार माखनलाल चतुर्वेदी जिन्हें एक भारतीय आत्मा के नाम से भी जाना जाता है। यह महज रचनाकार ही नहीं बल्कि सफल पत्रकार व स्वाधीनता संग्राम सेनानी भी रहे जो सन् १९२१-२१ के असहयोग आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लेते हुए जेल गए और जेल में जाकर वहाँ की अव्यवस्था और यातनाओं को अपनी कविताओं के माध्यम से लोगो को रूबरू कराया। चतुर्वेदी जी महाकौशल अंचल से गिरफ्तारी देने वाले यह पहले व्यक्ति थे। प्रथम स्वाधीनता आंदोलन सन् १९२०-२१ से इनके जेल जाने का सिलसिला शुरू होता है जो आजादी की लड़ाई तक अनवरत बरकरार रहा। माखनलाल चतुर्वेदी जेल में रहकर अनेक कविताओं की रचना की और आंदोलन में सक्रिय रहे। इनकी कविता 'पुष्प की अभिलाषा' चर्चित कविताओं में से एक है। इस कविता को इन्होंने २८ फरवरी १९२२ को बिलासपुर सेंट्रल जेल में लिखा, जिसमें इन्होंने पुष्प को प्रतीक बनाकर अपनी बात कहते हैं -

'चाह नही मैं सुरबाला के / गहनों में गूँथा जाऊँ।

चाह नही मैं प्रेमी माला में / विंध प्यारी को ललचाऊँ।

चाह नही मैं सम्राटों के / शव पर हे हरि डाला जाऊँ।

चाह नही देवों के सिर पर / चढ़ूँ भाग्य को इठलाऊँ।'

चतुर्वेदी जी अपनी इस रचना में पुष्प को प्रतीक बनाकर अपनी बात को जन-जन तक पहुँचाने में सफल रहे। पुष्प के माध्यम से यह आम-जन को प्रेरित कर स्वाधीनता आंदोलन को नया आयाम देने के लिए प्रयासरत थे। इसी कविता की अगली पंक्तियों में ये पुष्प के माध्यम से देश के लोगों को मातृभूमि पर कुर्बान हो जाने का आवाहन करते हुए लिखते हैं -

'मुझे तोड़ लेना वनमाली / उस पथ पर तुम देना फेंक।

मातृभूमि पर शीश चढ़ाने / जिस पथ पर जाएँ वीर अनेक।'

यह कविता उन दिनों आजादी की लड़ाई में देश प्रेम की भावना को जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इतना ही नहीं आजादी से लेकर अब तक इसकी लोकप्रियता ज्यों का त्यों बरकरार है।

'कैदी और कोकिला' भी इनकी जेल में लिखी गई चर्चित कविता है। यह कविता भारतीय स्वाधीनता सेनानियों के साथ जेल में किए गए दुर्व्यवहार और यातनाओं का मार्मिक साक्ष्य है। कारागार के अकेलेपन और उदासी भरे माहौल में आधी रात को जब कोयल कुहुकती है तो रचनाकार अपने मन के दुख और असंतोष को कोयल के मन का दुख और असंतोष के रूप में व्यक्त करता है कि कोयल स्वाधीनता सेनानियों की मुक्ति का गीत गाती है, तो लोगों में अंग्रेजों की अधीनता से मुक्त होने की भावना प्रबल हो जाती हैं -

'क्या गाती हो?
क्यों रह-रह जाती हो?
कोकिल बोलो तो!
क्या लाती हो?
सन्देशा किसका है?
कोकिल बोलो तो!'

रचनाकार अपनी इन पंक्तियों में कोयल की कूक के माध्यम से स्वाधीनता संग्राम के कैदियों में क्रांतिकारी और देशभक्ति का उत्साह भरता है। चतुर्वेदी जी अपनी इसी कविता में जेल की यातना और अंग्रेजी हुकूमत के कड़े पहरे को भी बड़े ही मार्मिक भाव में व्यक्त करते हुए

लिखते हैं -

'जीने को देते नहीं पेट भर खाना,
मरने भी देते नहीं, तड़प रह जाना!
जीवन पर अब दिन-रात कड़ा पहरा है,
शासन है, या तम का प्रभाव गहरा है? '

स्वाधीनता संग्राम सेनानियों को जेल की ऊँची काली दीवारों के भीतर कैद कर दिया जाता था । इनके साथ चोर, डाकू, अपराधी और लुटेरों जैसा व्यवहार किया जाता था । जेल में इन्हें न तो पेट भर भोजन दिया जाता था और ना ही चैन की नींद सोने दिया जाता था । अंग्रेजों का इन स्वाधीनता सेनानियों पर बड़ा ही कड़ा पहरा था, लेकिन इन सब से भी ये देशभक्त क्रांतिकारी विचलित नहीं होते और अंग्रेजी हुकूमत द्वारा डाली गई बेडि़यों को ब्रिटिश राज का गहना और कोल्हु की चर्रक-चूँ की आवाज को मधुर संगीत मानते हैं । चतुर्वेदी जी अपनी रचना में इसे व्यक्त करते हुए बड़ी ही भावुकता से लिखते हैं -

' हथकडि़याँ क्यों? यह ब्रिटिश-राज का गहना,
कोल्हू का चर्रक चूँ? -जीवन की तान,
मिट्टी पर अँगुलियों ने लिक्खे गान? '

इसी प्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी की प्रथम गिरफ्तारी पर चतुर्वेदी जी 'बंधन सुख' नामक कविता लिखकर विद्यार्थी जी में आत्मविश्वास व उत्साह भरने के साथ अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ अपना जो भी प्रकट करते है -

'आत्मदेव प्यारी हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ दे परितोष ।

उतनी ही आदरणीया हैं, जितना वह जय-जय का घोष ।

-- -- -- - - --

तू सेवक है सेवारत है तेरा जरा कसूर नही
शूली- वह ईशा शोभा, विजयी दिन दूर नही ।'

चतुर्वेदी जी गणेश शंकर विद्यार्थी में आत्मविश्वास भरते हुए उन्हें कहते हैं इन्हें बेडियाँ नही सुख का बंधन समझो, तुम सेवक हो और देश-प्रेम तुम्हारा सेवाधर्म और इस कार्य के लिए यदि तुम्हें फाँसी पर भी चढ़ाया जाता है तो इसे तुम ईशा की शोभा समझना और खुश होना कि वह दिन अब दूर नहीं जब हम स्वाधीन होंगे ।

बिलासपुर जेल की कठिन यातनाओं को सहते हुए वहाँ के वातावरण और जेल की तंग कोठरियों में घुटती श्वास को 'पत्थर के फ़र्श' नामक कविता में उद्भासित करते हुए वह लिखते हैं -

'पत्थर के फर्श, कगारों में / सीखों की कठिन कतारों में

खंभों, लोहे के द्वारों में / इन तारों में दीवारों में

कुंडी, ताले, संतरियों में / इन पहरों की हुंकारों में

गोली की इन बौछारों में / इन वज्र बरसती मारों में

इन सुर शरमीले गुण, गरवीले / कष्ट सहीले वीरों में

जिस ओर लखूँ तुम ही तुम हो / प्यारे इन विविध शरीरों में ।।'

माखनलाल चतुर्वेदी स्वाधीनता आंदोलन के दौर के ऐसे रचनाकार हैं जिन्हें अपने जीवन में लगभग १२ बार जेल जाना पड़ा और ६३ बार इनके घर की तलाशी हुई । यह केवल भारतीय आत्मा ही नहीं स्वाधीन भारतीय आत्मा थे । इन्होंने केवल रचनाएँ ही नहीं की बल्कि अपना संपूर्ण जीवन आजादी आंदोलन के लिए न्योछावर कर दिया और कभी डरे नहीं । न्यायालय में इन्होंने लिखित रूप में एक बयान दर्ज कराया कि 'मेरी अंतरात्मा निर्मल है, मैं विश्वास रखता हूँ कि मैंने किसी भी नैतिक कानून के प्रति अपराध नहीं किया है, मैं इस या किसी भी ब्रिटिश कोर्ट से न्याय कराने के लिए जरा भी उत्सुक नहीं हूँ, मैं अपनी मातृभूमि को पराधीनता से मुक्त कराने के लिए इससे और अच्छी सेवा नहीं कर सकता कि मैं उसके लिए ख़ुशी से, धैर्य से कष्ट सहन करूँ।' यह बयान आज भी लिखित रूप में मौजूद है ।

वर्तमान में जबलपुर सेंट्रल जेल जहाँ इन्हें कैद कर रखा गया था वहीं इनका स्मारक बना दिया गया है । आज भी जेल की वह बैरक मौजूद है जहाँ इन्हें कैद कर रखा गया था । कैदी नंबर १५२७ के रिकॉर्ड के रूप में इनका नाम क्रिमिनल केस नंबर ३९ में दर्ज है । स्वाधीनता आंदोलन का यह सेनानी साहित्यकार ३० जनवरी १९६८ को अपना यह नश्वर शरीर त्याग कर हमेशा के लिए अमर होकर हमारी स्मृतियों में छा जाता है ।

चतुर्वेदी जी की भाँति ही शिवमंगल सिंह 'सुमन' भी हिन्दी के ख्यातिलब्ध रचनाकारों में से एक हैं। यह भी साहित्यकार के साथ स्वाधीनता आंदोलन के सहभागी रहे जिसके चलते इन्हें भी जेल जाना पड़ा और कारागार की यातनाओं से गुज़रना पड़ा। जेल में रहकर इन्होंने अनेक कविताओं की रचना की। जेल में इनके द्वारा लिखी गई कविताओं को 'नंदकिशोर नवल' ने संग्रहित कर 'स्वतंत्रता पुकारती' शीर्षक से कृति का संपादन किया। स्वतंत्रता पुकारती नामक काव्य संग्रह में संकलित कविताएँ सुमन जी के जेल अनुभव का मर्म हैं। संग्रह में संकलित कविता 'जेल में आती तुम्हारी याद' इनकी प्रसिद्ध कविता है जिसमें इन्होंने जेल के जीवन को मार्मिकता से पिरोते हुए लिखतें हैं -

' प्यार जो तुमने सिखाया / वह यहाँ पर बाँध लाया

प्रीति के बंदी नहीं करते कभी फ़रियाद
जेल में आती तुम्हारी याद।'

शिवमंगल सिंह 'सुमन' स्वाधीनता की चाह को अपनी इस कविता में भावुकता के साथ प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं स्वाधीनता की चेतना जो तुमने मुझमें जगाई है यह उसी का प्रेम है जो हमें यहाँ बाँध लाया। ये कैद को बंधन नहीं बल्कि प्रीत मानते हैं। इसी कविता की अगली पंक्तियों में अंग्रेजी हुकूमत द्वारा जेल में दी जा रही यातनाओं और उसके विरुद्ध अपनी उत्तेजना को भी व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं -

' बात पर अपनी अड़ा हूँ / सीकचें पकड़े खड़ा हूँ
सकपकाया सा खड़ा है / सामने जल्लाद
जेल में आती तुम्हारी याद
दृढ़ दीवाले फोड़ दूँगा / लौह कड़ियाँ तोड़ दूँगा
कर नहीं सकती मुझे / यह बेडि़याँ बर्बाद
जेल में आती तुम्हारी याद।।'

जेल में दी जा रही यातनाओं के बावजूद भी रचनाकार विचलित नहीं होता और अपनी बात पर अड़ा रहता है। वह अंग्रेजी हुकूमत के आगे घुटने नहीं टेकता। इतनी यातना के बाद भी उसे दृढ़ खड़ा देख जल्लाद भी सकपका जाता है। रचनाकार जेल की दीवारों और बेड़ियों को तोड़ देना चाहता है। वह कहता है 'यह जेल की सलाखें और बेडियाँ मुझे बर्बाद नहीं कर सकती।

शिवमंगल सिंह सुमन की रचनाओं में स्वाधीनता संघर्ष की झलक और हिंदुस्तान की आजादी की चाह साफ़ दृष्टव्य होती है। जेल में रहते हुए भी अपनी कविताओं के माध्यम से इन्होंने देश के लोगों में स्वाधीनता की ललक पैदा की और उन्हें देश की आजादी के लिए कुर्बान होने को प्रेरित किया। 'आज देश की मिट्टी बोल रही है' इनकी लंबी कविता है। यह कविता नाविक विद्रोह से प्रेरित क्रांतिकारी और ओजस्वी पूर्ण है जिसे इन्होंने जेल में रहकर रचा और इसके माध्यम से देश की जनता के सामने अंग्रेजी हुकूमत का खाका पेश किया। अपनी इस कविता में इन्होंने आवाम को संदेश देते हुए कहा है कि 'हमारी संस्कृति और सभ्यता के साथ हमें अंग्रेज किस तरह गुलाम बनाए हुए पर हम भी किसी से कम नहीं इसीलिए आज देश की मिट्टी हमें पुकार रही है -

'आज विदेशी बहेलिए को / उपवन ले ललकारा
कातर-कंठ क्रौंचनी चीखी / कहाँ गया हत्यारा
प्राण-प्राण में आ रक्त की सरिता खौल उठी है
आज देश की मिट्टी बोल उठी है।।'

इसके अलावा शिवमंगल सिंह 'सुमन' 'मेरा देश जल रहा है कोई नहीं बुझाने वाला, फिर व्यर्थ ही जीवन मिला क्यों, पथ भूल न जाना पथिक कहीं, तब समझूँगा आया वसंत और विद्रोह करो, विद्रोह करो आदि कविताएँ जेल में रहकर रची और स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय रुप से सहभागी बने रहे। इन्होंने आपातकाल का दौर भी देखा। साहित्यिक सेवा करते हुए हिन्दी साहित्य का यह अमूलनिधि २ नवंबर २००२ को इस लोक की यात्रा पूर्ण कर हमेशा के साहित्य और इतिहास में अमर हो जाता है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार के साथ-साथ स्वाधीनता संग्राम के क्रांतिकारी नेतृत्वकर्ता भी रहे हैं। अपनी रचनाओं और व्यंग्यो से ये अंग्रेजी हुकूमत की तानाशाही और शोषण को परत-दर-परत उधेड़ रहे थे। यह प्रेमचंद युग के सबसे विवादास्पद, अक्खड़, अलमस्त व मनमौजी स्वभाव के साहित्यकार हैं। इन्होंने अपने युगीन सभी विधाओं पर हस्तक्षेप किया और उसे मनोरंजक ढंग से उत्तेजना के साथ पाठकों के सामने प्रस्तुत किया। इसी कारण इन्हें 'उग्र शैली' का प्रवर्तक माना जाता है जो इनकी रचनाओं में बखूबी देखा जा

सकता है । अपनी रचनाओं के कारण कई बार इन्हें अंग्रेजी हुकूमत का कोप-भाजन भी होना पड़ा । उग्र जी की जेल यात्रा सन् १९२० के असहयोग आंदोलन से प्रारंभ होती है और इसके बाद तो इन्होंने क्रांति का रास्ता अख्तियार किया और शतीन्द्रनाथ सान्याल व राजेंद्रनाथ लाहिड़ी जैसे क्रांतिकारियों के साथ मिलकर अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ स्वाधीनता का मोर्चा खड़ा किया जिसके कारण इन्हें जेल की यातनाओं से गुजरना पड़ा । जेल में लिखी गई इनकी कविताएँ इतनी उग्र व मारक थी कि अंग्रेजी सरकार को इन्हें ज़ब्त तक करना पड़ा । उग्र ने जेल में अनेक स्फुट छंदों की रचनाएँ की किंतु आज ये रचनाएँ बहुत कम मिल पा रहीं । 'जेल में क्या-क्या' उग्र जी की प्रसिद्ध कविता है। इस कविता की रचना इन्होंने उस समय किया जब यह क्रांतिकारियों के साथ आंदोलन में शामिल होने के जुर्म में (१९२६-२७) जेल में कैद थे। इनकी यह कविता जेल की अव्यवस्था को बयाँ करती है -

''बैरक' है, 'बर्थ', 'बेल' बेड़ियाँ हैं, बावले हैं, /
ब्यूटीफुल बालटी की दाल बे-मसाला है।
चट्टा है, चटाई, चारु-चीलर हैं चारों ओर /
तौक़, तसली है, तसला है और ताला है।
जाहिर जहान जमा-मार जमादार भी हैं, /
कच्ची- कच्ची रोटी सड़े साग का नेवाला है।
शाला, क़ैदियों की काला कम्बल दुशाला जहाँ...
/ 'उग्र' ने वहीं पे फ़िलहाल डेरा डाला है।'

उग्र जी अपने समय के शसक्त हस्ताक्षर हैं जिन्होंने साहित्यिक सेवा के साथ देश हित में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया और उम्र भर अभाव में रहते हुए साहित्य और देश की सेवा में रत रहे और २३ मार्च १९६७ ई. को दिल्ली में इस लोक से निजात पाकर साहित्येतिहास में अमर हो गए।

अंततः हम कह सकतें हैं कि स्वाधीनता आंदोलन के समय का जेल साहित्य काफी समृद्ध है। यह सिर्फ कविताओं में ही नही है अन्य विधाओं में भी है। जेल में लिखी गई कविताएँ तो बहुत कम मिलती है किंतु इसका गद्य साहित्य काफी समृद्ध है और यह सिर्फ हिंदी में ही नही है बल्कि देश की अन्य भाषाओं में उपलब्ध है। स्वाधीनता आंदोलन राष्ट्र व्यापी था और देश के अन्य भाषा के रचनाकारों ने भी जेल की यातना को भोगा है और इन रचनाकारों ने अपनी भाषा में अपने जेल अनुभव को रचा है ।

संदर्भ-

१. उग्र, पाण्डेय बेचन शर्मा. स्फुट कविताएँ. दिल्ली, राजकमल प्रकाशन.

२. चंद्र, बिपिन. आधुनिक भारत का इतिहास. हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय.

३. चतुर्वेदी, माखनलाल. माखनलाल रचनावली भाग-६ (सं- श्रीकांत जोशी). दिल्ली, वाणी प्रकाशन.

४. सुमन, शिवमंगल सिंह. स्वतंत्रता पुकारती. दिल्ली. साहित्य अकादमी.

परिचय

कुलदीप कुमार 'आशकिरण'

(युवा रचनाकार)

प्रकाशित पुस्तक - चयनित हिंदी कहानियाँ (हंस प्रकाशन, नई दिल्ली)

कविता संग्रह - भीडतंत्र का रामराज्य (प्रकाशाधीन)

लघु शोध-प्रबंध - आधुनिक हिंदी कविता में नदी

शोधार्थी - सरदार पटेल विश्वविद्यालय, गुजरात

बाबासाहेब अम्बेडकर के क्रांतिकारी विचार और दलित साहित्य की अवधारणा

शंतनु वसंतराव नैताम

शोधार्थी
राजनीति विज्ञान विभाग
शासकीय विदर्भ ज्ञान-विज्ञान एवं मानविकी संस्थान, अमरावती
मो.न. ९९६०११००४३

'बाबा साहेब अम्बेडकर द्वारा चलाए गए अतीत-रचना के प्रयासों से उत्तर-अंबेडकर पीढ़ी सत्तर के दशक में युद्ध, शौर्य और संघर्ष की मानसिकता की तरफ गयी । गांव के बाहर पड़ा रहने वाला अन्त्यज ऐसे स्थान की तलाश के लिए निकल पड़ा जहां से उसे बहिष्कृत किया जाना संस्थागत रूप से नामुमकिन हो । यह नया स्थान शहर था जो आधुनिकता के घटनास्थल के रूप में उभर रहा था । दलित-चेतना उत्तरोत्तर नगर-केन्द्रित होती गयी और दलित साहित्य नागरिकता की खोज में जाति पूछे जाने के औचित्य पर सवालिया निशान लगाने लगा । मराठी, कन्नड़, हिन्दी, गुजराती और तेलगू की तलाश में आया हुआ दलित नायक नागरिकता के आवरण में भी अपनी नीची जाति छिपाने में नाकाम है । जो केंचुल उसने अछूतबाड़े में छोड़ दी थी वह अभी भी उसके अंग के साथ चिपटी हुई है ।'१

हमें कमरे से बाहर निकलने के लिए कुछ कदम कमरे में ही रखने पड़ते हैं । यह दार्शनिक उक्ति बाहर निकलने की सभी समस्याओं का समाधान नहीं कर पाती । भारतीय समाज में जाति को छोड़ने की कोशिश ने अपने-आपको छोड़ने के अंदेशे को जन्म दिया है । इसलिए सभी लोगों ने दरवाजा पार करने की पूरी कोशिश नहीं की । हमारे आधुनिक होने की प्रक्रिया ने जाति-प्रथा के कर्मकांडी स्वरूप का धीरे-धीरे नाश तो किया लेकिन इसके साथ ही साथ एक खामोश द्वन्द्वात्मकता भी काम करती रही । जाति खुद करवट बदल कर परिवर्तनशील समाज के नए आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक ढांचे में नदी की गाद की तरह उतरती चली गयी और किसी विशेष प्रयास के अभाव में हम कमरे में ही चलते रह गए ।(२)

यही वह बिन्दु है जिस पर हमारे गौरवशाली जाति-प्रथा विरोधी संघर्ष नाकाफी साबित हुए । छुआछूत-विरोध, तालाब और कुंए के पानी पीने पर अधिकार, मंदिर प्रवेश, शिक्षा, आरक्षण और मताधिकार के परिप्रेक्ष्य ने अपनी सीमाएं स्वयं उद्‌घाटित कर दीं । इससे बाहर निकलने के लिए हमें एक छलांग लगाने की जरूरत पड़ी । एक ऐसी शक्ति को प्राप्त करना, जो अतीत और वर्तमान से मुक्ति का अहसास दिला सके, अनिवार्य हो गया था । और इस शक्ति का अवाह्न दलित समुदाय ने किया ।

दलित समुदाय ने अकेले ही जोखिम उठाया । वह नए गांव और नए शहर की तलाश में आगे निकल गया । कोई दूसरा इस सामाजिक और मनोवैज्ञानिक परियोजना में साझीदार होने को तैयार नहीं था । अकेले पड़ जाने की अनुभूति ने सदियों से हो रहे अन्याय के प्रति वाणी को और कर्कश बना दिया । उनकी अभिव्यक्ति ने आक्रामक रूप धारण कर लिया । अकेलेपन ने उन्हें बार-बार अपने स्वानुभव की ओर मोड़ा जिसकी प्रमाणिकता पर अत्यधिक जोर देने के कारण उनकी चेतना का कला रूप यथार्थवाद तक ही सीमित रह गया । राजनीतिक जुड़ाव ने उसमें पूर्वनिर्धारण के तत्वों की समस्या पैदा कर दी ।(३) लम्बे सफर के गर्द-गुबार ने कई बार इस दलित चेतना के चमकदार पक्षों को धुंधला कर दिया । युद्ध और रचना के अंतर्गुंफन में युद्ध

हावी नजर आया । इस तरह दलित चेतना अपनी आत्मसंभवा अभिव्यक्ति खोजने की डगर पर चल पड़ी ।

इन्हीं परिप्रेक्ष्यों में मुझे धर्मवीर भारती की रचना 'अन्धा-युग' की कुछ पंक्तियां याद आती हैं-

'जब कोई मनुष्य
अनासक्त होकर चुनौती देता है इतिहास को
उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है
नियति नहीं है पूर्व-निर्धारित उसको हर क्षण
मान-निणन्य बनाता-मिटाता है ।'४

और यहीं से निर्धारित होती दलित साहित्य की दिशा । यह दिशा दलित साहित्य के लेखन के उत्कर्ष की दिशा है । ब्राह्मणवाद और पूंजीवाद के विरूद्ध समता, स्वतन्त्रता तथा बंधुता की दिशा है । दलित विचारकों ने इतिहास की पुनर्व्याख्या करने का प्रयास किया है । गलत इतिहास बोध के कारण ही लोगों ने दलित को इतिहास हीन मान लिया । जबकि देखा जाय तो भारत के इतिहास में दलितों की महत्वपूर्ण भूमिका है । डॉ.अम्बेडकर ऐसे पहले भारतीय दलित नायक हैं जिन्होंने इतिहास में दलितों की उअपस्थिति को रेखांकित किया है । दलित साहित्य को समझने के लिए बाबा भीमराव अम्बेडकर को भी समझना होगा । दलित साहित्य और बाबा अंबेडकर एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । दलित साहित्य की पूरी वैचारिकी का केन्द्र डॉ.अम्बेडकर पर टिका है ।

दलित साहित्य की अवधारणा -

'जब भी देखता हूं मैं
झाड़ू या गन्दगी से भरी बाल्टी कनस्तर
किसी हाथ में
मेरी रगों मं
दहकने लगते हैं
यातनाओं के कई हजार वर्ष एक साथ
जो फैलें हैं इस धरती पर
ठण्डे रेत कणों की तरह ।'५

ओमप्रकाश वाल्मीकि की ये पंक्तियां दलितों की पीड़ा और उनके अतीत का यथार्थ चित्रण हमारे समक्ष प्रस्तुत करती हैं । 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' में दलित शब्द का अर्थ देते हुए वे लिखते हैं- 'जिसका दलन और दमन हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौदित, मसला हुआ, कुचला हुआ, विनष्ट, मर्दित, पस्त, हतोत्साहित, वंचित आदि ।

इसे केवल दलित शब्द का कई रूप अगर हम मान लेते हैं तो 'दलित' शब्द की सही व्याख्या और उसे सही अर्थों में जानना, इसकी हम उपेक्षा करेंगे । दलित शब्द एक सजीव श्रमरत बड़ी संख्या में मौजूद मानव समूह है । इसे जीवन की स्थितियों में देखने की जरूरत है न कि इसे शब्द आडम्बरों में देखा जाना चाहिए । २१वीं शताब्दी में दलित साहित्य एक परिपक्व साहित्य के रूप में स्थापित हो चुका है । कई हजार वर्षों की उपेक्षा और उत्पीड़न के इस साहित्य ने समाज और साहित्य दोनों में अपनी जड़ें जमा चुका है । किन्तु अभी भी यह साहित्य संघर्षरत है ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्य को जन साहित्य का नाम देते हैं । वह उसे ईं र्थ्रूलि मानते हैं । दलित साहित्य 'र्थ्रूलि दर्ि मूदह' भी है जो मानवीय मूल्यों की भूमिका पर सामन्ती मानसिकता के विरूद्ध आक्रोशजनित संघर्ष है और इसी संघर्ष से दलित साहित्य की निर्मिति हुई है ।

डॉ.अम्बेडकर दलित साहित्य के विषय में लिखते हैं -'दलित वर्ग स्वयं में ऐसे लोगों का समूह है जो मुसलमानों से भिन्न है एवं अलग है । यद्यपि उन्हें अछूत कहा जाता है किन्तु वे हिन्दू जाति के किसी भी अर्थ में अविभाज्य अंग नहीं है, वे न केवल उनसे अलग रहते हैं, अपितु उन्हें जो दर्जा प्राप्त है वह भी भारत में अनेक अन्य जातियों के दर्जे से बिल्कुल भिन्न है । अन्तर केवल इतना है कि कृषिकमिर्यों और नौकरों के साथ अस्पृश्यता का व्यवहार नहीं किया जाता है, जबकि दलित वर्ग अस्पृश्यता के शिकार हैं । उन्हें मानवीय जीवन के लिए आवश्यक नागरिक अधिकारों से भी वंचित रखा जाता है ।'

'ऊप" दर्ें तू र्तूीब र्सीहे ज्दर्दि र्ह् ज्र्जेग् जैदहे. ँ लू ग्ू ऍ म्लिी् ि हौ म्लूर्ीत्त म्दहू्लू द ग्स्ज्त्ब ूप्दो" प्द र्िज ंाहि दवही ुदल्ह् ्दैह ंबूप्दो िदन ूपस ग्ह ्ार्तीू्ी र्ह् मूनर्" ब.'६

दलित साहित्य दलितों के दर्दों का दस्तावेज है । यह वर्णाश्रम व्यवस्था को नकारता है तथा `दर्मर्ीत् ूर्हेंर्दर्ीसूंदह की बात करता है । वह हिन्दुओं की बनी-बनायी वर्ण-व्यवस्था को नकारता है ः

'सुनो वशिष्ठ
द्रोणाचार्य तुम भी सुनो
हम तुमसे घृणा करते हैं

तुम्हारे अतीत

तुम्हारी आस्थाओं पर थूकते हैं ।'७

वह हिन्दू व्यवस्था की पूरी खामियों को उजागर करते हैं और उस व्यवस्था का नकार करते हैं । दलित साहित्य में रचनाकारों की प्राथमिक मान्यता इनकी वेदना की अभिव्यक्ति है । आक्रोश का स्वर वेदना के साथ जुड़ा हुआ है । इसलिए वेदना का आना लाजिमी है । इनमें रिरियाहट, याचना आदि के भाव को नकार कर विदोह का भाव आया है, दलित साहित्य में नियतिवाद है, क्रोध नहीं है ।

दलित साहित्य की अवधारणा के विषय में कंवल भारती लिखते हैं -'दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है । अपने जीवन-संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उन्हीं के द्वारा उसी की अभिव्यक्ति का साहित्य है । यह कला के लिए कला का नहीं, बल्कि जीवन का और जीवन की जीजिविषा का साहित्य है । इसीलिए कहना न होगा कि वास्तव में दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटि में आता है ।'८

कंवल भारती की इस परिभाषा से गैर-दलित रचनाकारों को आपत्ति है । उनका मानना है कि गैर-दलितों का लेखन दलित साहित्य की कोटि में क्यों नहीं आ सकता ? बात यहां दलित साहित्य लिखने और न लिखने की केवल नही हैं बल्कि बात यथार्थ, पीड़ा का वास्तविक चित्रण, उसका भोक्ता का होना भी है । सहानुभूति और स्वानुभूति ये दो ऐसे बिन्दू हैं जहां दलितों का लेखन और गैर-दलितों का लेखन अलग हो जाता है । जिस व्यक्ति ने अछूत होने का दुःख, दर्द, पीड़ा, उलाहना और मार सही है वही इसको सच्चे अर्थों में अभिव्यक्त कर सकता है । जूठन के ओमप्रकाश वाल्मीकि, तिरस्कृत के सूरजपाल चौहान, अपने-अपने पिंजरे के मोहनदास नैमिशराय की बदतर और उत्पीड़ित जिन्दगी उनके दर्दों के दस्तावेज और सदियों के सन्ताप को बयां करती है । इस दर्द की अभिव्यक्ति यदि कोई गैर-दलित लेखक अपनी रचना में करता है तो उन्हें लिखने से कोई नहीं रोकता किन्तु उनके द्वारा लिखी गयी रचना अधिकतर स्वानुभूति का न होकर सहानुभूति के स्तर पर लिखी गयी रचना होती है । यह बात स्पष्ट है कि दलित साहित्य कोई कल्पना का साहित्य नहीं है बल्कि स्वयं के द्वारा भोगा हुआ साहित्य है । दलित साहित्य में कई हजार वर्षों से सताए गए ऐसे दलितों, गरीबों, अछूतों के संताप हैं जो न केवल सामाजिक रूप से बल्कि आर्थिक रूप से तो छले गए हैं ही इसके साथ ही साथ मानवीय अधिकारों से भी वंचित किए गए दलित साहित्य में हाशिए पर फेंक दिए गए मनुष्यों की पीड़ा, उत्पीड़न की खौफनाक प्रक्रिया अभिव्यक्त हुई है जो उसे और अधिक ऊर्जावान बनाती है ।

दलितों के मान-सम्मान हेतु साझा लड़ाई लड़ने वाले गैर-दलित रचनाकार अगर अपनी कविता, कहानियों, उपन्यासों, नाटकों और आत्मकथाओं में यह सब अभिव्यक्ति प्रकट करते हैं तो उनका दलित साहित्य स्वागत ही करता है । बात यह होनी चाहिए कि नई शताब्दी में भी अगर हम जाति और नस्ल के जटिल सवालों को मिलजुल कर हल नहीं कर पाए तो आगामी पीढ़ी को देने के लिए हमारे पास कोई जवाब नहीं होगा । दलित साहित्य की सार्थकता और उद्देश्य भी इन्हीं मुद्दों को लेकर है । बाबा भीमराव डॉ.अम्बेडकर जाति का उन्मूलन करना चाहते थे । इस प्रकार दलित साहित्य भारतीय समाज में विभाजन रेखा खींचने वाला साहित्य नहीं है बल्कि कुछ परम्परावादियों और रूढ़िवादियों के भीतर पड़ी रेखाओं को मिटाने वाला साहित्य है । दलित साहित्य आज से ६० वर्ष पहले कहीं नहीं था पर आज दलित साहित्य के बिना साहित्य की बात ही नहीं की जा सकती है । आज मुख्यधारा ही दलित साहित्य की है ।

हम भलीभांति यह बात जानते हैं कि भारत बहु-जातिय और बहुधर्मी देश है जिसकी अपनी परंपरा, संस्कृति और आवश्यकता रही है । यहां मनुष्य जाति में जन्म लेता है जाति में ही जीता है, जाति में मरता है और मरने के बाद भी जाति उसका पीछा नहीं छोड़ती । दया पवार अपनी आत्मकथा 'अछूत' में लिखते हैं 'आदमी के साथ जाति कैसे गोचड़ी (जोंक) की तरह चिपकी होती है । आप कितना भी भटकिए, पूरा खून चूस जाने तक वह सरक ही नहीं सकती ।'९

जहां अन्य देशों में शिया-सुन्नी, कैथोलिक-प्रोटेस्टेण्ट, गोरे-काले आदि धार्मिक उन्माद प्रमुख समस्या बने हुए हैं वही भारत में वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित हजारों जातियां एक-दूसरे को कदम-कदम पर नीचा दिखाने में लगी हुई हैं । अन्य देशों में जहां अपने धर्मों के प्रति लगाव और सद्भाव की भावना ने दूसरे धर्मों को आगे बढ़ने से रोकने का प्रयास

किया है वहीं भारत जैसे देश में धार्मिक ग्रंथों ने इन हजार जातियों को ऊंच-नीच के आधार पर बांट कर समाज को कमजोर करने का प्रयास किया है। यही कारण रहा है कि भारत में डॉ.भीमराव अम्बेडकर ने अपने दम पर करीब छः हजार दलित शोषित जातियों को जोड़ने का और उन धार्मिक ग्थीं की होली जलाने (जिसमें मनुस्मृति प्रमुख है) जैसा महान कार्य किया। वे भारत की दुर्दशा का सबसे बड़ा कारण भारतीय जाति व्यवस्था को मानते थे जिनकी जड़ें वेदों, शास्त्रों और स्मृतियों में है। उन्होंने लिखा है-

'You must not forget that if you wish to bring about a breach in the system then you have got to apply the dynamite to the Vedas and the Shastras, which deny any part of morality. You must destroy the religion of the Shrutis and the Smrities. Nothing else will avail.' 10

इस सच्चाई को जानते हुए भी और इसका दंश झेलते हुए भी भारत की अधिकांश जनता इससे बेखबर बनी हुई है।

दलित साहित्य की प्रेरणा डॉ.अम्बेडकर का विचार है और दलित साहित्य का सृजन 'दलित चेतना' से हुआ है। यह गुलामी के विरूद्ध चेतना है। इसमें समता, स्वतन्त्रता, न्याय और बंधुता का समावेश है। दलित साहित्य अपनी पूरी ऊर्जा और प्रेरणा डॉ.अम्बेडकर से लेता है। वो एकमात्र ऐसे अकेले व्यक्ति थे जिन्होंने लगभग ढाई हजार साल से दलित, शोषित, पीड़ित और अस्पृश्यता के दलदल में फंसे भारतीय समाज के अन्दर विद्रोह और क्रांति की चिंगारी जलाई। हमारे देश में शोषितों की संख्या ८५इ थी जिनमें २५इ आबादी छुआछूत की शिकार और अधिकारों से वंचित थी जिसमें शिक्षा, स्वव्यवसाय यहां तक कि तालाब का पानी पीना भी उनके लिए निषेध था। इसी छुआछूत की शिकार और अधिकार विहीन जनता की एक सूची भारतीय संविधान में निर्दिष्ट करके उन्हें अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति नाम दिया गया। कंवल भारती इसी दलितों के संबंध में लिखते हैं - 'दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया, जिसे गन्दे और कठोर कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है, जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतन्त्र व्यवसाय करने से मना किया गया है और जिस पर सछूतों ने सामाजिक नियीग्यताओं की संहिता लागू की है, वही दलित है और इसके अन्तर्गत वही जातियां आती हैं जिन्हें अनुसूचित जातियां कहा जाता है।'११

भारत की इसी एक चौथाई आबादी को लोगों ने दस्यु, चंडाल, पिछड़े हिंदू, अछूत, हरिजन जैसे अशोभनीय नाम दिये। इस प्रकार भारतीय उपमहाद्वीप में कश्मीर से कन्याकुमारी तक और गुजरात से असम तक फैले हुए दलित समुदाय के बारे में लिखा गया साहित्य दलित साहित्य की कोटि में आता है।

वास्तव में अगर देखा जाय तो दलितों को उनके अधिकारों को हासिल करने के लिए अपनी अस्मिता का बोध बाबा भीमराव अम्बेडकर ने ही कराया। उन्होंने दलितों को अन्याय और शोषण के खिलाफ संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया उनमें यह भावना और विश्वास पैदा किया कि वह किसी भी मायने में किसी से कम नहीं हैं, उनमें भी ऊपर उठने तथा आगे बढ़ने की सभी सम्भावनाएं मौजूद हैं लेकिन इसके लिए उन्हें स्वयं आगे आना होगा, अपने अधिकारों की लड़ाई स्वयं लड़नी होगी। दलित मानस को गहराई तक झकझोरने का काम तथा उसकी चेतना में व्यापक स्तर पर क्रांतिकारी बदलाव लाने का काम सही रूप में डॉ.अम्बेडकर ने ही किया।

बाबा भीमराव अम्बेडकर का दलितों के लिए मूलमंत्र था- 'शिक्षित हो, संगठित बनो और संघर्ष करो।' उनका सपना था कि एक ऐसा राष्ट्र हो जिसमें सभी समान हो, सबमें प्रेम की भावना, सहयोग तथा बंधुता हो। कोई छोटा-बड़ा, ऊंचा-नीचा, सछूत-अछूत न हो। उनके समग्र चिन्तन का आधार इस तरह के समाज की रचना करना था और यह किस प्रकार होगा, -यही उनके सृजन का मूल विषय रहा। दलितों की शिक्षा पर उनका विशेष जोर था क्योंकि उनका मानना था कि शिक्षा ही उन्नति और प्रगति का मार्ग प्रशस्त करती है। उन्होंने यह भी बताया कि ब्राह्मणवाद अर्थात हिन्दूत्व दलितों का सबसे बड़ा दुश्मन है। इसी चीज से दलितों को मुक्त होना होगा। अवतारवाद, भाग्यवाद, पुनर्जन्म, आत्मा-परमात्मा ये सभी शोषण का तन्त्र है। इन्हें त्याग करके ही दलितों का उत्थान हो सकता है। क्योंकि भाग्य तथा स्वर्ग की अवधारणा उन्हें अभी तक दासत्व का बोध कराते रहे हैं। उनका मानना था कि जब

तक हम हिन्दुत्व की दासता से मुक्त नहीं होगें तब तक राजनीतिक स्वतन्त्रता का भी हमारे लिए कोई अर्थ नहीं है। दलितों को हिन्दुत्व के बंधनों से छुटकारा दिलाने के लिए डॉ.अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण की क्योंकि बुद्ध ने करूणा और समता पर बल दिया था। बुद्ध की करूणा और समता ही दलित साहित्य की प्रेरणा है तथा 'अप्प दीपो भव' दलितों में आत्मविश्वास तथा अस्मिता का भावबोध व उनमें आत्म सम्बल प्रदान करता है। बाबा भीमराव अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म में ही दलितों की हिन्दुत्व दासता से मुक्त होने का आधार खोजा इसीलिए उन्होंने लाखों की संख्या में दलितों को बौद्ध धर्म ग्रहण करने की प्रेरणा दी।

डॉ.अम्बेडकर के आगमन के पहले दलित रचनाकारों की वैचारिकी संघर्ष में पराजय का मूल कारण उनका स्वयं हिन्दू धर्म का अंग मानना था। यदि उसी समय अपने को वे हिन्दू-व्यवस्था से अलग कर लेते तो उन्हें अमानवीय अपमान नहीं झेलने पड़ते। दलित साहित्य का केन्द्रीय भाव जाति-पाति को तोड़कर समता मूलक समाज की स्थापना करना रहा है। डॉ.श्यौराज सिंह बेचैन एक प्रश्न करते हैं कि -'एक राजघराने की बहू मीरा खुलेआम डंके की चोट पर घोषणा करती है कि उसका गुरू चमार है, वह उसका अपमान किसी भी कीमत पर नहीं करेगी, वह राजघराने में आग-लगाना पसंद करेगी और चमार होने के कारण रैदास का अपमान सहन नहीं करेगी, तो यहां मीरा की कृष्ण-भक्ति प्रमुख है या समाज में व्यापक जातिभेद ?' १२ यही निणर्य करने में दलित साहित्यकार और गैर-दलित साहित्यकारों में स्पष्ट अंतर हो जाता है।

दर असल दलित साहित्य के केन्द्र में मानव-युक्ति, न्याय संघर्षरत, तार्किकता, स्वतन्त्रता, समता, बन्धुता क्रांतिधर्मिता और सामाजिक परिवर्तन है।`दर्मर्ट्रूहेंदेंर्रूदह और`दर्मत्त रट्रैम की मांग करता है। यही कारण है कि दलित रचनाओं में हम कहीं भी चारण, भाट, राजदरबारी, चाटूकार, नवयौवना नायिका के नख-शिख वर्णन और वय-संधि की भोगविलासिता को नहीं देखते हैं। दलित साहित्य राम द्वारा शंबूक वध पर मौन नहीं साधता है बल्कि प्रतिरोध करता है।

दलित साहित्य में प्रयुक्त मिथकों का संबंध है। रामायण, महाभारत और पौराणिक कथाओं के अनेक उपेक्षित पात्र दलित साहित्य के मिथक हैं। जिनमें शम्बूक प्रमुख है। कंवल भारती अपनी कविता में लिखते हैं-

'शम्बूक
तुम्हें मालूम नहीं
तुम्हारे वध पर
देवताओं ने वर्षा की थी।
कहा था-बहुत ठीक, बहुत ठीक,
क्योंकि तुम्हारी हत्या
दलित चेतना की हत्या थी
स्वतन्त्रता, समानता और न्याय बोध की हत्या थी।'१३

दलित साहित्य में इन मिथकों का प्रयोग भी बहुत हद तक डॉ.अम्बेडकर के प्रभाव का परिणाम है। दलित साहित्य सम्पूर्ण नकार का साहित्य है। उसका प्रमुख स्वर हिन्दूवादी मूल्यों, मान्यताओं और विश्वासों के प्रति नकार और विद्रोह का स्वर है जिनका आधार वर्ण जाति व्यवस्था है। आज की रचनाओं में हम डॉ.अम्बेडकर की निर्भिकता, तार्किकता तथा ओज की व्याप्तता को देखते हैं। आज हर दलित साहित्यकार अपनी आत्मकथा निर्भिकता के साथ लिख रहा है। आज लिखे जा रहे दलित साहित्य का स्वर न्याय के लिए गुहार का नहीं संविधान द्वारा प्रदत्त अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए संघर्ष का स्वर है।

डॉ.अम्बेडकर पर बुद्ध, कबीर और ज्योतिबा फुले इन क्रांतिकारी महापुरूषों के विचारों का स्पष्ट और व्यापक प्रभाव था। डॉ.अम्बेडकर ने ऐसे ही महान क्रांतिकारी पुरूषों से प्रेरणा ग्रहण की थी। उन्होंने अपने दुःख और पीड़ा को इनके समक्ष रखकर देखा तो इन्हें उसमें अपनापन लगा अन्यथा वे भी अपने आदर्श तुलसी और राम को मानते। बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर ने गौतम बुद्ध के गाम्भीर्य, कबीरदास के साहस और महात्मा ज्योतिबा फुले की जीवटता को ग्रहण किया। आज दलित साहित्यकार इनसे प्रेरणा ग्रहण कर साहित्य का सृजन कर रहे हैं।

स्त्री शिक्षा और सशक्तीकरण पर बल

बाबा भीमराव अम्बेडकर ने स्त्री शिक्षा पर और उसकी समानता पर भी विशेष बल दिया। उनका मानना था कि एक स्त्री यदि शिक्षित होगी तो पूरे परिवार को शिक्षित और संस्कारित करेगी। विशेष रूप से दलित स्त्रियां जब तक शिक्षित नहीं होगीं तथा पुरूषों के साथ कन्धे से कन्धा

मिलाकर नहीं चलेंगी तब तक हमारा सामाजिक आन्दोलन सफल नहीं होगा । हिन्दू कोड बिल का निर्माण और स्त्रियों के सभी अधिकारों के लिए निरन्तर संघर्ष में लगे रहे । डॉ. अम्बेडकर के विचारों से प्रेरणा ग्रहण आज दलित साहित्य में अनेक महिलाएं लेखन कर रही हैं । उन्होंने बाबा साहेब अम्बेडकर के विचारों को मूर्तता प्रदान की है । इतना ही नहीं उनके प्रयासों का ही फल है कि शिक्षा के साथ-साथ महिलाओं ने राजनीति में भी कदम रखा है । मायावती उत्तरप्रदेश की मुख्यमंत्री के रूप में और लोकसभा अध्यक्ष के रूप में मीरा कुमार दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रही हैं ।

आज हम हिन्दी दलित साहित्य की व्यापकता को देख सकते हैं । साहित्य के जिस क्षेत्र में सूखा पड़ा था आज वह फल-फूल रहा है । दलित लेखकों में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, धर्मवीर, सूरजपाल चौहान, कंवल भारती, श्यौराज सिंह बेचैन, दिनेश राम, तेज सिंह, एन. सिंह, दलित लेखिकाओं में कौशल्या बैसंत्री, सुशीला टाकभौरे, कुमुद पावड़े, कुसुम मेघवाल, रजनी तिलक, अनीता भारती, रजनी दिसोदिया, विमल थोराट, सुमित्रा मेहरोल आदि रचनाकारों ने बाबा साहेब के विचारों की समीक्षा की है और अपने लेखन से दलित साहित्य को समृद्ध और सशक्त बना रहे हैं । साहित्य की कोई भी विधा हो चाहे उपन्यास, आत्मकथा, संस्मरण, नाटक, कहानी, कविता आदि सभी विधाओं में दलित साहित्य अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है ।

सामाजिक न्याय का स्वर

दलित साहित्य सामाजिक न्याय का स्वर है । यह वर्णव्यवस्था के बाहर के समाज का प्रतिनिधित्व करता है इसलिए इसकी विशेषताएं वर्णाश्रम समाज के अन्तर्गत नहीं आती हैं । आज दलित साहित्य अपनी संस्कृति, साहित्य, राजनीति, धर्म आदि का इतिहास खोजने, उसे विकसित करने और परिभाषित करने में लगा है । डॉ.अम्बेडकर ने दलितों के उत्थान के लिए विशेष आन्दोलनों में भूमिका निभाई जिनमें भूमि आंदोलन, दलित पैंथर, डोला पालकी आन्दोलन, नामान्तर आन्दोलन, मण्डल के नाम पर आरक्षण का आन्दोलन और उत्तरी भारत में दलित उत्पीड़न की प्रतिक्रिया स्वरूप अस्मिता और सम्मान का आन्दोलन प्रमुख है । ओमप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में -'डॉ.अम्बेडकर के विचारों की अभिव्यक्ति ही दलित साहित्य है ।'

डॉ.भीमराव अम्बेडकर में हमें अखंडता की गूंज मिलती है । भारत के वर्चस्ववादी तबके ने बाबा साहेब और गौतम बुद्ध को उपेक्षित किया है । दलित साहित्य की अवधारणा को हमें इस रूप में समझना होगा । डॉ.अम्बेडकर ने समता, स्वतन्त्रता और भाईचारे को आधार मानकर ही वैचारिकी प्रस्तुत की थी । यही दलित साहित्य का आधार है । बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर के इसी दर्शन से आज दलित साहित्य मजबूत हुआ है और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहा है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१- अभय कुमार दुबे -नये शहर की तलाश (दलित साहित्य और अस्मिता-रचना) संकलित लेख- आधुनिकता के आइने में दलित संपादक -अभय कुमार दुबे ।

२- सी.आर.प्रसाद राव और के.राधाकृष्ण मूर्ति- दलित कांशसनेस एंड ब्राहमणिज्म - ए मल्टीप्लेक्स क्वेश्चन, द ईस्टर्न एंथ्रोपॉलिजिस्ट (४६) वही ।

३- अर्जुन डांगले द्वारा संपादित -पायजंड ब्रेडः आर.जी.माधव और शरतचन्द्र, माधव मुक्तिबोध के लेख, वही ।

४- धर्मवीर भारती- अंधायुग, पेज नं.१५

५- ओमप्रकाश वाल्मीकि - बस्स बहुत हो चुका , (दलित निर्वाचित कविताएं -संपादकःकंवल भारती)

६- मलखान सिंह- सुनो ब्राह्मण , पेज नं.५१, वही ।

७- कंवल भारती- दलित साहित्य की अवधारणा, बोधिसत्व प्रकाशन, इलाहाबाद, पेज नं.१५

८- दया पवार- अछूत (आत्मकथा)

९- उ. .. र्सं्ि हहगर्पूर्ट्दह र्दभूं, र्जुं हद.५६, र्हेह् ऐर्पूर्ह ,र्तुए.

१०- कंवल भारती- दलित साहित्य की अवधारणा

११- श्यौराज सिंह बेचैन- पश्यंती, पेज नं.५९ ।

१२- कंवल भारती- शम्बूक, पेज नं. (दलित निर्वाचित कविताएं- कंवल भारती)

जीवनीपरक उपन्यास के रूप में 'भारती का सपूत'

अभिषेक कुमार पाण्डेय

Ph.ड शोधार्थी, हिन्दी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग
महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
मो० न०- ७८५७९६०४७३,
email- abhigupt011@gmail.com

'भारती का सपूत' रांगेय राघव द्वारा लिखित एक जीवनीपरक उपन्यास है। जीवनीपरक उपन्यास किसी महान चरित्र के जीवन को आधार बनाकर लिखा जाता है। इसमें लेखक ज्ञात तथ्यों को कल्पना की सहायता से जोड़कर शुष्क तथ्यों को मार्मिक कथानक में रूपान्तरित कर देता है। महान व्यक्तियों के चरित को आधार बनाकर जीवनी भी लिखी जाती है, किन्तु जहाँ एक जीवनी में घटनाओं का विवरण भर होता है, वहीं एक जीवनीपरक उपन्यास में घटनाएँ कथा लेखन की युक्तियों द्वारा अनुशाषित होती है तथा नाटकीयता आदि तत्वों का स्पर्श पाकर मार्मिक प्रसंगों का रूप ले लेती हैं। इन्हीं मार्मिक प्रसंगों के बीच नायक एक ऐतिहासिक नाम मात्र से एक जीते-जागते चरित्र के रूप में विकसित होता है। जीवनी और उपन्यास के इसी अन्तर को इस उपन्यास, 'भारती का सपूत' में भी एक स्थान पर बड़े सरल रूप में स्पष्ट किया गया है। उपन्यास में अध्यापक रत्नहास बाबू ब्रजरत्नदास द्वारा लिखित जीवनी और रांगेय राघव द्वारा लिखित उपन्यास में अन्तर बताते हुए कहते हैं, 'उसमें अधिक तथ्य मिलेंगे...' किन्तु इसमें 'भारतेन्दु के व्यक्तित्व का उभार दिखाई देता है।' कथासाहित्य की किसी भी दूसरी विधा के समान जीवनीपरक उपन्यास भी रचनात्मक लेखन का ही एक रूप है। अतः इसे एक रचनात्मक कृति के रूप में ही देखना चाहिए। 'भारती का सपूत' उपन्यास को भी इसी दृष्टि से देखना उचित होगा।

भारत में अंग्रेजी सत्ता के स्थापित होने पर भारतीय संस्कृति का सामना एक नितान्त नई संस्कृति से हुआ। संक्रमण के उस युग में जो परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई वो नवजागरण का कारण बनी। बंगाल में यह नवजागरण सबसे पहले आया उसके बाद दूसरे प्रेसीडेन्सी प्रान्तों में। हिन्दी पट्टी में यह नवजागरण सबसे अन्त में आया, किन्तु अन्य प्रान्तों के नवजागरण से यह इसलिए विशिष्ट है कि जहाँ दूसरे प्रान्तों के नवजागरण का नेतृत्व नेता और सुधारक कर रहे थे वहीं हिन्दी नवजागरण का नेतृत्व साहित्यकार कर रहे थे। ये साहित्यकार एक हाथ से साहित्य रच रहे थे तो दूसरे हाथ से समाज को नवीन दिशा देकर नया समाज रच रचने का भी प्रयास कर रहे थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इन साहित्यकारों के अगुवा थे। 'भारती का सपूत' इन्हीं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जीवनी पर आधारित उपन्यास है।

कोई भी व्यक्ति समय और समाज की उपज होता है। अँग्रेजी में एक कहावत है कि 'ऊदल्ूग्से ्मिूेदहु सह', भारतेन्दु के सन्दर्भ में भी यह बात सही है। उनका युग संक्रमण का युग था। यह संक्रमण साहित्य और समाज, दोनों ही क्षेत्रों में व्याप्त था। पुराने राजवंशों का प्रभुत्व समाप्त हो चुका था। भारत का बल-वैभव दिनों-दिन क्षीण होता जा रहा था। भारत समुद्र पार से आई विदेशी शक्ति का उपनिवेश बन चुका था। सन् सन्तावन की क्रान्ति विफल हो चुकी थी। भारत, विशेषकर हिन्दी पट्टी, पतन के निम्नतम बिन्दु पर थी। सामाजिक संरचना में तेजी से परिवर्तन हो रहा था। दूसरी

ओर साहित्य के क्षेत्र में भी सामन्ती व्यवस्था के समापन के बाद भी दरबारी प्रवृतियाँ विद्यमान थी। गद्य का तो एक प्रकार से अभाव ही था। किसी भी जाति के विचारों की भाषा गद्य होती है, किन्तु हिन्दी में गद्य का अभाव होने से हिन्दी प्रदेश की जनता वैचारिक विपन्नता से जूझ रही थी। भाषा ही चेतना का आधार होती है। अतः भाषा का यह अभाव राष्ट्रीयता के भी अभाव का कारण बन रहा था। दूसरी तरफ मैकॉले कि शिक्षा नीति विद्याथिर्यो को अंग्रेजी राज का हितसाधक बना रही थी। अंग्रेजी शिक्षा जरूरी थी पर चेतना की परतन्त्रता के मूल्य पर नहीं। अंग्रेजी और उर्दू सत्ता और प्रभुत्व की भाषाएँ थीं। उनके सामने हिन्दी तथा अन्य देसी भाषाओं को हेय दृष्टि से देखा जाता था। भारतेन्दु इन्हीं विषम परिस्थितियों के बीच जन्में और बड़े हुए थे और इन सब का उन्होंने सामना किया था। साहित्य और समाज की जितनी भी समस्याएँ उनके सम्मुख आईं उनका शक्ति भर समाधान उन्होंने किया। हिन्दी साहित्य में उनके योगदान के कारण हिन्दी साहित्य में एक पूरा युग ही उनके नाम पर 'भारतेन्दु युग' कहलाया।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भारतेन्दु का स्थान अन्यतम है। वे आधुनिक हिन्दी के जनक हैं, हिन्दी नवजागरण के पुरोधा हैं तथा हिन्दी साहित्य में आधुनिक सम्वेदना भी पहले-पहल इन्हीं की रचनाओं में अभिव्यक्ति पाती है। हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में भारतेन्दु एक ऐसे बिन्दु के समान हैं जहाँ प्राचीन काव्यधारा का अवसान होता है और नवीन काव्यधारा का आरम्भ होता है। इस दृष्टि से देखें तो उनकी कविता में प्राचीन काव्यधारा के अवशेष और नवीन सम्वेदना के अंकुर एक साथ उपस्थित दिखते हैं। इसीलिए जहाँ वे श्रृंगार और भक्ति के पद रचते हैं वहीं देश और भाषा के प्रति चिन्ता भी बराबर व्यक्त करते हैं। वे हिन्दी कविता को रीतिकालीन जड़ता से मुक्त करके नए स्वस्थ मार्ग पर मोड़ते हैं तथा कविता को जनसामान्य से जोड़कर उसे नया स्वरूप प्रदान करते हैं। उन्होंने जहाँ श्रृंगार के क्षेत्र में रीति-निरूपण की बद्ध परिपाटी के स्थान पर स्वछन्द धारा को बढ़ावा दिया वहीं 'भक्ति की वैष्णव परम्परा को स्वीकार किया लेकिन 'कहाँ करुणानिधि केशव सोए, जागत नाहिं अनेक जतन करी भारतवासी रोए।' उन्होंने भक्ति की परम्परा को राष्ट्रीयता से जोड़ दिया।' १. हिन्दी साहित्य में पहली बार उन्हीं की रचनाओं में देश और देशवासियों की व्यथा को स्थान मिला। अंग्रेजी राज में सबसे पहले उन्होंने ही अपनी रचनाओं के द्वारा हिन्दी पट्टी की कोटि-कोटि पीड़ित-दमित जनता की पीड़ा को अभिव्यक्ति दी-

'रोवहु सब मिलि के आवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई?
सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।
सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो?
सबके पहिले जो रूप रंग रस भीनो।
सबके पहिले विद्याफल जिन गहि लीनो?
अब सबके पीछे सोई परत लखाई।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई?'

भारतेन्दु ने काव्यभाषा का संस्कार किया। ऐसे शब्द जिनका प्रयोग सामान्य रूप से नहीं होता था, किन्तु कविता में उन्हें तब भी घसीटा जा रहा था, वैसे घिसे हुए शब्दों को उन्होंने कविता से बाहर किया तथा उनके स्थान पर काव्यभाषा में सामान्य बोलचाल के शब्दों को बढ़ावा दिया। काव्यभाषा के अतिरिक्त काव्यरूप के स्तर पर भी उन्होनें कविता को जनता से जोड़ा- उन्होंने कवित्त, सवैया आदि पारम्परिक छन्दों के साथ ही कजरी, ठुमरी, लावणी, कहरवा, चैती आदि लोक शैलियों को बढ़ावा दिया। जनता की भाषा में रचना करने के कारण भारतेन्दु की रचनाएँ शीघ्र ही सर्वप्रिय हो गई। आचार्य शुक्ल इस सन्दर्भ में कहते हैं कि, 'लोगों के मुँह से उनके सवैये चारों ओर सुनायी देने लगे, उनके बनाये गीत स्त्रियाँ तक घर-घर में गाने लगीं।' २.

कविता के साथ ही गद्य में भी भारतेन्दु का महत्व अन्यतम है। वैसे तो उनके पूर्व लल्लूलाल आदि के समय गद्य के कुछ नमूने सामने आए थे, लेकिन हिन्दी गद्य को नई चाल में ढालने का श्रेय भारतेन्दु को ही जाता है। उन्होंने हिन्दी गद्य की नई चाल को उर्दूनिष्ठता और संस्कृतनिष्ठता के विपरीत ध्रुवों के बीच के माध्यम मार्ग पर प्रशस्त किया, जिससे भाषा को उसका सहज स्वाभाविक रूप मिल सका। उन्होंने नाटक, निबन्ध यात्रावृतान्त, जीवनी, आलोचना, इतिहास आदि नाना विषयों पर कलम चलाकर हिन्दी गद्य साहित्य को समृद्ध किया। अपनी चौतीस वर्ष के अल्पकालीन जीवन में उन्होंने नाना विषयों पर सत्तर से ऊपर ग्रन्थ लिखे। 'वे हिन्दी में राष्ट्रीय पत्रकारिता के भी पुरस्कर्ता हैं। हिन्दी का पहला अखबार भले ही उनके पहले निकला हो परन्तु पत्रकारिता को एक मुहीम के रूप में सामने लानेवाले वे ही हैं। उन्होंने स्वयं तीन पत्रिकाएँ निकालींष्ठ इन पत्रिकाओं के माध्यम से उन्होंने अपने समय के साहित्य तथा सामाजिक, सामाजिक राजनीतिक मुद्दों को उभाराष्ठ आगे राष्ट्रीय पत्रकारिता तथा साहित्यिक पत्रकारिता की जो शानदार परम्परा हमें दिखाई पड़ती, कहीं न कहीं भारतेन्दु की साधना

उसके मूल में है।' ३.. सामान्यतः साहित्यकार साहित्य की रचना करते हैं, किन्तु भारतेन्दु उन बिरले साहित्यकारों में अग्रगण्य हैं जो साहित्यकारों की रचना करते हैं, जिनकी प्रेरणा से एक समूचा युग परिचालित होता है तथा जिनकी प्रेरणा आने वाले युगों में भी साहित्याकाश में पूर्णेन्दु के समान अपनी प्रभा बिखेरती रहती है। हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु के महत्त्व का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि निराला जैसा कवि भी स्वयं को भारतेन्दु के भवन का अदना सा दरबान कहता है।

यदि भारतेन्दु के जीवन के सभी पक्षों पर लिखा जाए तो प्रत्येक पक्ष पर एक स्वतन्त्र पुस्तक लिखी जा सकती है। ऐसे में डेढ़ सौ पन्नों के एक छोटे से उपन्यास में उनके जीवन के समग्र अंकन की आशा अनुचित ही होगी, किन्तु रांगेय राघव इस उपन्यास में उनके जीवन और उनके कर्मों की तह में जो उनका व्यक्तित्व है उसे पकड़ने और अंकित करने में सफल रहे हैं। भारतेन्दु के व्यक्तित्व के कई पक्ष हमें इस उपन्यास में देखने को मिलते हैं। भारतेन्दु ने स्वयं अपने विषय में कहा है-

'सेवक गुनी जनके, चाकर चतुर के हैं
कविन के मीत चित हित गुन गानी केष्ठ
चाहिबे की चाह, काहू की न परवाह, नेही
नेह के दिवाने सदा सूरत निवानी के
सरबस रसिक के, सुदास दास प्रेमिन के
सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधारानी के।'

यह कवित्त एक प्रकार से भारतेन्दु के व्यक्तित्व को समझने का सूत्र है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र गुणग्राही व्यक्ति थे। पिता की मृत्यु के बाद दस वर्ष की अवस्था में उन्हें पिता से पैतृक सम्पत्ति और गुणियों का सम्मान करने की प्रवृति उत्तराधिकार स्वरूप प्राप्त हुई थी। इस सन्दर्भ में भारतेन्दु के दौहित्र एवं उनके जीवनी लेखक बाबू ब्रजरत्नदास का मत द्रष्टव्य है। वे लिखते हैं, 'गुण-ग्राहकता के भारतेन्दु जी स्वरूप ही थे। यह केवल कवि ही के आश्रयदाता या कविता ही के गुण-ग्राहक नहीं थे प्रत्युत प्रत्येक गुण या उत्तम वस्तु के ग्राहक थेष्ठहिन्दी-मातृमन्दिर के साधारण से साधारण पुजारी का भी यह सम्मान करते, किसी अन्य विद्या या कौशल के पण्डित का पूरा सम्मान करते, यहाँ तक कि अपव्ययी या फ़िज़ूलखर्च कहला कर भी अच्छे वस्तु के विक्रेता को कोरा नहीं लौटते थे। इसीलिए लोगों ने कहा है- सब सज्जन के मान को कारन इक हरिचंद। पर यह स्वयं अपने को 'सेवक गुनी जन के चाकर चतुर के हैं, कविन के मीत चित हित गुन गानी के' कहते हैं। यह कोई ऐश्वर्यशाली राजा या महाराजा नहीं थे, पर यथाशक्ति इन्होंने किसी को विमुख न फेरा।' ४. पं० अम्बिकादत्त व्यास की समस्यापूर्ति पर प्रसन्न होकर भारतेन्दु ने उन्हें पुरस्कृत किया था तथा सुकवि की उपाधि दी थी, ज्योतिर्विद पं० बापूदेव शास्त्री को नया पंचांग बनाने पर बहुमूल्य दुशाला भेंट की थी। पं० सुधाकर द्विवेदी को उनके एक दोहे में 'कल' शब्द के प्रयोग पर प्रसन्न होकर दो सौ रुपये का पुरस्कार दिया था। इन्हीं सुधाकर द्विवेदी ने उनकी की कुण्डली बनाई थी जिसपर उन्होंने पाँच सौ रुपये देकर इन्हें सम्मानित किया था। इसी प्रकार आशु कवि गड्डूलाल, गणितज्ञ नारायण मार्तण्ड, धनुर्धर सुप्पैयाचार्य, पहलवान बाबा तुलसीदास, चारखार निवासी कवि परमानन्द आदि अनेक ऐसे विद्वानों-गुणीजनों के नाम उनकी जीवनी में मिलते हैं जिन्हें समय-समय पर भारतेन्दु ने सम्मानित किया था। उनके स्कूल के पढ़े छात्र दामोदर दास ने बी०ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी से पास की तो उन्होंने पुरस्कार स्वरूप सोने की घड़ी और सोने की चेन उन्हें दी। 'काशी में आचार्य परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले बालकों को भी घड़ी दिया करते थे। पण्डित अम्बिकादत्त व्यास को भी साहित्याचार्य की परीक्षा पास होने इन्होंने एक घड़ी दी थी।' ५. इसके अतिरिक्त भारत के लगभग सभी प्रान्तों में बालिकाओं को परीक्षोत्तीर्ण होने पर बनारसी साड़ी भेंट किया करते थे। वास्तव में छोटी अवस्था में ही भारतेन्दु को अपनी पैतृक सम्पति से विराग हो गया था। उपन्यास में इस बात को भारतेन्दु के एक कथन बड़ी कुशलता से अंकित किया गया है- 'यह धन आदमी को लालची और कायर बनाता है।' अतः वे धन को समाज के कल्याण का साधन भर ही मानते थे। धन के प्रति इस वैराग्य के दो कारण थे पहला तो यह कि वे अपने पूर्वज अमीचन्द का इतिहास जानते थे। वे जानते थे कि कैसे धन के लोभ ने उनसे राष्ट्रद्रोह करवाया था। इसीलिए काशीनरेश के समझाने पर भारतेन्दु ने उन्हें उत्तर दिया था कि इस धन ने मेरे पूर्वजों को खाया है अब मैं इसे खाऊँगा। दूसरा कारण था भारतेन्दु का सम्वेदनशील स्वभाव। वड्र्सवर्थ कहते हैं कि कवि एक सामान्य मनुष्य से कहीं अधिक सम्वेदनशील होता है। फिर भारतेन्दु का कहना ही क्या, वे तो दूसरों के सुख में अपना सुख और उनके दुख में अपना दुख मानने वाले व्यक्ति थे। कवि का हृदय था। ऐसे समय में जब देश उपनिवेशवादी शोषण से दिनोंदिन विपन्न होता जा रहा हो तथा देश की जनता परतन्त्रता का बोझ अपने कन्धों पर लिए अन्न, वस्त्र,

शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार जैसी मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित होकर कराह रही हो, तब देश और जाति की चिन्ता करने वाला एक सम्वेदनशील और परदुखकातर कवि धन जोड़ने के विषय में कैसे सोच सकता था! इसका निरूपण 'भारती का सपूत' उपन्यास में भी किया गया है। उपन्यास में जब बँटवारे के लिए घर में कलह होता है तब भारतेन्दु कहते हैं- 'रुपया रुपये को ही सूद की शक्ल में पैदा करता है। मुझे यह नहीं चाहिए। मैं इसे आदमियों के काम की चीज समझता हूँ। इसलिए नहीं देता कि इसे देकर कुछ बड़प्पन मिलता है। इसलिए देता हूँ कि इस देश में रईस धन की ढेरियों पर स्वार्थ में डूबे हुए से, साँप बनकर बैठे हैं। मैं देता हूँ कि आदमी की जरूरतमन्दी मुझसे देखी नहीं जाती।' ६. भारतेन्दु ने साहित्य और समाज के कल्याण हेतु पैसे को पानी के समान बहाया। कविता वर्धिनी सभा की बैठकों का खर्च हो, या उनके द्वारा स्थापित चौखम्भा स्कूल का खर्च, या उनके होमियोपैथिक अस्पताल का खर्च, समाज की भलाई के लिए उन्होंने रुपये का मोल नहीं देखा। लोक मंगल हेतु वे जितना व्यय करते परिवार के लोग उनपर उतना ही बिगड़ते और धन के प्रति उनकी अनासक्ति भी उतनी ही और बढ़ जाती थी। उनकी इस उदारता के किस्से उनकी अलग-अलग जीवनियों में भरे पड़े हैं। इस उपन्यास में भी उनके व्यक्तित्व के इस पक्ष को प्रमुखता मिली है। किसी की कविता पर प्रसन्न होते तो पुरस्कार दे देना, कोई जरूरतमंद आए तो उसकी सहायता कर देना भारतेन्दु के नित्य का कर्म था और कौन सा ऐसा दिन नहीं था जब उनके दरवाजे पर कोई दरिद्र पिता अपनी कन्या के विवाह के लिए सहायता लेने नहीं आता था। 'उदारता का ऐसा आलम था कि मित्रों को इच्छाएँ व्यक्त करने में वक्त लगता था मगर पूरी करने में भारतेन्दु एक पल जाया नहीं करते थे। जरूरतमंदों से लेकर बेसहारा गरीब युवतियों के विवाह सड़कों पर भीख माँगते दरिद्रों को दुशाले ओढ़ा कर भारतेन्दु ने दूषित संपत्ति की कालिमा पोंछी। शेष संपत्ति हिन्दी भाषा और साहित्य के लिए मुक्तहस्त खर्च किया कि अपनी नाव कर्ज में डुबो दी मगर हिन्दी के जहाज को डूबने से बचा लिया।' ७. अपने छोटे से जीवनकाल में तन-मन-धन, हर प्रकार से उन्होंने देश की सेवा की। ठगे गएँ, विश्वासघात पाया पर धन के लिए शील से कभी समझौता नहीं किया। पैतृक सम्पति को परोपकार में फुँकता देखकर परिवार ने बँटवारा कर दिया। जब पैतृक वैभव का बँटवारा हो गया और हिस्से में मिली नाममात्र की सम्पत्ति भी परोपकार में समाप्त हो गई तब भी वे डिगे नहीं। उन दिनों उनकी आय का एकमात्र साधन सरकार द्वारा उनकी पत्रिकाओं की सौ-सौ प्रतियों के क्रय से मिलने वाला धन था। उनके हिन्दी आन्दोलन को राजद्रोह मानकर यह सहायता भी बन्द कर दी गई। इसपर भी वे अपना कर्म करते रहें। उन्होंने सीधे पाठकों से दान के लिए निवेदन किया। जब तक सम्भव रहा पत्रिकाएँ छपती रहीं। इस प्रकार भारतेन्दु की गुणग्राहकता, परोपकारिता, परदुखकातरता, सत्यवादिता, विनोदप्रियता, बेफिक्री और स्वच्छन्दता आदि गुणों को 'भारती का सपूत' उपन्यास में बखूबी चित्रित किया गया है। इसके अतिरिक्त भारतेन्दु के कार्यों और उनके महत्त्व को भी उपन्यासकार ने भलीभांति रेखांकित किया है।

भारतेन्दु के जीवन को देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। ग्यारह वर्ष की जिस छोटी अवस्था में हमें साहित्य का 'स' पढ़ने भी नहीं आता उसी अवस्था में वे साहित्य के उद्धार का संकल्प लेते हैं। ग्यारह वर्ष की अवस्था में वे बंगाल की यात्रा के दौरान वहाँ का साहित्य पढ़ते हैं। वहाँ का साहित्य पढ़कर उन्हें अनुभव होता है कि हमारी अपनी भाषा में वैसे साहित्य का अभाव है और वे इस अभाव की पूर्ति में लग जाते हैं। सत्रह वर्ष की अवस्था में वे यंगमैन एसोसिएशन बनाते हैं, अठारह की अवस्था में डिबेटिंग क्लब बनाते हैं। अठारह की ही अवस्था में वे अंग्रेज सरकार के विरुद्ध राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द का विरोध करते हैं तथा हिन्दी को पश्चिमोत्तर प्रान्त की राजभाषा बनाने के लिए आन्दोलन छेड़ दिया था। भाषा से लेकर समाज तक परिवर्तन की लहर लाने वाला 'भारती के सपूत' का नायक कोई वयस्क व्यक्ति नहीं बल्कि बनारस का एक नवयुवक है।

भारतेन्दु पंजाब, महाराष्ट्र और बंगाल के नवजागरण के नेताओं से सीधे सम्पर्क में थे, देशभर के गणमान्य लोगों से उनका परिचय था तथा अपनी अलग-अलग यात्राओं के दौरान वे जनता से सीधे जुड़े थे, उनके दुख-दर्द को उन्होंने निकट से देखा था। 'भारत-दुर्दशा' और 'अंधेर नगरी' जैसी रचनाओं में जनता का यही दुख अभिव्यक्ति पाता है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि जिस अवस्था में लोग स्वयं अपनी चिन्ता भी ठीक से नहीं कर पाते उस अवस्था में भारतेन्दु देश और देशवासियों के लिए चिन्तित रहा करते थे। भारतेन्दु चिन्तित थे क्योंकि वे औपनिवेशिक शोषण से देश को दिन-दिन दरिद्र होता देख रहे थे। देसी उद्योग धन्धे चौपट हो चुके थे। उन्हें बड़ा दुख था कि माचिस जैसी तुच्छ वस्तु भी हम नहीं बना सकते थे। हर छोटी बड़ी

वस्तु विदेश से आ रही थी, देश का धन विदेश जा रहा था और देश की जनता बेहाल हो रही थी। '१८७१ में भारत का ३३,४७,२०८ हंड्रेड वेट गेहूँ इंग्लैण्ड पहुँचा, तब यहाँ भुखमरी थी।' ८. भारतेन्दु ने यह भारत दुर्दशा देखी थी। अपने बलिया वाले प्रसिद्ध भाषण में अपना यह दुख व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था- 'जैसे हजार धारा होकर गंगा समुद्र में मिलती है वैसे ही तुम्हारी लक्ष्मी हजार तरह से इंग्लैंड, फरांसिस, जर्मनी, अमेरिका को जाती है।'९. वे नवजागरण के उन पहले नेताओं में थे जिन्होंने स्वदेशी का मन्त्र दिया था। बलिया वाले भाषण में उन्होंने देशवासियों का आवाह्न करते हुए कहा था- 'भाइयों, राजा-महाराजों का मुँह मत देखो। मत आशा रखो कि पंडित जी कथा में ऐसा उपाय बतलाएँगे कि देश का रुपया और बुद्धि बढ़े। तुम आप ही कमर कसो, छोड़ोष्ठ परदेसी वस्तु और परदेसी भाषा का भरोसा मत करो अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।' ९.

भारतेन्दु ने एक स्कूल और एक दाँत का हॉस्पिटल खोला था। सरकार और मिशन के स्कूलों के रहने पर भी उन्होंने स्वयं अंग्रेजी और हिन्दी का स्कूल खोला था, जिसमें बच्चे प्रायः निःशुल्क पढ़ते थे, तथा जहाँ किताब-कलम आदि सन्साधनों के साथ भोजन भी निःशुल्क उपलब्ध कराया जाता था। सरकारी स्कूलों के रहते हुए अलग विद्यालय खोलने का एकमात्र कारण यह था कि वे ऐसी शिक्षा देना चाहते थे जो भारतीयता को पोषित करने वाली हो, जो अँग्रेजी शिक्षण पद्धति का श्रेष्ठ देने के बाद भी विद्याथिन्यों को मानसिक रूप से शासक अँग्रेजों का दास न बनने दे तथा जहाँ भारतीय संस्कृति पढ़ाई जाए। यह उपनिवेशवाद से सीधी लड़ाई थी। विउपनिवेशीकरण का पहला प्रयास था। समाज के हर तबके तक शिक्षा को पहुँचाने का महत्व भारतेन्दु समझ रहे थे। जब समाज का हर सदस्य शिक्षित होकर नई चेतना से युक्त हो जाएगा तब स्वमेव एक नए समाज का निर्माण हो जाएगा। जिस अवधारणा को बाद में गाँधी जी सवीदय का नाम देते हैं उसके बीज भी इस प्रयास में देखे जा सकते हैं। उपन्यास 'भारती का सपूत' में मन्नोदेवी द्वारा सरकारी स्कूलों के रहते अलग स्कूल खोलने का कारण पूछने पर वे कहते हैं- 'देश भूखा है, गरीब है। सोचो तो अंगरेजों के खोले हुए स्कूल हैं। मिशन के स्कूल हैं। पर उनमें हमारी संस्कृति नहीं पढ़ाई जातीष्ठ मुझे भारतीय संस्कृति चाहिए, ताकि अंग्रेजी पढ़कर लोग जान सकें कि अंगरेज़ किन खूबियों की वजह से हुकूमत करते हैं, न कि काले साहब बनकर दोगलों की तरह अपनों से ही नफ़रत करने में घमंड कर सकें। इस देश को बहुत से पढ़े-लिखे लोगों की ज़रूरत है। थोड़े से रईसों के लड़कों से इस देश का उद्धार नहीं हो सकता। उसके लिए नये इंसानों की एक फ़सल खड़ी करनी होगी।' १०. अंगरेजों ने विद्यालय तो खोल रखे थे। मिशन के भी स्कूल थे, लेकिन तब शिक्षा सबके लिए सुलभ न थी। रईसों के बच्चे पढ़ सकते थे, लेकिन उन स्कूलों की फीस भरना देश की बहुसंख्यक गरीब जनता के लिए सम्भव नहीं था। इस सन्दर्भ बाबू ब्रजरत्नदास लिखते हैं कि, 'यद्यपि कुछ सरकारी तथा मिशन स्कूल खुल चुके थे पर उनमें जन-साधारण अपने-अपने बालकों को अनेक विचारों से तथा फीस आदि देने में असमर्थ होने से नहीं भेज सकते थे। इसमें अधिक लड़के बिना फ़ीस दिए पढ़ते थे और उन्हें पुस्तक, लेखनी आदि भी बिना मूल्य दी जाती थी। कुछ निराश्रय बालकों को वस्त्र, भोजन भी मिलता था।'११. निश्चय ही इस प्रकार के परिवर्तन के लिए यह एक विद्यालय पर्याप्त नहीं था, किन्तु जितना अकेले भारतेन्दु के लिए सम्भव था उतना उन्होंने किया। उनका खोला हुआ वह विद्यालय वर्तमान में हरिश्चन्द्र पी०जी० कॉलेज के नाम से प्रसिद्ध है। उपन्यास में विद्यालय खोलने के तथ्य और उसके पीछे के कारण को बड़ी सुन्दरता के साथ स्पष्ट किया गया है। इससे भारतेन्दु के व्यक्तित्व का एक अलग पक्ष पाठक के सामने आता है। सामान्यतः लोग भारतेन्दु को एक साहित्यकार के रूप में जानते हैं, एक कवि, नाटककार, निबन्धकार, आलोचक आदि के रूप में, अथवा अधिक से अधिक एक पत्रकार के रूप में; किन्तु भारतेन्दु का कर्मक्षेत्र इससे कहीं अधिक व्यापक है। उन्होंने प्रत्येक वह कर्म किया है जिससे भाषा, समाज और संस्कृति की उन्नति हो। उन्होंने अपने युग की चुनौतियों की न केवल पहचान की बल्कि उन चुनौतियों का सामना करने के लिए कर्मक्षेत्र में उतर कर उद्यम भी किया। उनके विषय में कर्मेन्दु शिशिर जी ने ठीक ही कहा है कि वे सिर्फ कलम से क्रांति लाने वाले आज जैसे बावनवीर नहीं थे, बल्कि वह सीधे जनता के बीच जाकर सक्रिय हिस्सेदारी लेते थे।

जिस समय भारतेन्दु गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा आदि समस्याओं पर बात कर रहे थे, जिस समय शिक्षा के प्रसार के लिए प्रयत्न कर रहे थे, जिस समय औपनिवेशिक शोषण का रहस्योद्घाटन कर रहे थे तथा जिस समय देशवासियों को स्वदेशी का मन्त्र दे रहे थे

उस समय तक कांग्रेस या वैसी कोई भी राजनीतिक सन्स्था अस्तित्व में नहीं आई थी। भारतेन्दु के जीवन को देखकर प्रेमचन्द का यह कथन ठीक ही लगता है कि साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है।

भारतेन्दु एक साहित्यकार थे, एक पत्रकार थे, एक सुधारक थे। वे एक नट थे, जीवन के रंगमंच पर उन्होंने वो सभी भूमिकाएँ निभायी जिनकी दासता के बोझ से दबे देश में आवश्यकता पड़ी। 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की तुलना किसी एक देश के ऐसे साहित्यकार से की जाए जिसने अपनी भाषा, साहित्य और संस्कृति को नया व्यक्तित्व दिया हो, जिससे पूरा युग युग खड़ा हुआ हो वह होंगे रूस के महान साहित्यकार पुश्किन! फर्क इतना है कि पुश्किन को उनकी जनता युगपुरुष के रूप में आज भी समादृत करती है और हमारी जनता भारतेन्दु को जानती तक नहीं।' १२.

भारतेन्दु के व्यक्तित्व और उनके कार्यों के महत्त्व पर एक दृष्टि डालने के पश्चात यदि हम इस उपन्यास की घटनाओं पर विचार करें तो पाएँगे कि उपन्यास की प्रायः सभी बातें बाबू ब्रजरत्नदास द्वारा लिखित भारतेन्दु की जीवनी से मेल खाती है। कोई भी साहित्यिक कृति यथार्थ की रचनात्मक पुनर्रचना होती है और इस पुनर्रचना में रचनाकार अपनी ओर से भी कुछ जोड़ता है, क्वचिदन्यतोपि। यह 'क्वचिदन्यतोपि' ही सत्य को साहित्य बनाता है। भारती के सपूत के साथ भी यही बात है। यह कृति भारतेन्दु के जीवन की रचनात्मक पुनर्रचना है और बाबू ब्रजरत्न दास की लिखी जीवनी इसका उपजीव्य है। अतः रांगेय राघव ने कुछ बातें तो उससे जस की तस उठा ली हैं, लेकिन कुछ ऐसी बातें है जिनका लघु संकेत जीवनी में है और उपन्यासकार ने अपनी कल्पना के आधार पर उनका पल्लवन किया है। पिता गिरिधरदास की मृत्यु का वर्णन लगभग जस का तस उठा लिया गया है। वहीं विमाता मोहनबीबी से भारतेन्दु की बनती न थी, यह तथ्य है। रांगेय राघव ने इस तथ्य के पीछे एक मनोवैज्ञानिक कारण जोड़ दिया है। पिता को तर्पण करते देख भारतेन्दु पूछते हैं कि पानी में पानी डालने से क्या लाभ। इस घटना का भी उल्लेख ब्रजरत्नदास करते हैं। रांगेय राघव इस सहज जिज्ञासा को भारतेन्दु की स्वतन्त्र चेतना के रूप में व्याख्यायित करते हैं - 'मैं कोई गोकुल की तरह थोड़े हूँ जो नकल ही किया करता है। मैं खुद बोलता हूँ।' १३. भारतेन्दु के बाल्यकाल के स्वभाव के विषय में ब्रजरत्नदास कहते हैं कि वे स्वभाव से 'हठी, चंचल तथा क्रोधी थे। मुंडेरों, वृक्षों तथा चलती गाड़ियों पर चढ़ने-कूदने का ऐसा शौक था कि अपने प्राण की भी परवाह न करते।'१५. इस विवरण और विमाता से न बनने वाली बात को एकसाथ गूँथकर लेखक ने विमाता से रूठकर छत की मुंडेर पर चढ़कर पतंग उड़ाने का प्रसंग रचा है। भारतेन्दु और विमाता मोहनबीबी के बीच के तनाव का उल्लेख प्रायः सभी ने किया है, लेकिन इस सन्दर्भ में यह जान लेना आवश्यक है कि जिस समय गिरिधरदास जी ने दूसरा विवाह किया उस समय भारतेन्दु नौ साल के थे, वहीं मोहनबीबी भी मात्र बारह-तेरह वर्ष की किशोरी थीं। जब विमाता और पुत्र की अवस्था में मात्र तीन-चार वर्षों का ही अन्तर हो, जब दोनों में बचपना हो तब सम्बन्धों में तनाव आना स्वाभाविक है। वास्तव में इस तनाव का कारण नासमझी से उपजा भ्रम तथा संवाद का अभाव था। चूँकि संवाद कभी स्थापित नहीं हुआ अतः सम्बन्ध भी सामान्य न हो सकें। बाबू ब्रजरत्नदास द्वारा लिखित जीवनी को पढ़ने के बाद इस उपन्यास को देखने पर समझ में आता है कि कैसे एक प्रायः अस्पष्ट से रेखांकन को रांगेय राघव ने सुन्दर चित्र में परिवर्तित कर दिया है। ऐसे में उपन्यासकार का यह दावा सही लगता है कि इसमें भारतेन्दु के व्यक्तित्व का उभार दिखाई देता है।

यदि हम इस उपन्यास के थीम पर विचार करें तो हम पाएँगे कि 'भारती का सपूत' एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो अपने समय से आगे है- (ँ र्सेहं र्पे् द पे ूग्स)। इस कारण लोग उसे समझते नहीं हैं। वह स्वेल्हूीदद् है, विशेषकर अपने परिवार द्वारा। दुनिया आपके विपरीत खड़ी हो, यह उतना कष्टकर नहीं होता जितना आपके अपने रक्त का आपके विपरीत हो जाना होता है। कथानायक को बचपन में विमाता से उपेक्षा मिलती है। विवाह के बाद पत्नी से उपेक्षा मिलती है। जीवन की इन दो सबसे महत्वपूर्ण महिलाओं से कथानायक को अपेक्षित प्रेम नहीं मिलता, कभी अप्रूवल नहीं मिलती, बार-बार ठेस ही मिलती है। विडम्बना यह है कि जब पत्नी से मान मिलता है तब कथानायक मरणशैय्या पर पड़ा होता है। गलतफहमी इस उपन्यास के कथानक पर आद्योपान्त छाई हुई है। कथानायक बचपन में विमाता से दुलार चाहता है, लेकिन उसकी झिझक को और बाद में उसके मान को वह उसका अहंकार समझती है वहीं विमाता जब परिवार की आर्थिक स्थिति को स्थिर रखने के लिए कथानायक पर कुछ रोक लगाती है तब वह उसे विमाता का द्वेष समझता है। इसी तरह कथानायक की साहित्यिक-

सामाजिक-सान्सकृतिक व्यस्तता पर उसकी पत्नी सन्देह करती है और पत्नी के मान को कथानायक नहीं समझ पाता। इस प्रकार यह भ्रम, गलतफहमी या श्ेल्ह्रीूहग्हु ही वह ड्राइविंग फ़ोर्स है जो इस उपन्यास के कथानक को आगे बढ़ाता है। कथानायक को अपनी माता और पत्नी से प्रेम नहीं मिलता, स्वकृति नहीं मिलती। अभाव का यही भाव उसे धाय कालीकदमा और परकीया माधवी-मल्लिका से जोड़ता है।

इस उपन्यास में स्त्री पात्रों का चरित्रचित्रण बड़ा सुन्दर और प्रभावी हुआ है। प्रायः अपने सभी जीवनीपरक उपन्यासों में रांगेय राघव ने स्त्री चरित्रों को केन्द्रीय स्थान दिया है। 'रत्ना की बात', 'लोई का ताना', 'लखिमा की आँखें' आदि उपन्यासों के नाम से ही यह स्पष्ट हो जाता है। इस उपन्यास के स्त्री पात्र बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। पात्र-योजना ऐसी की गई है कि सभी स्त्री पात्रों की अपनी विशिष्ट प्रकृति होने पर भी लगता है कि धाय कालीकदमा का चरित्र माँ मोहनबीबी के विपरीत तथा माधवी और मल्लिका का चरित्र मन्नोबीबी के विपरीत है। यह विरोधी चरित्रचित्रण इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह उपन्यास में कॉन्फ्लिक्ट को बनाए रखता है। उपन्यास में भिन्न-भिन्न अवसरों पर ऐसे मार्मिक प्रसंग आते हैं जब इन स्त्री चरित्रों में से कोई एक बड़ा महत्वपूर्ण और गरिमापूर्ण हो उठता है। उपन्यास के आरम्भ में धाय माँ कालीकदमा द्वारा मातृहीन और विमाता द्वारा उपेक्षित बालक हरिश्चन्द्र को स्नेहसिक्त करना इसी प्रकार का प्रसंग है। इसी प्रकार मोहनबीबी द्वारा बँटवारे का विरोध भी इसी प्रकार का एक प्रसंग है। किन्तु इन सभी प्रसंगों में दो प्रसंग सबसे महत्वपूर्ण हैं। पहला उपन्यास का वह अंश जिसमें मन्नोबीबी भारतेन्दु की मृत्यु के बाद उन्हें याद करते हुए अपनी व्यथा कह रही हैं। उत्तमपुरुष एकवचन में लिखा गया यह वर्णन उपन्यास के सबसे मार्मिक अंशों में से एक है- 'अब यह सब सोचती हूँ। तब नहीं सोचती थी। मेरे पति अब कहाँ है? उनको संसार से गये हुए वर्षों हो गये। कोई अब भारतेन्दु कहता है, कोई साहित्य का पिता कहता है। मैं सुन रही हूँ। मैं सुनने के लिए ज़िन्दा हूँ। सुनती हूँ तो छाती फटती है। मन कहता है अभागिन! सुन! वैधव्य की ज्वालाओं में झुलसने वाली अचेत नारी! देख तेरे सुहाग का यौवन धूलि में मिलकर भी आज जन-जन के कल्याण का स्वपन बन रहा है, और तू उसे अपनी माँग का सिंदूर बनाकर भी घमंड न कर सकी?... सारा देश हमारे कुलपूज्य अमीचंद को देशद्रोही कहता है, तो सुनो कि मेरे पति ने अपने रक्त से अमीचंद के पापों को धोया था।' १४. यह अंश अनायास ही मैथलीशरण गुप्त की यशोधरा आदि कृतियों की याद दिला देता है। दूसरा प्रसंग मल्लिका से जुड़ा हुआ है। मरणासन्न भारतेन्दु जब एक गरीब ब्राह्मण याचक को कुछ भी नहीं दे पाते तब मल्लिका का यह कहना कि - 'अभी जो उन्होंने आपको दिया है, उससे बढ़कर वे और क्या दे सकते थे... कवि ने आँसू दिये और आप समझे नहीं।' १५. कवि के आँसू का मोल हर कोई नहीं समझ सकता। मल्लिका लौटते हुए याचक को अपना कीमती दुशाला उतारकर दे देती। इस अवसर पर यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतेन्दु को जितना मल्लिका समझती है उतनी निकटता से कोई और नहीं समझता। भारतेन्दु के मल्लिका के प्रति प्रेम का कारण भी बहुत कुछ यहाँ स्पष्ट हो जाता है। ऐसे मार्मिक अवसरों पर भारतेन्दु के व्यक्तित्व का कोई न कोई पक्ष व्याख्यायित होता है जिससे उनका व्यक्तित्व पहले से कुछ और ठोस रूप में हमारे सामने आता है।

अन्त में हम उपन्यास के शिल्प पर विचार करेंगे। हम यह देखते हैं कि यह उपन्यास पारम्परिक उपन्यासों से भिन्न है। इसका शिल्प किसी नाटक या स्क्रीनप्ले जैसा है। नाटक या स्क्रीनप्ले के समान ही इसमें तनाव या कॉन्फ्लिक्ट भी है। (किसी भी दूसरे उपन्यास की तुलना में इस उपन्यास का नाट्यरूपान्तरण अधिक सरल है।) प्रश्न यह उठ सकता है कि इस प्रकार के शिल्पगत प्रयोग का औचित्य क्या है? इसका उत्तर यह है कि लेखक रांगेय राघव ने आधार सामग्री के रूप में बाबू ब्रजरत्नदास द्वारा लिखित जीवनी का उपयोग किया है। यह जीवनी बड़ी संक्षिप्त है। इसमें क्रमवार या व्यवस्थित रूप से घटनाओं का निरूपण नहीं हुआ है बल्कि अलग-अलग शीर्षकों के अन्तर्गत कुछ बिखरी-बिखरी बातें है। इसमें बहुत सी सूचनाएँ ऐसी हैं जो भारतेन्दु के विराट व्यक्तित्व को समझने के लिए आवश्यक हैं, किन्तु इनसे उनके व्यक्तिगत जीवन पर पर्याप्त प्रकाश नहीं पड़ता है। जो सूचनाएँ हैं वे भारतेन्दु का महत्त्व प्रतिपादित करने के लिए तो महत्त्वपूर्ण हैं, किन्तु उन्हें कथानक में जोड़ना कठिन है। तो जिस प्रकार नाटक में सूच्य दृश्य होते हैं, वैसे ही इस उपन्यास में ये सारी सूचनाएँ अध्यापक रत्नहास के माध्यम से पाठकों को सूचित कर दी जाती हैं। उपन्यास में दो अलग-अलग पुस्तकों का फसाड भी है। यह जताने का प्रयास किया गया है कि अधयापक रत्नहास दो-दो पुस्तकों से भारतेन्दु के विषय में बता रहे हैं। इनमें एक पुस्तक रांगेय राघव की है तथा दूसरी पुस्तक का लेखक अज्ञात है, क्योंकि ऐसा बताया

जाता है कि लेखक की सूचना देने वाला पृष्ठ फट गया है। दूसरी पुस्तक में प्रायः पारिवारिक खटपट के छोटे-छोटे दृश्य हैं। दो पुस्तकों के इस फसाड के बीच में अध्यापक रद्रहास की विश्लेषणात्मक टीका-टिप्पणियाँ हैं। ऐसा लगता है कि इस उपन्यास को ब्रेख्त के विलगाव के सिद्धान्त के आधार पर लिखा गया है। ऐसा जानबूझकर हो सकता है या अनजाने में भी, लेकिन विलगाव के सिद्धान्त के अनुसार इस उपन्यास की संरचना इस प्रकार है कि भावात्मक संलग्नता नियन्त्रित रहती है। पाठक प्रसंगों की मार्मिकता से भावुक होता है, किन्तु भाव के बहाव में बहकर बहुत दूर तक जा नहीं जा पाता। बहाव शुरू ही होता है कि अध्यापक रद्रहास अपनी विश्लेषणात्मक टिप्पणियों के साथ उपस्थित हो जाते हैं। भाव का प्रभाव शान्त होता है तथा बुद्धि सक्रिय हो जाती है।

इस उपन्यास की भाषा भारतेन्दु युग के अनुरूप है। विषयानुरूप भाषा उपन्यास को प्रांजलता प्रदान करने के साथ ही प्रमाणिकता भी प्रदान करती है। पाठक के सामने भारतेन्दु युग का वातावरण सजीव हो उठता है। कुल मिलाकर यह एक सुन्दर जीवनीपरक उपन्यास है जिसमें भारतेन्दु के व्यक्तित्व और कृतित्व को बड़ी सुन्दरता के साथ अंकित किया गया है। हिन्दी के पहले जीवनीपरक उपन्यासों में से एक होने के कारण इसका महत्त्व और बढ़ जाता है।

सन्दर्भ-

१. शिशिर कर्मेन्दु, हिन्दी नवजागरण और जातीय गद्य परम्परा (२००८), आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं० ६८

२. शुक्ल रामचन्द्र, चिंतामणि भाग-१ (२०१२), अनुपम प्रकाशन, पटना, पृष्ठ सं० १२५

३. मिश्र शिवकुमार, भारतेन्दु और भारतीय नवजागरण (२००९) सम्पादन डॉ० शंभुनाथ, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, पृष्ठ सं० २३

४. ब्रजरत्नदास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१९५०), हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, पृष्ठ सं० २०

५. वही, पृष्ठ सं० १६

६. राघव रांगेय, भारती का सपूत (१९५४), विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृष्ठ सं० १११

७. शिशिर कर्मेन्दु, हिन्दी नवजागरण और जातीय गद्य परम्परा (२००८), आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं० ६७

८. शंभुनाथ डॉ०, भारतेन्दु और भारतीय नवजागरण (२००९), प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, पृष्ठ सं० १४१

९. हरिश्चन्द्र भारतेन्दु, भारतेन्दु के श्रेष्ठ निबन्ध (२००२), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ सं० २

१०. वही, पृष्ठ सं० ६

११. राघव रांगेय, भारती का सपूत (१९५४), विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृष्ठ सं० ७५

१२. ब्रजरत्नदास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१९५०), हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, पृष्ठ सं० ३०

१३. शिशिर कर्मेन्दु, हिन्दी नवजागरण और जातीय गद्य परम्परा (२००८), आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं० ६५

१४. राघव रांगेय, भारती का सपूत (१९५४), विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृष्ठ सं० २८

१५. वही, पृष्ठ सं० १४७

अभिधा लक्षणा व्यापार विमर्श

रत्नेश पाण्डेय

शोध–छात्र
H.No-328 (एस्पिरेन्ट इन्स्टीट्यूट)
तमसा मार्ग, अकबरपुर,
अम्बेडकरनगर
पिन कोड–224122 (उ0प्र0)
मो0नं0–9415363706

जो शक्ति वाचक शब्द के द्वारा वाच्यार्थ का बोध कराए, उसे अभिधाशक्ति कहते हैं। इसे आचार्यों ने शब्द की 'प्रथमा शक्ति' भी कहा है। जिस शक्ति (अर्ध बोधक व्यापार) के द्वारा साक्षात् संकेतित अर्थ का बोध या ज्ञान, हो उसे अभिधाशक्ति कहते हैं। अभिक्षा के द्वारा शब्द के सामान्य प्रचलित अर्थ का ज्ञान होता है। अभिधाशक्ति का विवेचन करते हुए आचार्य मम्मट ने सर्वप्रथम 'वाचक शब्द' के सामान्य प्रचलित अर्थ का ज्ञान कराया है। इसके बाद इसका विवेचन किया है कि शब्द का संकेति अर्थ किस रूप में होता है? उक्त विशय में आचार्य मम्मत ने विभिन्न मतों की चर्चा की है, और अन्त में स्पश्ट किया है कि–(सूत्र–11) स मुख्यो□र्थस्तत्र मुख्यो व्यापारो□स्याभिधोच्यते।।8।।1

अर्थात् वह (साक्षात् संकेतित अर्थ) मुख्य अर्थ (कहलाता) है, और उस (का बोधन कराने) में इस (शब्द) का जो व्यापार होता है, वह अभिधा व्यापार कहलाता है।2

ध्येय है कि वाच्यार्थ को मुख्यार्थ भी कहा जाता है। 'मुखमिव मुख्यः' इस विग्रह में शाखादिभ्योयः सूत्र 5–3–103 से 'य' प्रत्यय होकर मुख्य शब्द होता है, जैसे शरीर के सारे अवयवों में मुख सबसे प्रधान है, और सबसे पहले दिखलाई देता है, उसी प्रकार से वाच्य, लक्ष्य तथा व्यंग्य अर्थों में वाच्यार्थ सबसे प्रधान और सबसे पहिले उपस्थित होने वाला अर्थ है। इसलिए मुख के सामान होने से उसे मुख्यार्थ, कहा जाता है। उस मुख्यार्थ वाच्यार्थ का बोध कराने वाला शब्द का जो व्यापार है, उसको अभिधा, व्यापार कहते हैं।3

संकेत ग्रह का विशयभूत अर्थ ही शब्द का मुख्यार्थ है। मुख्यार्थ में शब्द का जो व्यापार होता है, उसे अभिधा कहते हैं। 'स मुख्योर्थस्तत्र मुख्यो व्यापारो□स्याभिधोच्यते' साक्षात् संकेतित अर्थ को बतलाने वाली शब्द की प्रथमा शक्ति को अभिधा कहते हैं। ''भाशा की जिस शक्ति से शब्द के सामान्य प्रचलित अर्थ का बोध होता है, वह अभिधाशक्ति कही जाती है।5 'तत्रसंकेतितार्थस्य बोधनादग्रिमभिधा।'6

शब्छदशक्ति का तात्पर्य, शब्द में अन्तर्निहित उस अपरिमित शक्ति से है, जिसके कारण वह अर्थ के अनेक स्तरों का उद्घाटन करने में समर्थ होता है। 7

सभी अर्थों का मुख होने से इसे मुख्यार्थ कहते हैं। मुकुल भट्ट ने 'अभिधावृत्रिमातृका' में बतलाया है कि जिस प्रकार शरीर के सभी अवयवों में सर्वप्रथम मुख दिखलाई पड़ता है, उसी प्रकार सभी प्रकार के अर्थों से पहले इसी अर्थ का बोध होता है, अतः मुख्य की भॉति मुख होने के कारण इस अन्य सभी प्रतीत होने वाले अर्थों का मुख कहते हैं।

–2–

साक्षात् संकेतित होने वाले अर्थ ही सभी अर्थों का मुख होता है। इसका बोध सभी प्रकार के प्रतीत अर्थों के पूर्व ही हो जाता है, अतः इस अर्थ की प्रकाशक शक्ति को ही अभिधा कहते है। 8

'सहियथायथा सर्वेभ्यो हस्तादिभ्यो□वयवेभ्यः पूर्वं मुखमवलोक्यते, तद्वदेव सर्वेभ्यः प्रतीयमानेभ्यो□र्थान्तरेभ्यः पूर्वमवगम्यते। तस्मान्मुखमिव मुख्य इति शाखादियान्तेन मुखशब्देनाभिधीयते।9

अभिधाशक्ति के द्वारा जिन वाचक शब्दों सेवाच्यार्थ का बोध होता है, वे शब्द तीन प्रकार के होते हैं–

1–रूढ़ि 2–यौगिक और 3–योगरूढ़ि। इनको 'रसगंगाधरकार ने 'केवल समुदायशक्ति' 'केवलावयवशक्ति' तथा 'समुदायवशक्ति–संकर' कहा है–सेयमभिधा त्रिधाः– केवलसमुदायशक्तिः, केवलावयवशक्तिः समुदायावयवशक्तिसंकरश्चेति' ।10

अभिधा का लक्षण उपस्थित करते हुए पण्डितराज ने कहा है कि–''शब्द एवं अर्थ के परस्पर सम्बन्ध को 'अभिधा' कहते हैं। उस सम्बन्ध को, शब्द का मानकर अर्थ में रहने वाला और अर्थ का मानकर शब्द में रहने वाला भी कहा जा सकता है। इन दोनों में से किसी एक पक्ष को मान लेने के लिए कोई प्रबल युक्ति नहीं है, उक्त सम्बन्ध को विद्वज्जन शक्ति के नाम से भी पुकारते हैं।''

''शक्ताख्यो□र्थस्य शब्दगतः शब्दस्यार्थंगतो वा सम्बन्ध– विशेशो□भिधा।''11

मुख्यार्थ एवं अभिधाशक्ति के प्रसंग में 'संकेत' टीका में टीकाकार मणिक्यचन्द्र लिखते हैं कि 'जिस प्रकार शरीर के सारे अववयों में मुख सबसे प्रधान है, और सबसे पहले दिखाई देता है, उसी प्रकार वाच्य, लक्ष्य व्यंग्यादि में वाच्यार्थ प्रधान है, और सर्वप्रथम उसी का ग्रहण होता है। 12

साक्षात्संकेतितो मुखमिवहस्ताद्यवयवेभ्यो□र्थान्तरेभ्यः प्राग् ज्ञायमानत्वात्। मुख्यार्थविशयः शब्दो□पि मुख्यः' 13

'सारबोधिनी' टीका में श्रीवत्सलाञ्छन भट्टाचार्य लिखते हैं कि 'मुख्य' से अभिधामूलाव्यंजना में अतिव्याप्ति नहीं होती, क्योंकि अभिधा मूलाव्यंजना में मुख्य व्यापार नहीं, अमुख्य है। 'नानार्थव्यंजनवारणाय मुख्य इति।' 14

'काव्यप्रदीप' टीकाकार गोविन्द ठक्कुर लिखते हैं कि यहॉ यह शंका होती है कि वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य रूप में पदार्थों का विभाग करना अनुपयुक्त हैं, क्योंकि मुख्यार्थ रूप में चौथा विभाग भी हो सकता है। वे समाधान करते हुए लिखते हैं कि 'साक्षात्संकेतित एवार्थों मुख्यत्वेन प्रसिद्ध इत्यर्थः।' साक्षात् संकेतित अर्थ ही मुख्य अर्थ है। इस शब्द का व्यवधान रहित जो मुख्य व्यापार है, वही अभिधावृत्ति हैं, अतः वाच्यार्थ के अतिरिक्त कोई मुख्यार्थ नहीं है, जिससे शब्दार्थ का मुख्यार्थ नामक चौथा भेद माना जाय।15

इस प्रकार गोविन्द ठक्कुर ने मम्मट की अपेक्षा 'वाचक' शब्द का विस्तृत विवेचन किया है। वैयाकरणों के अनुसार जाति, गुण, क्रिया तथा यदृच्छा –ये चार प्रकार की उपाधियॉ हैं, उसमें प्रदीपकार गोविन्द ठक्कुर ने संकेत ग्रह माना है। भास्कर और चण्डीदास का मत मम्मट के मत के प्रतिकूल होने से गोविन्द ठक्कुर की आलोचना का विशय बना। सभी टीकाकारों के विवेचना से यही निश्कर्श निकलता है कि 'साक्षात् संकेति अर्थ में जो शब्द का बाधारहित व्यापार है, वही अभिधावृत्ति (शक्ति) है।16

अभिधा–भेदः–नैयायिकों ने अभिधा को चार भागों में विभक्त किया है 1–यौगिक 2–रूढ़ 3–योगरूढ़ 4–यौगिक रूढ़। काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में केवल प्रारम्भिक तीन ही शक्तियों की चर्चा की गई है। अभिधा के भेद निरूपण के लिए 'अवयव' एवं समुदाय शक्ति का ग्रहण करना पड़ता है। यौगिक शब्द अवयवार्थ बोधक होते हैं– जैसे– 'पाचक' इसमें पाच+क से सिद्ध शब्द केवल अवयव का बोध करा रहा है। इन शब्दों से खण्डित अर्थ का बोध होता है। 17

–3–

रूढ़ शब्द समुदायवाचक होता है, जैसे–घट–पट आदि। यहाँ इन शदों के अखण्ड अर्थ का बोध होता है। योगरूढ़ शब्छदअवयव शक्ति से निर्मित होकर भी जो अखण्ड पद का बोधकराता है, वह योगरूढ़ शब्द है, जैसे–पंकज अर्थात् कमल, न कि सेंवार, काई, आदि। यौगिक रूढ़– जो पद अवयवार्थ एवं समुदायार्थ का भिन्न –भिन्न रूप से बोध कराता है, वह शब्द यौगिक

रूढ़ शब्द होगा, जैसे–'अश्वगन्धा' शब्द। यह शब्द ओशधि ा के अर्थ में रूढ़ है, किन्तु घुड़साल के विशेश के रूप में प्रयुक्त होकर यह शब्द 'अश्व+गन्ध' का वाचक बनकर अवश्व शक्ति का बोध कराता है शाब्दी व्यन्जना के प्राकरणिक एवं अप्राकरविक अर्थों में इसकी स्थिति देखी जा सकती है। 18

लक्षणा–शक्ति–

वाचक शब्द का निरूपण करने के पश्चात् मम्मट ने लाक्षणिक शब्द की चर्चा की है। शब्द की जिस शक्ति के द्वारा मुख्य अर्थ से भिन्न अर्थ लक्षित होता है, वह लक्षणाशक्ति है। मुख्यार्थ अथवा वाच्यार्थ की बोधिका अभिधाशक्ति होती है, और अन्य सबकी अपेक्षा सबसे पहिले अभिधा शक्ति ही अपने अर्थ अर्थात् वाच्यार्थ का बोध कराती है, परन्तु जहॉ कहीं मुख्यार्थ बाधित होता है अथवा तात्पर्य की उपपत्ति नहीं होती, वहाँ रूढ़ि (प्रसिद्धि) अथवा प्रयोजन के लिए मुख्यार्थ से सम्बद्ध किसी अन्य अर्थ की प्रतीति हो सकती है। उस अन्य अर्थ को लक्ष्यार्थ और उसकी बोधिका शक्ति को 'लक्षणा–शक्ति' कहा जाता है। लक्षणा शक्ति के व्यापार के लिए 1–मुख्यार्थबाध 2–लक्ष्यार्थ का मुख्यार्थ के साथ सम्बन्ध तथा 3–रूढ़िया प्रयोजन में से अन्यतर, इन तीन कारणों की आवश्यकता होती है।19 इसी अभिप्राय से लक्षणा का लक्षण करने के लिए आचार्यमम्मट अगली कारिका लिखते हैं– (सूत्र 12) मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढ़ितो□थ प्रयोजनात्

अन्यो□र्थो लक्ष्यते यत्सा लक्षणारोपिता क्रिया ।।9।। 20

अर्थात् 1–मुख्यार्थ का बाध 2–उस (मुख्यार्थ) के साथ) सम्बन्ध होने पर 3–रूढ़ि से अथवा प्रयोजन विशेश से जिस (शब्छदशक्ति) के द्वारा अन्य अर्थ लक्षित होता है, वह (मुख्य रूप से अर्थ में रहने के कारण शब्द का) आरोपित व्यापार लक्षणा हैं।। 9 ।। 21

आचार्य मम्मट ने–'मुख्यार्थबाधे' कारिका में सर्वप्रथम लक्षणा के स्वरूप का विवेचन किया है। कारिका में मम्मट का अभिप्राय है कि मुख्यार्थ का बाध होने पर, और उस मुख्यार्थ के साथ सम्बन्ध होने पर प्रसिद्धि से या प्रयोजन से जिस वृत्ति के द्वारा अन्य अर्थ की प्रतीति होती है। वह आरोपित वृत्ति या व्यापार लक्षणा है। वृत्ति में मम्मट ने उदाहरणों द्वारा लक्षणा शक्ति को स्पश्ट किया है। 'कर्मणि कुशलः' में कुश–ग्रहणआदि का सम्बन्ध ा न होने से, 'गंगायां घोशः में गंगा आदि घोश का आध ाार न होने से मुख्यार्थ का बाध हो जाता है। 'कर्मणि कुशलः' तथा 'गंगायां घोशः, में 'विवेकशीलता' तथा समीपता' रूप सम्बन्ध है। 'कर्मणि कुशलः' में रूढ़ि से तथा 'गंगायां घोशः' में पवित्रतादि (शैत्य–पावनत्यादि) गुणों की प्रतीति कराने रूप प्रयोजन से, जो मुख्यार्थ से उपलक्षित लक्ष्यार्थ की प्रतीति होती है, वह व्यवहृत अर्थ में रहने वाला शब्छदव्यापार ही लक्षणा है। 22

आचार्य मम्मट की कारिका– 'मुख्यार्थबाधे' को स्पश्ट करते हुए टीकाकार माणिक्य चन्द्र लिखते हैं कि 'मुख्यार्थबाध' का अभिप्राय 'अनुपत्ति' या 'अनुप्रयोग' से है। 'तद्योग' का अभिप्राय है कि लक्ष्यार्थ का मुख्यार्थ के साथ सादृश्य सम्बन्ध होता है। माणिक्य चन्द्र ने अपनी टीका 'संकेत' में यह भी स्पश्ट किया है कि भर्तृहरि ने मुख्यार्थ योग का यह सम्बन्ध पांच प्रकार का बतलाया है। इसे क्रमशः अभिधेय, सादृश्य समवाय, वैपरीत्य और क्रिया–योग कहते हैं।

'अभिधेयेन सम्बन्धात् सादृश्यात् समवायतः।23 –4–

वैपरीत्यात् क्रियायोगाल्लक्षणा पञचधा मता।।'

1–अभिधेय सम्बन्ध –'गंगायां घोशः। 2–सादृश्यसम्बन्ध ा–'गौर्वाहीकः, ' गौरेवायम् 3–समवाय साहचर्य–'कुन्ताः प्रविशन्ति।' 4–वैपरीत्य सम्बन्ध–'भद्रमुखं का अर्थ–अभद्र मुख 5–क्रिया योग– 'महति समरे शत्रुध्नस्त्वम्'। तृतीय हेतु–रूढ़ि या प्रयोजन है। इस प्रकार लक्षणा का अभिप्राय है कि जहाँ मुख्यार्थबाध होने से प्रत्यक्षादि प्रमाण के द्वारा बाधित होना, मुख्यार्थ के साथ लक्ष्यार्थ का सम्बन्ध ा होना, रूढ़िया प्रयोजन में से किसी एक का होना–इनसे युक्त होकर जिस शब्द शक्ति के द्वारा किसी अन्य अर्थ का लक्षित होना सम्भव होता है, उसे लक्षणा शक्ति कहते है।24

'संकेत' के टीकाकार माणिक्य चन्द्र ने यहॉ मीमांसक कुमारिल भट्ठ का अभिप्राय भी दिया है कि वे रूढ़ि लक्षणा को न मानकर निरूढ़ा लक्षणा को मानते हुए हैं। उनके अनुसार लक्षणा लोक व्यवहार पर आध ाारित रहती है। इस शक्ति द्वारा समाज के आरोपित

और स्वीकृत अर्थ का ज्ञान होता है। यह अर्थ (लक्ष्यार्थ) कभी–कभी इतना प्रबल हो जाता है कि लोग मुख्यार्थ को ही भूल जाते हैं। ऐसी स्थिति में लक्षणा शक्ति का व्यापार होता है और उसे निरूणा लक्षणा कहते हैं।–

'निरूढ़ा लक्षणाः काश्चित् सामर्थ्यादभिधानवत्।

क्रियन्ते साम्प्रतं काश्चित् काश्चिन्नैव त्वशक्तितः।।25

मम्मट ने लक्षणा को 'सान्तरार्थ–निश्ठ' शब्द व्यापार माना है। संकेतकार 'सान्तरार्थ' का अभिप्राय करते हुए कहते हैं–'सव्यवधानः तटादिलक्षणो□र्थः तदाश्रया क्रियाशब्दव्यापारो लक्षणा 26

मम्मट ने प्राचीनों की अन्वयानुपत्ति तथा तात्पर्यानुपपत्ति आदि को 'मुख्यार्थ बाध में संकलित कर दिया तथा प्राचीन आलंकारिकों के–

'अभिधेयेन सम्बन्धात् सादृश्यात् समवायतः।

वैपरीत्यात् क्रियायोगाल्लक्षणा पंचधा मता।। 27

आदि पांच निमित्तों को 'तद्योगे' में समन्वित कर दिया और लक्षणा के विविध रूपों कों ग्रहण करने के लिए 'रूढ़ितो□थप्रयोजनात्' यह तृतीय पद लक्षणा के हेतु में सम्मिलित कर दिया। 28 अभिधा शक्ति की ही भाँति गोविन्द ठक्कुर ने लक्षणा शक्ति की भी विस्तृत व्याव्या की है। 'मुख्यार्थबाधे' कारिका में मम्मट ने प्रत्येक पद का साभिप्राय प्रयोग किया है। अभिधाशक्ति के स्वरूप विवेचन में जिस प्रकार गोविन्द ठक्कुर ने स्पश्ट किया था कि 'अभिधत्ते पद का अभिप्राय 'प्रतिपादयति' से हैं, उसी प्रकार लक्षणाशक्ति को स्पश्ट करते हुए प्रदीपकार गोविन्द ठक्कुर लिखते हैं कि कारिका में प्रयुक्त 'लक्ष्यते' का अभिप्राय 'प्रतिपाद्यते' है। 'प्रतिपाद्यते' अर्थ होने से आत्माश्रय' दोश नहीं होता। व्यञजना में अति व्याप्ति दोश ने हो, इसके वारण के लिए लक्षणा में 'तद्योगे' पद का प्रयोग किया है। 29

अभिधा में मुख्यार्थ का प्रतिपादन होता है, अतः इसके वारण के लिए लक्षणा में 'अन्य' शब्द (पद) का प्रयोग किया गया है। अन्य से अभिप्राय है 'अमुख्य'। अतः लक्षणा का लक्षण में मुख्य की प्राप्ति नहीं अमुख्य अर्थ की प्रतीति होती है। अतः लक्षणा है कि जहाँ मुख्यार्थबाध होने से और उस मुख्यार्थ के साथ समबन्ध होने, रूढ़ि या प्रयोजन द्वारा शब्द के जिस व्यापार से मुख्य से सम्बद्ध अर्थ लक्षित होता है, वह लक्षणा वृत्ति है। 30

मम्मट ने 'नाभिधा समयाभावात् हेत्वाभावान्न लक्षणा' और 'मुख्यार्थवाधादित्रयं सूत्र में शक्य–सम्बन्ध को लक्षणा का कारण माना है। अतएव शक्यसम्बन्ध रूप लक्षणा का कारण शक्यसम्बन्ध नहीं हो सकता। अतः काव्यप्रदीपकार गोविन्द ठक्कुर लिखते हैं कि–'यत्तु यदित्यस्य यत् इत्यर्थकतया सम्बन्ध पर तयैव सूत्रव्याख्यानं

–5–

तदुक्तम् ।' स्पश्ट है कि'यत' सम्बन्धपरक अर्थ लेने से 'मुख्यार्थ–बाधादित्रयं, सूत्र से विरोध उत्पन्न होगा।31 मम्मट ने कारिका में लक्षणा को 'आरोपित क्रिया' और वृत्ति में 'सान्तरार्थनिश्ठ' शब्द व्यापार कहा है। 'आरोपित क्रिया' को स्पश्ट करते हुए गोविन्द ठक्कुर का कथन है कि 'अभिधा' शब्द की साक्षत् वृत्ति है, परन्तु लक्षणा वास्तव में शब्द की साक्षात् वृत्ति नहीं है। मुख्यार्थ के सहारे नवीन अर्थ लक्षित होता है, इसलिए लक्षणा को आरोपित व्यापार कहा है। जैसे–'गंगायां घोशः में गंगादि शब्द में गंगाप्रवाह रूप अर्थ की उपस्थिति होती है, फिर मुख्यार्थ बाध होने से प्रवाहादि से सम्बंधित 'तटादि' रूप अर्थ की उपस्थिति होती है–यह आरोपित व्यापार है।32

इस प्रकार टीकाकारों ने लक्षणा शक्ति की विस्तृत व्याख्या की है। मुख्यार्थबाध, तद्योग और रूढ़ि या प्रयोजन, लक्षणा के हेतु माने हैं। लक्षणा के लिए तीनों तत्वों का होना अनवार्य है। यदि इनमें से एक का भी अभाव हो तो ऐसी दशा में लक्षणा शक्ति का व्यापार नहीं माना जायगा। 33

सन्दर्भग्रन्थ सूची–

1. आचार्य विश्वेश्वर–व्याख्याकृत काव्य प्रकाश, द्वितीय उलास पृ0 सं0 50.
2. वही, पृ0सं0 50.
3. वही, पृ0सं0 50.
4. काव्य प्रकाश, सम्पादक, पं0 यानेशचन्द्र उप्रैती, परिमल पब्लिकेशन्स दिल्ली द्वितीय उल्लास पृ0 सं0 83
5. साहित्य–विज्ञान, पृ0 सं0 280 तथा भारतीय काव्य शास्त्र के प्रतिनिधि सिद्धान्त् प्रो0 राजवंश

सहायहीरा चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी –1, 1967 पृ0सं0 80.
6. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण 2/8.
7. भारतीय काव्यशास्त्र, डा0 शुकदेव सिंह, आनन्द पुस्तक मंदिर वाराणसी पृ0सं0 163.
8. प्रो0 राजवंश सहाय, हीरा, भारतीय काव्य शास्त्र के प्रतिनिधिसिद्धान्त चौखम्बाप्रकाशयनं पृ0 80.
9. आचार्य मुकुलभट्ट अभिधावृत्तिमातृका–1
10. पंडित राज जगन्नाथ, रसगंगाधर, द्वितीय आनन, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी पृ0 सं0 126.
11. पंडित राज जगन्नाथ, रसगंगाधर, द्वितीय आनन, पृ0 सं0 123. चौखम्बा प्रकाशन.
12. काव्य प्रकाश, डॉ0 ज्योत्सना मोहन, नागप्रकाशन भागछ पृ0सं0 104.
13. आचार्य मुकुलभट्ट, डॉ0 ज्योत्सना मोहन, काव्याकृत नागप्रकाशन भाग–6 पृ0सं0 104 (माणिक्य चन्द्र की टीका संकेत से).
14. श्रीवत्सलांछन भट्टाचार्य, काव्य प्रकाश की 'सारबोधिनी' टीका पृ0सं0 27.
15. आचार्य मम्मट, काव्यप्रकाश, डॉ0 ज्योत्सना मोहन व्याख्याकृत नागप्रकाशन भाग–6 पृ0सं0 105
16. वही, पृ0सं0 105.
17. भारतीय काव्यशास्त्र, प्रो0 योगेन्द्र प्रताप सिंह, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज पृ0सं0 197..
18. भारतीय काव्य शास्त्र, प्रो0 योगेन्द्र प्रताप सिंह, लोकभारती प्रकाशन प्रयागराज पृ0सं0 197.
19. काव्य प्रकाश, आचार्य विश्वेश्वर व्याख्याकृत, प्रकाशक–ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी पृ0सं0 51.
20. वही, पृ0सं0 51.
21. वही, पृ0सं0 51.
22. काव्य प्रकाश, डॉ0 ज्योत्सना मोहन, नाग प्रकाशन, भाग 6 पृ0सं0 106.
23. काव्य प्रकाश, के टीकाकार माणिक्यचन्द्र की टीका 'संकेत' पृश्ठ सं0 27.
24. काव्य प्रकाश, डॉ0 ज्योत्सना मोहन, नागप्रकाशन दिल्ली भाग 6 पृ0सं0 106.
25. काव्य प्रकाश, टीकाकार माणिक्यचन्द्र, टीका 'संकेत' पृ0सं0 16.
26. वही, पृ0सं0 26.
27. काव्य प्रकाश, डॉ0 ज्योत्सना मोहन, नागप्रकाशन दिल्ली भाग 6 पृ0सं0 107.
–6–
28. वही, पृ0सं0 107.
29. वही, पृ0सं0 107
30. काव्य प्रकाश, डॉ0 ज्योतसना मोहन, नागप्रकाशसन दिल्ली भाग 6 पृ0सं0 107.
31. वही, पृ0सं0 108.
32. वही, पृ0सं0 108.

————————:————————

' मधु कांकरिया के उपन्यासों में नारी- विमर्श '

आकांक्षा मिश्रा

शोध छात्रा,(हिंदी-विभाग)
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
Email-Id-priyaom01012001@gmail.com
Mobile No.6392426660

मधु कांकरिया ने अपने औपन्यासिक लेखन में स्त्री जीवन के विभिन्न पक्षों को रखा है, उनमें समाज एवं परिवार में नारी की विविध दशाओं का वर्णन हैं और इन्हीं दशाओं से उभरते स्त्री पात्र मधुजी के उपन्यासों में नजर आते है। मधुजी के प्रकाशित उपन्यासों में अधिकांश उपन्यास नारी को सहज मानवीय रूप में चित्रित करते तथा नारी के अस्तित्व को स्वतंत्र रूप में दृढ़ता से स्वीकार करते हैं ।उनके 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास में साध्वी जीवन की सच्चाई सामने आती है।'सलाम आखिरी' उपन्यास में नारी का स्वरूप तथा नारी की आधुनिक युग में बदला हुआ सशक्त रूप दिखाई देता है।

मधु कांकरिया के 'खुले गगन के लाल सितारे' (२००२), 'सेज पर संस्कृत' (२००५), 'सलाम आखरी' (२००९), इन उपन्यासों में अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती तथा समाज और पुरुष की यातनाएं झेलती हुई स्त्री के चित्रण के साथ-साथ पुरुष के समक्ष अपने अधिकारों की मांग करती, अपने ऊपर हुए अन्याय का बदला लेती तथा पुरुष एकाधिकारों में अपना दखल दर्ज कराती स्त्री नजर आती है। मधु कांकरिया ने अपने उपन्यासों में स्त्री- विमर्श का जो चित्रण किया है, वह उनके अपने अनुभवों की जमीन से उपजा है। मधुजी ने जिस पीड़ा और त्रासदी का अनुभव किया है उसी पीड़ा और त्रासदी से निपटने की जो आत्मिक शक्ति है उसे अपने उपन्यास लेखन में स्त्री विमर्श के रूप में अभिव्यक्त किया है।

मधु कांकरिया का 'सलाम आखरी' उपन्यास वेश्या जीवन पर आधारित है।भारतीय संस्कृति में जहां यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते कहा जाता है, वहां उसी नारी को कुछ भीषण कारणों से अपने तन को बेचने के लिए तैयार होना पड़ता है, यह व्यवस्था की सबसे बड़ी क्रूरता है। भारतीय समाज में वेश्याओं की मौजूदगी चीरकाल से चली आ रही है, बदल रहा है सिर्फ समाज का उनके प्रति दृष्टिकोण और वेश्याओं की जीवन शैली। लेखिका भूमिका में ही वेश्याओं के प्रति समाज के दृष्टिकोण की ओर संकेत करती हुई कहती है,' समाज में वेश्याओं की मौजूदगी एक ऐसा चिरंतन सवाल है, जिससे हर समाज, हर युग में अपने-अपने ढंग से जूझता रहा है। वेश्या को कभी लोगों ने सभ्यता की जरूरत बताया, कभी कलंक बताया, कभी परिवार की किलेबंदी का बाई-प्रोडक्ट कहा और कभी सभ्य, सफेदपोश दुनिया का गटर जो उनकी काम कल्पनाओं और कुंठाओं के कीचड़ को दूर अंधेरे में ले जाकर डंप कर देता है।' उपन्यास में उठायी हुई सबसे महत्वपूर्ण बात यह रही है कि आज अपने आपको, सफेदपोश कहनेवाला समाज बिना कारणों को खोजें, बिना परिस्थिति को देखे वेश्याओं को समाज की गंदगी, वेश्याओं की बस्ती को बदनाम बस्ती, उनके बच्चों को हरामी औलाद कहने में संकोच नहीं करता है। समाज के इसी गलत दृष्टिकोण को दूर करने का सफल प्रयास लेखिका ने उपन्यास में किया है। एक सामान्य स्त्री वेश्या व्यवसाय को स्वीकारती है, तो इसके पीछे घटित कारण भी उतने ही भीषण होते हैं, इसी बात को स्पष्ट करते हुए लेखिका कहती हैं- '८५ प्रतिशत वेश्यावृत्ति जीवन की चरम त्रासदी में भूख के मोर्चे की विरुद्ध अपनाई जाती हैं। १० प्रतिशत वेश्यावृत्ति धोखाधड़ी से उपजाती है, यह धोखाधड़ी प्रेम के झूठे वादे, नौकरी का प्रलोभन, शहरी चकाचौंध से लेकर एक उच्च और सम्मानित जीवन के सब्जबाग दिखाने तक होती है।'

उपन्यास की कथावस्तु के लिए लेखिका ने देश के चार महानगरों में से एक महानगर पश्चिम बंगाल की राजधानी का शहर, नेताजी सुभाष चंद्र बोस, रवीन्द्र नाथ टैगोर,स्वामी

विवेकानंद आदि महामानवों की कर्मभूमि का शहर कलकत्ता को चुना है। जिस महानगर के कुछ विशेष और चर्चित स्थान है जहां यह वेश्या व्यवसाय खुलेआम चलता है, जिसमें सोनागाछी, बहुबाजार, कालीघाट ,बैरकपुर, खिदिरपुर आदि है।

मधु जी कहती हैं-'पिछली सदी ने कई क्रांतियां देखी। आम आदमी को इंसान की गरिमा देने के लिए रूस, क्यूबा और वियतनाम और वर्तमान में क्रांतियां हुई, पर इन लालबत्ती इलाकों का अंधेरा घना ही होता जा रहा है क्योंकि इन्हें आम आदमी समझा ही नहीं जाता है।महिला संगठन इन्हें उत्पाद बनाने पर तुले हैं। सरकारी खाते में ये भिखारियों के समकक्ष हैं, इनकी आय पर कोई आयकर लगाया नहीं जाता क्योंकि यह अनैतिक ढंग से कमाया जाता है। वोट देने का अधिकार होने पर भी यह वोट नहीं दे पाती क्योंकि सरकारी कर्मचारी इन गंदगी एवं बदनाम गलियों में जाकर इनके नामों को सूची में डालने की जहमत नहीं उठाते और सबसे बढ़कर भद्र समाज इन्हें बुरी औरत एवं कुलटा के रूप में देखता है। पर यह सोचने की बात है कि अधिकांश वेश्याएं बारह-तेरह वर्ष की उम्र में ही इन गलियों में धकेल दी जाती हैं, कुछ यही आंखें खोलती हैं। प्यार और संरक्षण से वंचित, अपने स्व और गहराइयों से दूर, ऐसी अर्धविकसित और अशिक्षित महिलाएं, हर रात जिनकी देह का ही नहीं आत्मा का चीरहरण होता हो, ऐसी महिलाएं जीवन आस्था के आलोक बिंदु कहां से पाए जो स्त्री को स्त्री बनाते हैं?'

उपन्यास के शुरू में ही लेखिका वेश्याओं की तुलना उन वस्तुओं से करती है, जो वस्तुएं बेचने के लिए दुकानदार उनको सजा- संवारकर या अच्छी पैकिंग में रखता है ताकि ग्राहक उस वस्तु की ओर जल्दी आकर्षित हो। वैसे ही जड़, निर्जीव वस्तु की तरह इन वेश्याओं को अपने आपको बेचने के लिए सज-संवरकर ग्राहकों का इंतजार करना पड़ता है और इनमें पंद्रह वर्ष की लड़कियों से लेकर चालीस वर्ष की औरतें होती है।लेखिका के शब्दों में अगर कहा जाए तो,- 'लिपि पुती देह। आंखों में भविष्यहीनता। चेहरे पर सस्ता और भड़कीला मेकअप। रंगे होंठ। सस्ती चमक के आभूषण। चटक और सस्ती किस्म की पोशाकें। प्लास्टिक की चप्पलें। कहीं चमडें की भी। प्रतीक्षा के लाखों कल्प। अठारह से लेकर चालीस-बयालीस की उम्र की लगभग सभी वारांगनाएं। तरह-तरह की- बंगाली, नेपाली और आगरावाली।'

उपन्यास में मीना नामक औरत जिसने आठ साल से वेश्या व्यवसाय छोड़ा है, अब वह अपने चकलें पर पांच-छह वेश्याओं को रखकर अधिया सिस्टम से उनसे वेश्या व्यवसाय करवाती है। जिससे आयी हुई आय उस वेश्या को पचास प्रतिशत और उनकी मैडम जो उनके लिए रहने का, खाने का और ग्राहक का इंतजाम करती है उसे पचास प्रतिशत दी जाती है। इसी मीना के चकले पर रमा, कृष्णा, नूरी, जूली और चंपा वेश्या व्यवसाय करती है। लेकिन हर एक वेश्या का वेश्या व्यवसाय की ओर उन्मुख होने का कारण अलग-अलग है। यहां तक कि मीना जो चकले की मालकिन है वह भी धोखाधड़ी का शिकार होने के कारण इस नरक में आई है।

इन वेश्याओं में नूरी नामक वेश्या अपने वेश्या होने का कारण पत्रकार सुकीर्ति को बताती है ।वह कहती हैं - 'मां-बाप कृषक, मजदूर घर में उससे छोटे दो भाई, दो बहने। किसी तरह रो-पीटकर गुजारा चल रहा था कि पिछली बाढ़ तबाही ले आई।बर्तन भाड़े सब कुछ बिके।' ऐसी विकट अवस्था के कारण नूरी को इस व्यवसाय में आना पड़ा। वह इन लोगों को भूखें मरता नहीं देख सकती वह कहती है- 'किसे देखें ?भूख की कगार पर खड़े, उम्मीद लगाएं मां-बाप को, छोटे भाई-बहनों को, कि अपनी इज्जत को?' इससे जाहिर है कि आम औरत को इस नरक में धकेलने के लिए गरीबी ही प्रमुख कारण है।

चकले की मालकिन मीना की कहानी भी कुछ ऐसी विलक्षण है, जो कि बंगाल के एक गांव में अपनी चार छोटी बहनें और तीन छोटे भाई, मां तथा शराबी बाप के साथ रहती है। वह घर में सबसे बड़ी होने के कारण ग्यारह साल की उम्र में ही उसे तीन-तीन घरों में बर्तन मांजना और कपड़े धोने का काम करके भी समय पर खाना नहीं मिलता था। इतना होने पर भी वह जीवन संग्राम हारी नहीं थी कि अचानक उसे उसके बाप का एक दोस्त काम दिलवाने के लिए कलकत्ता लाया। यहां लाने के बाद उस राक्षस ने मीना पर शारीरिक अत्याचार करके उसे इस नरक में धकेल दिया।

तीसरी वेश्या नलिनी अपनी वेश्यावृत्ति का कारण बताते हुए कहती हैं- 'मेरे मां-बाप दोनों खेती में काम करते थे। छह भाई-बहन हैं हम। आज भी देख सकती हूं अम्मा को रोटियां गिनते हुए और हिसाब लगाते हुए। सारा दिन अम्मा का यही सोचते-सोचते बीतता था कि शाम किस प्रकार गुजरेगी, सूखी या भूखी।' इसके अलावा नलिनी अपने गांव के प्रेमी के साथ शहर भाग कर आई थी। यहां आने के बाद उस हैवान प्रेमी ने उसका शारीरिक शोषण किया और इसे एक चकले वाली को बेच दिया।

ऐसे कई कारण है जो एक सामान्य स्त्री को वेश्या बनने के लिए मजबूर करते हैं। उपन्यास में लेखिका ने वेश्याओं के वेश्या बनने के कई कारणों के अलावा और भी कई समस्याओं पर प्रकाश डाला है। जिसमें उनकी निरक्षरता के परिणाम, स्वास्थ्य संबंधी ज्ञान का अभाव, उनके रहने के स्थानों में निहित गंदगी तथा उनके बच्चों का प्रश्न।

शिक्षा का अभाव होने के कारण तथा पुरुष की आसुरी प्रवृत्ति के कारण इन वेश्याओं को कई सारे गुप्त रोगों का शिकार होना पड़ता है। उपन्यास में तुलसी नामक तेरह वर्ष की नेपाली वेश्या के बारे में लेखिका कहती है- 'महज तेरह वर्ष की अवस्था में ही उसका शरीर घिनौना हो चुका था। वह नेपाल से भगाई जाकर यहां के चकले में बेंच दी गई थी।'

जब कोई लड़की एक बार उस व्यवसाय में धकेल दी जाती है, तो फिर वह यहीं की हो जाती है। अगर उसके मां-बाप को पता भी चल गया तो भी वे उसे समाज के डर से अपने घर नहीं ले जाते हैं। इंद्राणी दी कहती हैं- 'मां-बाप वेश्या बन चुकी अपनी लड़की को वापस नहीं ले जाते है कि,यदि ऐसा किया तो उनके बच्चों का भविष्य, शादी-ब्याह दांव पर लग जाएगा। लोगों के कटाक्ष, ताने, जीना हराम कर देंगे।'

नारी-विमर्श पर आधारित 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास में भी मधु ने नारी अस्मिता की खोज की है।साध्वियों की जीवन स्थिति एवं उनके अंतर्बाह्य संघर्ष को मार्मिक शब्द देने वाले इस उपन्यास में जहां सामाजिक-आर्थिक विषमता को विस्तार दिया गया है, वहीं अन्याय और शोषण की अभिव्यक्ति को नई भावभूमि भी।

उपन्यास के मुख्य पात्र संघमित्रा ,छुटकी और उनकी मां है। यहां परिवार के मुखिया और भाई ऋषि दोनों की मौत के कारण अकेली मां पर अपने दोनों बेटियों की जिम्मेदारी आन पड़ी है। घर में कोई भी पुरुष नहीं जो परिवार संभाल सके। ऐसे में मां अपनी दोनों बेटियों के साथ खुद भी साध्वी बन जाने को तत्पर दिखाई देती है। ताकि उनकी जिम्मेदारी से सम्मानपूर्वक मुक्ति मिल जाए।असुरक्षा बोध के कारण अम्मा कहती हैं-' यह आदमियों की दुनिया है, जो रोटी तो देगी पर बोटी नोंच लेगी।'

बी.कॉम. पढ़ी संघमित्रा साध्वी जीवन और दीक्षा के खिलाफ हैं।अपनी पांच वर्षीय बहन छुटकी को भी वह इस दीक्षा से बचाना चाहती है। संघमित्रा की अनेक कोशिशों के बावजूद मां का पलड़ा भारी पड़ जाता है।आक्रोश, हताशा, अपनी असफलता, छुटकी की भविष्यहीनता, मां की मातृत्वहीनता इन सबके बीच संघमित्रा असफल हो जाती है। वह अपनी अम्मा से कहती है- ' तुमने तो धर्म को, लोमड़ी की तरह चालाक बना दिया है।जीवन मुश्किल लगे तो धर्म का लबादा डाल लो। सोचो मां, तुम्हारा डर और असुरक्षा बोध इस कारण है कि घर में कोई पुरुष नहीं।तुम्हें लगता है कि तुम अपने बूते हमारे लिए पति का जुगाड़ नहीं कर पाओगी तो इन्हें धर्मरूपी पति के हवाले कर दो। पर हमें न पति चाहिए न घर।हमें बस थोड़ा-सा भरोसा दो जिससे हमारे पंखों को मजबूती मिल जाए,फिर हम अपना आसमान खुद ढूंढ लेंगे। औरत होने के डर से तुम खुद भी मुक्त हो जाओं और हमें भी मुक्त कर दो।'वह अपनी सखी मालविका की सहायता से इस सफेद दुनिया की काली शक्तियों से लड़ती है ।आखिर दीक्षा का दिन आता है। दुल्हन की तरह सजी-धजी छुटकी को अपार जनसमूह के सामने साध्वी घोषित कर दिया जाता है। उसका नया नामकरण साध्वी दिव्यप्रभा के रूप में होता है। और फिर दुल्हन छुटकी का जोगिन रूप में रूपांतर किया जाता है। मुंह पर सफेद पट्टी,नंगे पैर,केश-कुंचन इन सारी प्रक्रियाओं से गुजरते हुए छुटकी सब सहती है । छुटकी के साथ ही उसकी मां पूर्णिमा देवी का भी दीक्षांत नामकरण होता है साध्वी मणिप्रभा जी।

पिता, भाई की मृत्यु, अम्मा, छुटकी की दीक्षा के उपरांत संघमित्रा अकेलेपन से ग्रस्त हो जाती हैं। जीवन को नए सिरे से जीने की कोशिश में समाज में उसे कुछ ऐसे अनुभव मिलते हैं, जिससे औरत की हालत पर झल्ला उठती है। संघमित्रा को भी शोषण का सामना करना पड़ता है, लेकिन अन्याय का हमेशा विरोध करती संघमित्रा कभी खुद को शोषण का शिकार नहीं होने देती। नौकरी के तलाश में फिरती संघमित्रा को अनेक बुरे अनुभवों का सामना करना पड़ता है। एक ऑफिस में मालिक ने उसके हाथ अपने हाथों में लेकर दबाते हुए कहा था 'आपकी नौकरी पक्की परऽऽऽ यह बताइए कि प्रोग्रामिंग के अलावा आप क्या कर सकती हैं?' कामुक निगाहों से घूरने वाला ऑफिसर उसे सबक सिखाने के लिए वह अपने सम्मान, स्वाभिमान और व्यक्तित्व की लड़ाई लड़ती हैं। पूरे उपन्यास में संघमित्रा अपने साथ-साथ स्त्री का व्यक्तित्व, स्वातंत्र्य चेतना स्वाभिमान की लड़ाई लड़ती नजर आती है। वह 'नारी शक्ति संघ' की स्थापना कर इसे एक विशाल संस्था बनाती है। इधर साध्वी दिव्यप्रभा की दीक्षा को पांच साल गुजर जाते है।और साध्वी जीवन के खुरदुरेपन का अहसास उसे होने लगता है। संसार के प्रति

आकर्षण बढ़ता जाता है।और तब वह अपनी जीजी की बातों को समझती है।'रोना इस दुनिया में निषिद्ध है। साध्वी रो नहीं सकती। जिसे दुनिया के दुख छू ले,विचलित कर दे, जो रो पड़े, वह भला कैसी साध्वी?' अपनी बहती जिंदगी के साथ अंतरराष्ट्रीय धार्मिक सम्मेलन में दिव्य प्रभा को भेजा जाता है,जहां उसकी मुलाकात विजयेंद्र मुनि से होती है। दोनों का एक-दूसरे के प्रति बढ़ता आकर्षण पलायन में परिवर्तित होता है। विजयेन्द्र मुनि कहते हैं-'तुमने सिर्फ मुझे अपने अस्तित्व का नया और गहरा अर्थ महसूस कराया है।आज जान सका हूं कि बिना स्त्री को जाने जीवन को संपूर्णता में नहीं जाना जा सकता है।' विजयेंद्र मुनि पलायन के लिए अपने गुरु भाई अभय मुनि की सहायता लेते हैं ।परंतु इसी अभय मुनि के द्वारा साध्वी दिव्यप्रभा पर अत्याचार (बलात्कार) होता है। 'धुत्त नशेबाज की तरह अदम्य आवेग और उतावलेपन के साथ एक ही झटके में अभय मुनि ने आंचल को उसकी देह से अलग कर उसे अपने जबड़े में जकड़ लिया।'गर्भ में बढ़ता भ्रूण और आत्मा में बढ़ता अंधकार साध्वी दिव्यप्रभा को बैचेन करता है । संसार की सबसे पापी औरत घोषित कर उसे संघ से निकाल दिया जाता है। आश्रम से निष्कासित होने के बाद अपने बढ़ते गर्भ के साथ वेश्यावृत्ति का सहारा लेती है। अठारह वर्ष तक अपनी बेटी का पालन करने के लिए घिनौनी बस्ती में देह व्यापार करने से उसे अनेक बीमारियां जकड़ लेती हैं।अठारह वर्षों बाद दोनों बहनों का मिलन होता है छुटकी की पुत्री ऋषिकन्या द्वारा। नारी शक्ति संघ को राष्ट्रीय संघ बनाने वाली, पूरी स्त्री जात की मदद करने वाली संघमित्रा अपनी बहन की हालत देख दुःखी होती है। अनेक बीमारियों से ग्रस्त दिव्यप्रभा की मृत्यु अटल होती है। उसके मृत्यु के बाद संघमित्रा अभय मुनि को अपने तरीके से दंडित करती नजर आती है।लेकिन उसे इस बात से संतोष होता है कि उसने समाज के और धर्म के ठेकेदारों का सच दुनिया के सामने रखा।

'यह आपकी दुनिया खद्दर के नीचे मुलायम सिल्क को पहनने वालों की दुनिया है ।यह सेज पर संस्कृत बोलने वालों की दुनिया है।' इन शब्दों में संघमित्रा इस दुनिया का सच व्यक्त करती नजर आती है।

निष्कर्षतः आज की आधुनिक स्त्री में अपने व्यक्तित्व की स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने का दृढ़निश्चय हैं। उसकी अभिव्यक्ति मधु कांकरिया के उपन्यासों में मिलती है। उनके अनुसार अगर स्त्री अपना व्यक्ति स्वातंत्र्य पा लेती है, तो वह स्वयं को सार्थक अनुभव कराती है। आज की स्त्री अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित करना चाहती है। मधु जी के उपन्यास स्त्री मुक्ति और शोषण की लंबी दास्तान है। उनके उपन्यास के अनेक स्त्री पात्र जीवन की लड़ाई में हारते हुए,तो कभी उस लड़ाई को अपने तरीके से लड़ते हुए विजय प्राप्त करते नजर आते हैं। इससे यह साबित होता है कि उनके उपन्यासों में शोषण के साथ-साथ स्त्री संघर्ष की भी अभिव्यक्ति हुई है। मधुर जी के उपन्यासों में स्त्री संघर्ष दो रुप से दृष्टिगोचर होता है, एक जीवन के संघर्ष में अपनी पहचान बनाकर कर खुदका वजूद स्थापित करना और दूसरा रूप है,खोखली अंधश्रद्धा के चलते मरकर अमर होने की चाह में किया गया संघर्ष।

संदर्भ सूची-

१)कांकरिया,मधु-सेज पर संस्कृत (२०१०),राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या -५१

२) उपरोक्त, पृष्ठ संख्या-१२०

३) उपरोक्त, पृष्ठ संख्या -१५०

४)उपरोक्त,पृष्ठ संख्या-१६९

५)उपरोक्त, पृष्ठ संख्या-१८४

६)) कांकरिया,मधु - सलाम आखिरी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली ,(२००२) , भूमिका से

७) उपरोक्त, भूमिका से

८) उपरोक्त, पृष्ठ संख्या -१४

९)) डॉ कावले, सुनीता -कथाकार मधु कांकरिया, रोली प्रकाशन, कानपुर, (२०११),पृष्ठ संख्या -१९१

१०) उपरोक्त, पृष्ठ संख्या -१९३

११) डॉ परब, रंजीता-स्त्री विमर्शः मधु कांकरिया का कथा साहित्य, विद्या प्रकाशन,कानपुर,(२०१८), पृष्ठ संख्या -१३१

Address -

Hall of Residence, Women's Hostel, University OF Allahabad Lalla chungi,Bank Road,Prayagraj, Utter Pradesh,211002

छूटे पन्नों से उड़ान संभव है!

आकांक्षा

शोधार्थी

डा भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय

आत्म कथाएँ आत्माड का आख्यायन और प्रति आख्या न होती हैं। बचपन से लेकर जब तक लिखी गई हैं तब तक के जीवन, काल, परिस्थितियों के प्रतिबिम्ब घात-प्रतिघात उसमें चित्रित होते हैं। पितृसत्तात्मंक समाज में स्त्रीक का जो रूप प्रतिरूप निर्मित किया जाता है उसमें परिवार, समाज, परिवेश तथा सामाजिक - सांस्कृंतिक परिस्थितियों का भी योग होता है। पैदा माँ बाप ने किया। परवरिश भाई -बन्धुव, समाज और परिवेश ने किया। इस परिवेश में घर परिवार, विद्यालय, महाविद्यालय या विश्वबविद्यालय, नाते - रिश्ते।, कार्यस्थाल, बाज़ार, पर्व - त्यौलहार, रीति-रिवाज सबसे गुज़रना पड़ता है। पिता, चाचा, दादा, फूफा, मामा, भाई, ससुर, जेठ, देवर, पति और पुत्र तथा दोस्तत आदि संबंधों का समाज में महत्वप होता है। किसी भी स्थिति में स्त्रीफ को इन संबंधों से होकर गुज़रना पड़ता है। आजकल तो मीडिया इन संबंधों को अलग तरह से परिभाषित करता है। स्त्री को उसके जीवन में दो ठिकाने होते हैं। एक तो उसका अपना घर परिवार, परिवेश अर्थात् पिता का घर जहाँ उसके व्येक्तित्वा की नींव पड़ती है। दूसरा - ससुराल, जहाँ एक अलग माँ बाप अर्थात सास ससुर, ननद ननदोई, जेठ जेठानी, देवर देवरानी और उनसे जुड़ा समाज और परिवेश मिलता है। मुख्यगतः इन दोनों जगहों परिवारों, समाजों और संबंधों में स्त्री की छवि गढ़ी जाती है। मित्र यार दोस्तह चाहे जहाँ भी हों उनकी भूमिका तो होती ही है।

अनीता भारती की आत्मकथा 'छूटे पन्नों से उड़ान' जब से प्रकाश में आई है ख़ूब धूम मचाई है। उनका मानना है कि संवेदनात्मीक ज्ञान अर्थात् बचपन का जीवन जहाँ अवधारणात्म क ज्ञान प्राप्तह होता है या ज्ञानात्मनक संवेदना जन्मो लेती है, उसकी प्रमुख भूमिका होती है। बचपन में जो सीख मिल गई वह आजीवन भुलाए नहीं भूलती। जीवन में जो संघर्ष करना पड़ता है या जिन संबंधों से अपना समाज और परिवेश बनता है वह भुलाए नहीं भूलता। आजीवन वह स्मृतियाँ नहीं भूलती। लेखिका के शब्दों मे मैंने अपने कई साल स्कूजल से घर आने के बाद एकदम निपट अकेले काटे हैं, और इन निपट अकेले दिनों में कई बार मेरे साथ दुर्व्यलवहार होते - होते बचा'। 'रक्षक ही भक्षक बन जाता है'। यह कहावत हमने कई बार सुनी है, सुनी ही नहीं बल्कि देखी भी है। यह कहावत बनी होगी उनके लिए जो ताकतवर हैं, जो किसी कमज़ोर की जान बचा सकते हैं, उसकी रक्षा कर सकते हैं। किन्तुउ यह उस मर्तस्यह न्याषय की तरह लगता है कि 'बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है'। या फिर जो मज़बूत हैं उनका अधिकार है कमज़ोरों का शोषण, उत्पीड़न और दमन करना। यह सर्वत्र समाज में फैला हुआ है। कोई भी जाति - धर्म हो सर्वत्र जगह यही प्रचलन में है। कविता में भी कहा गया है, - शायद अज्ञेय ने कहा है -

'दुःख सबको माजता है

जिसको वह माजता है
उसको यह सीख देता है कि
किसी को दुःख न दे'।

परन्तुो अपने ही घर - परिवार - समाज में जब यह अपनों के ही द्वारा होता है, छला जाता है तो बहुत दुःख होता है। लेखिका के शब्दों में 'सबसे बड़ा भाई मनोहर किसी फैक्ट्री में काम पर जाता था। बड़ी बहन तिलक सुबह खाना पकाकर सोशल वर्क करने चली जाती थी। एक भाई अशोक हॉस्टैल में रहता था और मुझसे बड़ी बहन पुष्पाी इवनिंग कॉलेज में पढ़ती थी। तब घर पर हम तीनों भाई - बहन रह जाते थे। एक - बार हमारे उस चचेरे भाई को न जाने क्याइ शरारत सूझी कि उसने मेरे छोटे भाई संजय जो कि उस समय दस - ग्योरह साल का होगा, उसके कान पर चपत लगा दी। जब संजय ने गुस्सेर में कहा कि मुझे क्यों मारा तो उसने यह कहते हुए बोला कि क्यों बे मुझे जवाब देता है? यह कहते हुए मेरे दोनों छोटे भाइयों के हाथ - पैर सुतली से ऐसे जकड़कर बाँधे कि दोनों भाई उस सुतली को लाख कोशिश करने पर भी खोल न पाए और दो - ढाई घंटे सुतली से बँधे - बँधे ज़मीन पर पड़े रोते -चिल्ला ते रहे। फैक्ट्रीश के सारे कारीगर उनके रोने -चिल्ला ने का मज़ा ले रहे थे। उन्हेंध छेड़ - छेड़कर सता रहे थे। मैं उसके पास सहमी खड़ी थी। उन दिनों हमारे घर पर उस चचेरे भाई का राज था। उस दिन मुझे अपने अनाथ होने का पहली बार एहसास हुआ'।

यह बचपन की वह घटना है जिसका लेखिका के मन - मस्तिष्कन पर ऐसा आघात लगा है कि वह भूल नहीं सकती। इसमें अगर उत्पी ड़क की पहचान करें तो वह उनका चचेरा भाई है। आज के समय में कहाँ - कौन सुरक्षित है? उसका यह धर्म होता, बड़प्प्न दिखाता कि वह उन लोगों की रक्षा अथवा देखभाल करता, किन्तुस वही सितम ढा रहा है। गैरों से वह उनकी हिफाज़त कैसे करता? कल्प?ना कीजिए कि इस देश में अनाथ बच्चोंअ का कितना शोषण होता है। आए दिन बाल कल्याहण आश्रमों से उनके शोषण, दमन और उत्पीकड़न की ख़बरें मीडिया, सोशल मीडिया पर घूमती रहती हैं। यह सर्वविदित है बाल अनुरक्षण गृहों में पलने वाले नन्हें - मुन्हें॰ बच्चोंथ को चौक - चौराहों पर भिक्षावृत्ति? में लगा दिया जाता है। बालिका सुधार गृहों से उनके दैहिक शोषण की ख़बरें आती रहती हैं। जो शक्तिशाली है वह सब कुछ कर सकता है, जिसमें कानून भी उसी की सुरक्षा करते दिखाई पड़ते हैं। लेखिका कहती हैं कि 'अगर हमारी माँ ठीक होतीं और घर में होतीं तो क्याक हमारा चचेरा भाई हम पर इस तरह से अत्यौचार कर सकता था। आज जब मैं सोचने लायक हुई हूँ तो लगता है ये कैसी विकृत मानसिकता है जो कमज़ोर , असहाय को और अपने से नीचे की स्थिति के लोगों को सताकर खुश होते हैं। इस विकृत मानसिकता के बीज दलितों में भी गहन रूप से पैठ बना चुके हैं। उत्पींडि़?त भी मौका मिलते ही उत्पीाड़क में बदल जाता है। शक्तिशाली होने पर हम सबसे पहले अपने से कमज़ोर को दबाना नहीं भूलते'।

लेखिका ने इसके माध्यकम से बड़ा सवाल खड़ा कर दिया है। इन अवारा, अनाथ बच्चों॰ की सुरक्षा कौन करेगा? उनके भविष्यक की चिंता कौन करेगा? वह राष्ट्र॰ निर्माण और विकास में अपना योगदान कैसे दे पाएँगे? उन्हीं कैसे एहसास होगा कि वह आज़ाद देश के नागरिक हैं? अगर वह पशुवत जीवन जीयेंगे तो सभ्यि और सुसंस्कृोत राष्ट्रए और समाज का अंग कैसे बन पाएँगे? यह शुचिता तो समाज से जन्मव लेनी चाहिए कि कोई मज़बूत किसी कमज़ोर को शोषण का शिकार न बनाए। उन्हें सुशिक्षित और सुसंस्कृनत करने का वीणा आखिर किसी न किसी ने तो उठाना ही चाहिए। अन्याथा भारत का भविष्ये क्याश और कैसा होगा? अनुमान लगाया जा सकता है। इस विकृत मानसि?कता के बीज दलितों में भी गहरे रूप से पैठ कर गया है' यह चिंता की बात है। जिन्हेंि दुनिया के समक्ष हर तरह के शोषण, दमन और उत्पीगड़न के खिलाफ आवाज़ उठानी है, एकजुट होकर खड़ा होना है, संघर्ष करना है वही अगर इस विकृति का शिकार हो गये तो सारे विमर्श और आंदोलन घुटने टेक देंगे। बहुत दुर्भाग्यो की बात है कि जो दलित समाज ब्राह्मणरवादी, मनुवादी विचारों से लड़ना चाहता है। दुनिया के सामने सीना ठोककर कहता है कि हम दलितों की इस स्थिति का असली जि़?म्मेमदार ब्राहमणवाद है। शोषण, दमन, उत्पीड़न करने वाली यह ब्राहमणवादी व्यृवस्थाड हमारे लोगों की दुर्दशा की जि़?म्मेरदार है। किन्तु, दलितों का शोषण दलित क्यों कर रहा है? जो शोषण दमन उत्पीाड़न से लड़ने - संघर्ष करने का दावा कर रहे हैं वही मौका पाकर अपने लोगों का शोषण, दमन, उत्पीहड़न कर रहे हैं। ऐसा करके वे अपने संगठन को कमज़ोर कर रहे हैं, अपनी लड़ाई कमज़ोर कर रहे हैं और आपस में फूट डाल रहे हैं।

लेखिका के बचपन में एक ऐसी घटना घटी जिसे वह भूलकर भी नहीं भूल पाती हैं। उनकी बड़ी बहन की एक सहेली थी सरोज। उसके पिता दीवान अंकल थे। वे अंबेडकरवादी और बुद्धि?स्ट विचारों को जन - जन तक फैलाने वाले थे। उन्हों ने एक दिन लेखिका की माँ से कहा कि मैं इसे बुद्ध भगवान के गाने सिखाऊँगा'। माँ को लगा कि दीवान अंकल उसे बहुत प्या र करते हैं। दूसरे वे अपने समाज के हैं, इसलिए वे उन पर भरोसा करती थी। 'दीवान अंकल मुझे अपनी गोद में बैठकर गाना सिखाते थे, जिनमें एक गाना था- 'मैं हूँ भीमराव की चेली, मैंने बुद्ध शरण है ले ली, चली आई मैं अकेली बुद्ध विहार में। यह गाना सिखाते - सिखाते वे मेरा हाथ अपनी पैंट की तरफ ले जाते, मुझे गाना गाते - गाते अजीब सा महसूस होने लगता । ऐसी हरकत उन्होंवने मेरे साथ एक बार नहीं तीन - चार बार की'। समाज इन अंबेडकरवादियों और बुद्धिस्टोंग से क्यो सीखेगा और क्या प्रेरणा लेगा। जिनकी मानसिकता ही विकृत है। कोई उन पर फिर कैसे भरोसा करे? बेशक ये अपवाद हो किंतु समाज में इस नकारात्मऔक प्रवृ?त्ति? का प्रसार बहुत तेज़ होता है। यही कारण है कि जिस गति से अंबेडकरवादी, बुद्धिस्?ट विचारधारा को लोग अपनाए, ऐसे लोगों के कारण ही उसमें विकृति आई और लोग इससे धीरे - धीरे अपने को अलग करने लगे। ये सही है कि कोई बिन्दु , विचार या विचारधारा ग़लत नहीं होती, उसको आगे बढ़ाने वाले ही उसे डूबा देते हैं। ऐसा इसके साथ ही नहीं अनेक विचारों और विचारधाराओं के साथ भी हुआ है। उसके वाहक ही उसको डुबा दिए। 'एक बार वे अपने पूरे परिवार के साथ बैठकर रात में खाना खा रहे थे। सामने उनके तीनों बच्चेक और पत्नी बैठी थी। उन्होंनने मुझे अपनी गोद में बैठाया हुआ था। सबके सामने वे चुपचाप अपने एक हाथ से पकड़ मेरा हाथ अपनी पैंट के बीच में ले गए। उनका दूसरा हाथ मेरे कंधे पर था। उसी हाथ से वे बार - बार आग्रह करते - खाओ बेटा रुक क्यूँ गई, पर मुझसे खाना खाते नहीं बन रहा था'। ज़रा सोचिए ये अंबेडकरवादी और बुद्धि?स्ट बनते हैं, ये खुद ही शातिर दरिन्देह हैं। एक तरफ बेटी बोलना दूसरी तरफ उसी बेटी से यह व्यीवहार करना उनकी कथनी - करनी के अंतर को स्पहष्टह करता है। उनका ही आचरण और व्यावहार इतना गंदा है तो कोई उन पर विश्वोस कैसे करेगा? ये समाज परिवर्तन करेंगे, समाज को जगाएँगे और आंदोलन करेंगे? ये दुनिया में चीख - चीखकर कहते हैं कि ये मनुवादी, ब्राह्मण वादी शक्तियों ने दलितों का शोषण, दमन और उत्पीड़न बहुत किया है। स्त्रियों का भी अपमान और शोषण किया है। खुद ९ - १० साल की बच्चीष से यह व्यऔवहार उनकी खुद की शोषण, दमन और उत्पी?ड़न की विकृत मानसिकता को दर्शाता है। कथनी - करनी के इस अंतर ने पूरे दलित विमर्श और दलित आंदोलन को खोखला कर दिया है।

अपनी माँ को याद करते हुए लेखिका ने लिखा है - 'उन दिनों भी माँ बहुत बीमार रहती थी और वे पड़ोसियों को खूब गाली देती थी पर अपने बच्चों की सुरक्षा के लिए फिर भी तत्पमर रहती थी। अगले दिन दीवान फिर घर आया और मुझसे चलने को कहा। माँ वहीं खड़ी थी मैंने उनके सामने ही कहा - माँ इनके साथ नहीं जाऊँगी, माँ ने हैरानी से पूछा क्योंथ? तो मैंने बस यही कहा कि ये मुझसे अपनी पैंट पर हाथ लगवा लेते थे। इतना सुनना था कि माँ ने दालान में पड़ा बड़ा - सा पत्थ र उठा लिया और ज़ोर से गुस्सेथ में बोली 'हरामज़ादे बुढ्ढ़े चला जा यहाँ से नहीं तो तेरा सिर फोड़ दूँगी। ख़बरदार अगर मेरे घर के पास भी फटका तो तेरा ख़ून पी जाऊँगी'। किस तरह दीवान कौम का कमीना और गद्दार निकला। ऐसे लोग दलित समाज में कमीनापन और दरिन्दलगी पर उतर जाते हैं और कहते हैं हम समाज बदल रहे हैं। ये समाज को दीमक की तरह चाटकर खोखला कर रहे हैं।

लेखिका ने अपने अनुभव द्वारा दलित लड़की की शिक्षा पर चिंता व्यटक्तर की है कि कैसे उन लड़कियों के जीवन में अंधकार झोकने का काम शिक्षक और शिक्षिकाएँ करती हैं? किस तरह प्राथमिक स्तसर पर ही शिक्षक / शिक्षिका के जातिवादी अहंकार के चलते इन दलित लड़कियों की शिक्षा पर बुरा प्रभाव पड़ता है? अपनी - बड़ी बहन पुष्पो की प्राथमिक स्तरर की क्लातस टीचर की चर्चा करती है और कहती है कि 'स्कू ल नगर निगम का था। मेरी क्लापस टीचर तो अच्छीक थी। पर मेरी बहन की क्लापस टीचर गाँधी मैडम बहुत सनकी, क्रूर और जातिवादी थी। एक बार पता नहीं किस बात पर गाँधी मैडम पुष्पाी को बहुत मारा। केवल थप्प ड़ से नहीं बल्कि उसने पुष्पाज का सिर डेस्कब पर ज़ोर से देकर मारा, जिससे उसको घर आकर तेज़ बुखार हो गया। पता नहीं कि गाँधी मैडम पुष्पात से इतना क्यों चिढ़ती थी। माँ के हस्तसक्षेप के बाद गाँधी मैडम ने पुष्पां को कभी कुछ नहीं कहा किन्तु बचपन में पुष्पात के साथ घटी इस एक क्रूर घटना ने उसका जीवन में बड़ा नुकसान किया। एक अध्यीपिका

द्वारा बिना वजह जानवरों की तरह पीटने के कारण पुष्पान के मन में अंदर हमेशा के लिए एक भय की भावना भर गई। जिसका उसके बाद के जीवन पर इतना असर पड़ा कि उस भय और भावना ने एक बीमारी का रूप ले लिया' ।

ये घटनाएँ बालमन पर कितना बुरा प्रभाव डालती हैं। इस यथार्थ अनुभव का चित्रण लेखिका ने किया है। किंतु यह घटना अकेली नहीं है दलित और हाशिए के समाज की लड़कियों की शिक्षा का स्तबर और उसका प्रतिशत तथा स्कू लों में उनका ड्रापआऊट दर किसी भी सत्ता - सरकार के लिए चिंता का विषय है। यही कारण है

कि वर्षों बाद नियम कानून बनाया गया कि अब शिक्षक / शिक्षिका बच्चों को कारपोरल पनिष्मेंरट नहीं देंगी। हालांकि अभी भी जातिवादी अहंकार शिक्षा जगत में पूरी तरह व्याप्तिक है। स्वचतंत्रता के अमृत महोत्सिव के उत्सावधर्मी माहौल में छूआछूत और अस्पृतश्यूता अभी भी सक्रिय है। पीने का पानी तक उपलब्ध् नहीं कराया जाता है। परिणामतः किसी शिक्षक का पानी का घड़ा छू जाने पर विद्यार्थी की आँख निकाल ली जाती है, और किसी को इतना पीटा जाता है कि उसकी मृत्युक हो जाती है। मध्यि प्रदेश और राजस्थालन तथा उत्तरप्रदेश की घटनाएं उसका ताज़ा उदाहरण हैं।

दलित स्त्रीा शिक्षा के लिए एक चिंगारी ही काफी है। लेखिका कहती हैं कि 'मैं सातवीं कक्षा में ही पढ़ना छोड़ देती यदि मुझसे बड़े भाई अशोक ने मुझ पर ध्या।न न दिया होता। मुझे रोज़ घर में बैठे और स्कूषल न जाते देख उसे बड़ी चिंता हुई'। बड़े भाई की यह चिंता कितनी वाजिब थी। भाई अगर साथ नहीं दिया होता? अपनी पुरुष होने की अकड़ में रहता तो लेखिका का आत्मु विश्वा स कितना कमज़ोर पड़ता? देश - दुनिया की सभी स्त्रियों को ऐसा भाई मिले, यही कामना है। लेखिका के पैर में फुंसियाँ निकली हुई थीं जिसमें से मवाद आ रहा था। इस डर से

स्कूमल नहीं जा रही थी कि अध्याझपिका डाँटेगी या साथ वाली लड़कियाँ अपने पास नहीं बैठायेंगी। बालमन की यह सोच स्वा?भाविक है। ऐसी स्थिति में उत्साकह की कमी और उदासी भी बढ़ जाती है जब मन में यह डर बैठ जाय कि स्कूसल जाने पर 'क्लोस टीचर' डाँटेगी। लेखिका लिखती हैं - 'शायद अशोक मेरे इस डर को भाँप गया था इसलिए उसने मुझसे कहा - कोई बात नहीं चल, जल्दी तैयार हो जा। आज मैं तुझे स्कूशल छोड़कर आऊँगा और तेरी टीचर से भी बात करूँगा। वो मुझे पकड़कर स्कूंल ले गया। स्कूील में मेरी क्ला स टीचर प्रीतम कौर से मेरे स्कूकल न आने का कारण बताते हुए कहा - मैडम इसको बहुत फुंसियाँ निकली हुई हैं इसलिए ये स्कूटल नहीं आ रही थी। अब ये कल से रोज़ आयेगी। आप भी इसका ध्या न रखना। उस समय अशोक ने स्कू ल की वर्दी पहनी हुई थी मेरी टीचर इस बात से बहुत प्रभा?वित हुई कि मेरा भाई मेरी पढ़ाई के लिए कितना चिंतित है। अपने भाई की वजह से ही मैं सातवीं कक्षा पास कर पाई। यह मेरे जीवन में मेरे भाई का बहुत बड़ा योगदान है'।

जिनके पास ऐसे बड़े भाई नहीं रहे होंगे उनका क्यात हुआ होगा? वे अवश्य ही शिक्षा से वंचित हो गई होंगी या उनका मोहभंग हुआ होगा? यह हौसला, यह जज़्ैबा हर भाई में हो जो अपनी बहन के बारे में इतना सोचे तो इस समाज में आमूलचूल परिवर्तन हो सकता है। किंतु सच यह है कि यह जज़्‍बा अगर समाज में हमारे और भाइ्यों में होता तो दलित स्त्रियों की यह दुर्गति न होती। डर, भय के कारण एवं उत्सारह तथा प्रोत्सोहन के अभाव में मेरे समाज की करोड़ों बहने शिक्षा नहीं ग्रहण कर पाई। स्कूयल के शिक्षक ही इतने डरावने और जातिवादी होते थे कि बच्चियाँ स्कूरल नहीं जाना चाहती थीं। दूसरे उनके माँ - बाप का अशिक्षित होना, ग़रीब होना भी उस समाज की लड़कियों की अशिक्षा का कारण बना। उत्साचह और बड़ों का संरक्षण तथा प्रोत्साहिन का अभाव भी दलित लड़कियों की अशिक्षा का कारण बना। साथ ही उनकी सुरक्षा का कोई बंदोबस्तस नहीं था। सवर्ण समाज वैसे भी दलित बस्तियों को अपना उपनिवेश समझते हैं। सवर्ण समाज आज भी दलित समाज की स्त्रियों को अपना उपनिवेश समझता है। यही कारण है कि दलित लड़कियों से छेड़छाड़ की घटनाएँ प्रायः सुनाई पड़ती हैं। इसका जनमानस पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। ग़रीब आदमी ईमानदार और ईज़्ेज़तदार होता है। वह अपनी ईज़्‍ईज़त के लिए मर मिट जाएगा, किंतु समझौता नहीं करता । इज़्‍ ज़त के डर से लड़कियों को नहीं पढ़ा पाया। दलित स्त्रियों का ग्राफ शिक्षा के क्षेत्र में निचले स्तीर पर है तो इसका कारण यही है। धन्यईवाद तो संविधान निर्माता डा. भीमराव अंबेडकर, ज्योषतिबा राव फुले, सावित्रीबाई फुले का जिन्होंयने स्त्री शिक्षा का अलख जगाया। आज़ादी के बाद जो दो चार दलित स्त्रियाँ शिक्षित दिखती हैं तो इसका श्रेय इन्हीं महापुरुषों को जाता है। 'आज जब हम बाइसवीं

सदी में पहुँच रहें हैं तब भी दलित स्त्री की पढ़ाई - लिखाई की स्थिति बहुत सोचनीय है और बिडंबना यह भी है कि डॉ. भीमराव अंबेडकर के भरपूर प्रयासों के बावजूद अभी तक दलित आंदोलन से जुड़े अधिकांश लोग भी दलित स्त्रीह शिक्षा के लिए चिंतित नहीं दिखाई पड़ते हैं। लोगों को यह समझने की आवश्य कता है कि कभी - कभी किसी के एक छोटे से सचेत हस्तपक्षेप से किसी की दुनिया व समाज बदल जाते हैं। खासकर, यह बात उन दलित बच्चियों पर लागू होती है, जो घरों में पैदा तो होती हैं, पर नज़रअंदाज़गी का जीवन जीती हैं। इन बच्चियों का कोई महत्व नहीं समझा जाता है और वे खर पतवार की तरह घर में बढ़ रही होती हैं'।

लेखिका ने अपने बहाने दलित स्त्रियों की बात रखी कि किस तरह दलित बच्चियाँ अपने घरों में नज़रअंदाज़गी का जीवन जीती हैं और किसी सचेत हस्तकक्षेप के बिना अशिक्षित रह जाती हैं, जब घर पर उनकी उपेक्षा और अनदेखी की जाती है तो स्कूचल में उन्हें कोई क्योंन ध्याजन दे? लेखिका को अपनी अंग्रे.ज़ी की शिक्षि?का याद आती हैं। 'अंग्रेज़ी की कक्षा में जो बच्चे देखने में काले ग़रीब और दलित होते थे वे उनको फूटी आँख न भाते थे। उनको तो वे नमूना कहकर पुकारती थीं। जब भी वे इंग्लि?श का कोई पाठ पढ़ाती या फिर प्रश्नो - उत्तर सुनतीं और कोई ग़रीब दलित बच्चान उत्तर नहीं दे पाता, उससे ज़ोर से कहतीं ऐ चमारिन खड़ी हो जा। ऐसे शब्द सुनकर बच्चेत न केवल भयभीत हो जाते वरन् अपमान और लज्जात से उनकी बोलती बंद हो जाती। केवल चमारिन कह देने से ही उनका पेट नहीं भरता। वे अपने पास बुलाकर उन बच्चों को बाल पकड़ - पकड़कर खूब मारती, उनके इस पशुतापूर्ण व्यभवहार का मेरे मन पर ऐसा भयंकर असर पड़ा कि मुझे इंगलिश समझ में आनी व याद होनी बंद हो गई।' आज भी अंग्रेज़ी पढ़ाने वाले शिक्षकों के मन में यह ब्राह्मणवादी पूर्वाग्रह होता है कि अंग्रेज़ी ग़रीब, दलित और काले लोगों की भाषा नहीं है। यह तो दुनिया चलानेवालों की भाषा है। भला दलित व मेहनतकश बच्चोँ को इस भाषा की क्यो आवश्य कता? उन्हें तो आखि़?र मज़दूरी ही करनी है'।

यह कथन उसी पितृंसत्तात्महक समाज की वर्चस्वंवादी व्यहवस्था़ ओर ब्राह्मणवादी सोच का ही परिणाम है। कमोबेश आज भी कहीं - कहीं? इसका अनुपालन जारी है। आज भी वर्चस्वववादी शक्तियाँ दलित और कमज़ोर को ही अपना निशाना बना रही हैं। लेखिका के पास सिर्फ बुरे अनुभव ही नहीं हैं, कुछ अच्छे अनुभव भी हैं। प्राथमिक शिक्षिका ललिता और कृष्णात मैडम वह कभी नहीं भूल पाती हैं। 'जो बच्चोंत को प्या।र से गोद में बैठाने में भी नहीं चूकती थीं या फिर कृष्णाआ मैडम की तरह जिनकी निगाह में अमीर गरीब, काला को गोरा कैसा भी बच्चार हो वह उनके अंदर छिपी प्रतिभा को ही देखती थीं। वह आकर कैसे बच्चों का जीवन बदल देती है वह मेरे लिए आगे भी मेरे शिक्षक जीवन में प्रेरणादायक रहा'।

लेखिका की इच्छान थी कि वह जूडो में अपना कैरियर बनातीं, यदि उनका खानपान (न्यूहट्रीशन युक्तम) होता। किन्तु रक्तंचाप कम होने और स्वा,स्च्का अच्छौ न होने के कारण वह छूट गया। 'मुझे बहुत दुःख हुआ। हमारे जैसे निम्न मध्य?वर्ग के परिवार के बच्चोँ की ऐसी ही हालत होती है। मेरा आज भी विश्वौस है कि आज मेरी सेहत का ध्यानन रखने वाला कोई होता और मुझे अच्छाक खाने -पीने को मिलता तो शायद आज मैं अध्या पिका या लेखिका बनने की बजाय जूडो चैंपियन होती'। लेखिका की यह चिंता जायज़ है। यह निचला तपका खेल कूद,स्पोकर्टस (नेशनल या इंटरनेशनल) में बहुत आगे जाता यदि उसे खाने - पीने रहने,संघर्ष करने की चिंता न होती। रोटी, कपड़ा, मकान के साथ पौष्टिक भोजन मिलता। आज भी जो खेल आदिवासी और निचले समाज से जुड़े पदक जीत के ला रहे हैं। यदि दलित समाज के बच्चों को भरपेट भोजन नसीब हुआ होता तो ये पता नहीं कितने पदक जीतकर देश का सिर ऊँचा करते। वैसे भी देश के विकास का श्रेय इन्हीं हाशिए के लोगों को जाता है जिनके खून, पसीने से इस देश ने प्रगति की है। जब साजिशन उन्हें ठीक से शिक्षा नहीं दी गई, न ठीक से रोटी - रोज़गार मिला, न ठीक से घर द्वार रहने को मिला तब तो भारत को दुनिया के मानचित्र पर ला खड़ा किए और इतने सारे राष्ट्री य-अंतर्राष्ट्री य खेलों में पदक ला रहे हैं। इन्हें अगर अन्यि लोगों की तरह सुख - सुविधा मिली होती, इनके साथ भेद - भाव, जाति - पाति ऊंच - नीच, छूत - अछूत तथा अमीरी - ग़रीबी की खाई इतनी चौड़ी न होती तो यह समाज देश को और आगे ले जाता, इसमें कोई दो राय नहीं है।

लेखिका ने कहा है कि 'नाटकों में भाग लेने से

मेरा दब्बूपन कम हुआ और मैं सार्वजनिक रूप से कुछ - कुछ अपनी राय व्य क्तन करने लगी। इसमें संकोच नहीं कि मेरा संकोच हटाने और मुझे बोल्डज बनाने में थोड़ा मेरे भाई अशोक का भी योगदान रहा है। वह कालेज के दौरान होने वाले इंटर कालेज कंपटीशन में कालेज में आकर मुझे मंच पर बोलने के लिए प्रोत्सारहित करता था'।

यह सच है कि नाटकों की मंडलियों, जनसभाओं, गोष्ठियों, सामूहिक उत्सआवों में लड़कियों / स्त्रि्रीयों की सहभागिता से उनका आत्म विश्वासि बढ़ता है, किंतु यह अवसर सभी को नहीं मिलता। दलित समाज - परिवार के लोग प्रायः अपने घर की लड़कियों / स्त्रियों को ऐसे अवसरों पर नहीं भेजते, उससे उनको अजीब तरह की अशंका की आशंका या डर भय रहता है। प्रायः वे खुद अनुपस्थित रहते हैं। अगर वे उपस्थित हुए भी तो परिवार की लड़कियाँ / स्त्रियाँ बिल्कुाल भी नहीं। पढ़े - लिखे दलित परिवार अभी भी अपनी लड़कियों / स्त्रियों को वहाँ जाने, भाग लेने से हतोत्साहित ही करते है। अनीता भारती सौभाग्यअशाली हैं कि उन्हेंत ऐसे अवसर जीवन में मिले और उनका खुद का बड़ा भाई ही उन्हें इसके लिए प्रोत्सा हित करता था और समर्थन देता था। दलित समाज में चाहे - पढ़े - लिखे हो या नहीं, उन्हेंं अपनी स्त्रियों के प्रति प्रायः असुरक्षा की भावना रहती है। जबकि वहीं सवर्ण समाज में स्त्रियों पर कोई रोकथाम और प्रतिबंध नहीं रहता। वे अपनी लड़कियों को प्रत्ये क दिशा में चौमुखी विकास करवाते हैं। वे कोई अवसर छोड़ना ही नहीं चाहते जिससे उनके बच्चोंल के विकास में सहायक हो। दलित समाज को अपनी लड़कियों को पढ़ाने - लिखाने के साथ प्रत्येंक क्षेत्र में उन्हेंक उनकी प्रतिभा निखारने का अवसर उपलब्ध॰ कराने के लिए उन्मुक्तकी छोड़ना चाहिए कुछ नसीहतों के साथ,अपने आत्मनसम्मांन और स्वा भिमान की रक्षा के साथ। अन्याथा सार्वजनिक स्थढलों पर वह दर्शक और स्रोता बनकर ही रह जाएगीं । ज़रूरत है उन्हें नेतृत्वर करने की, आगे बढ़ने की। दब्बूजपन से काम चलने वाला नहीं है। इस दृष्टि से लेखिका अनीता भारती का व्यनक्तित्वत दलित समाज की लड़कियों के लिए प्रेरणास्रोत बन सकता है।

लेखिका आगे लिखती हैं 'मुक्ति पहला ऐसा दलित छात्र संगठन था जो शुद्ध रूप से दलित विद्याथियों के लिए काम कर रहा था। दूसरी महत्वकपूर्ण बात यह थी कि इसमें काम कर रहे सभी विद्यार्थी साथी चाहे किसी भी जाति के हों सचेत रूप से दलित विद्याथियों के लिए जुड़कर काम कर रहे थे। संगठन की विचारधारा अंबेडकरवादी थी'। यह बहुत सुखद संजोग और सुअवसर तथा अच्छीक सोच - समझ का परिणाम है। प्रायः दलित समाज के विद्यार्थी सिर्फ दलितों की समस्यासओं पर इस तरह बात करते हैं जिससे बाकी लोगों को चिढ़ लगने लगती है। क्रिया की प्रतिक्रिया बहुत संयमित और संतुलित होनी चाहिए, जिससे भविष्यक में और लोगों को जोड़ा जा सके। जितना समरसतापूर्ण माहौल रहेगा कार्य पद्धति सुसंगत होगी उतना ही दूसरों को जुड़ने और जोड़ने में मदद मिलेगी। प्रायः दूसरा कोई जुड़ना नहीं चाहता है। अगर सवर्ण समाज से लोग दलित मुद्दों के लिए साथ आते हैं, जुड़ते हैं तो अपने संगठन की ताकत समझें। महाराष्ट्रह राज्यर में दलितत मुद्दों पर गैर दलित लड़ने को तैयार हो जाते हैं। इसलिए यह मनुष्यक की गुणवत्ता अथवा संस्क्र पर निर्भर करता है कि वे अपनों से कमज़ोर की लड़ाई में साथ दें। रही बात दलित छात्रों की तो लड़कों और लड़कियों दोनों की सहभागिता बराबरी पर होनी चाहिए, बल्कि दलित लड़कियों की सहभागिता अधिक होनी चाहिए क्योंलकि उनके मुद्दों पर दूसरे क्योंि लड़ाई लड़ेंगे? और उन्हें अपनी लड़ाई लड़ने का संस्कातर और प्रशिक्षण होना ही चाहिए। आगे बढ़कर शामिल होना चाहिए। साथ ही दूसरों को भी जोड़ने का प्रयास करना चाहिए। समाज कार्य करने के लिए स्वायं को आगे आना ही चाहिए, बस संयम और सद्बुद्धि का ध्यारन रखते हुए।

लेखिका कहती हैं कि अपने समाज में ही कुछ लोग समाज कार्य को प्राथमिकता नहीं देते, 'उनकी निगाह में हम कुछ अवारा लड़के - लड़कियाँ भर ही थे। हमारे सामाजिक कामों का उनकी निगाह में कोई मतलब नहीं था। सुरेश के माता - पिता दोनों आरक्षण का सहारा लेकर नौकरी पर बने हुए थे और समाज के लिए कुछ करना ही नहीं चाहते हैं और जो युवा पीढ़ी कुछ करना भी चाहते हैं तो उसको यह अवारा कहते हैं, वाह रे बाबा साहब के अनुयायियों तुम्हेंव सौ - सौ सलाम' यह पक्ष वाकई दलित समाज का बहुत दुःखद पक्ष है कि वे आरक्षण के नाम पर सब कुछ हासिलकर लेते हैं और जब समाज के लिए कुछ करने का मौका आता है तो नाक भौं सिकोड़ते हैं । न खुद साथ आते हैं, न ही किसी को आगे आने देते हैं और न ही अपने बच्चोंा को समाज कार्य के लिए भेजते हैं। अगर समाज के कुछ बच्चे आगे बढ़कर आते भी हैं तो न तो उन्हेंत कोई आर्थि?क मदद करते हैं और न ही

अपने घरों से लड़के - लड़कियों को भेजते हैं। अगर यही होता रहा तो उनकी सामाजिक लड़ाई लड़ेगा कौन? यही कारण है कि जितने दलित आंदोलन है सब घुटने टेक रहे हैं। लोग उत्सा ह से शामिल नहीं होते और न ही उत्सारह से काम करते हैं। दूर - दूर तक नज़र दौड़ाइये तो दलित छात्रों का आंदोलन हर जगह होना चाहिए, उन्हें सामाजिक - आर्थिक और राजनीतिक समर्थन और संरक्षण अवश्यो चाहिए, जो लोग आरक्षण का लाभ लेकर पदस्थन हैं यह उनकी नैतिक जि?म्मेमदारी बनती है कि वे इस काम को अंजाम दे रहे लड़के - लड़कियों के सरंक्षक बनें और इनका मार्गदर्शन करें संभव हो तो आर्थिक मदद अवश्यह करें। अगर ये सब नहीं कर सकते तो उन सामाजिक कार्य करने वाले विद्या?थियों को अवारा न समझें। समाज की जड़ों में मठ्ठा डालने का काम न करें।

दलित समाज को आगे ले जाना है तो 'हम बढ़े - सब - बढ़े' के फार्मूले को अपनाना होगा और उसकी कीमत भी चुकानी पड़ेगी। डॉ.भीमराव अंबेडकर, मान्य वर काशीराम, ने कीमत चुकाई है और चंद्रशेखर रावण समाज को कीमत चुकाने के लिए हर वक्तब तैयार रहते हैं। दलित युवाओं को हर तरह का समर्थन और संरक्षण अवश्यक मिलना चाहिए और दलित लेखकों, रचनाकारों, प्रबुद्ध चिंतकों तथा सरकारी नौकरी में आने वालों का ज़बरदस्त? संगठन हो और सामाजिक कार्य के लिए एक 'कार्पस फंड' अवश्यथ हो, तभी दलित बच्चेद उत्सा ह के साथ आगे आएँगे और दलित लड़कियों को तो खास तौर से आगे आना ही चाहिए। ऐसा करते हुए कोई चालाकी, जातिवाद, उपजातिवाद किसी भी संकीर्णता को जगह नहीं मिलनी चा?हिए। मुक्त् मन से सभी को सभी के लिए तत्पचर रहना चाहिए। यह वह मार्शल रेस है जिसने पंत पेशवा के छक्केए छुड़ा दिए थे। इनकी कीमत अंग्रेजों ने पहचानी थी। इन्हेंद तमाम विरोध और प्रतिरोध झेलना पड़ता है कम से कम समाज का तो मुक्ते समर्थन मिलना ही चा?हिए।

दलित समाज के बच्चोंम की परवरिश वे क्याप पहनें, क्याम ओढ़े इस पर अंकुश नहीं लगाना चाहिए। परिवार के लोगों का अंकुश नहीं हो अगर कोई पास - पड़ोस सवाल उठाए तो उसे मुँहतोड़ जवाब देना चाहिए। क्यों कि उन बच्चोंं के व्योक्ति?त्वो को कुचलने की बार - बार कोशिश समाज के लोगों द्वारा ही की जाती है फिर वे अपने समाज से लड़े कि गैरों से । यह ध्याान रखना चाहिए।

लेखिका की सोच और संवेदना का धरातल देखिए- 'हमारे संगठन के सभी साथी निम्न वर्ग से संबंध रखते थे। हमारे वर्ग के अनुसार ही हमारे माता - पिता के काम थे। किसी के पिता माली थे तो किसी के दर्जी। किसी के पिता सफेदी करने वाले तो किसी के दिहाड़ी मज़दूर, रिक्शा।चालक आदि। मेरे पिताजी दर्जी थे और मेरी माँ घर में कागज़ के लिफाफे बनाने का काम करती थी । बेशक हम सबके पिता अनपढ़ रहे हों, लेकिन वे थे बहुत समझदार, सहनशील और मेहनती। हम सब साथियों को इस बात का बहुत गर्व था कि हम ऐसे मेहनती - कर्मठ और ग़रीब माँ - बाप की संतान हैं जो रात दिन हमारे लिए मेहनत करते हैं१ हमें रात - दिन ख्याठल रहता था कि हमारे माता - पिता हमें किस कदर मेहनत - मज़दूरी करके पढ़ा - लिखा रहे हैं।' हमारे माता - पिता को भी हम से बहुत आशाएँ थीं। वे जातीय ज़लालत और अपनी ग़रीबी से भरपूर लड़ते हुए हमारे सुखद भविष्य। के सपने देख रहे थे। यह उनकी मेहनत और हम सबकी लगन का ही परिणाम था कि पढ़ाई पूरी करने के २ - ३ साल अंतराल में ही हम सभी साथियों की एक - एक करके सरकारी - अर्द्धसरकारी नौकरियाँ लग गईं '।

अपनी पृष्ठ भूमि और अपने माता - पिता और उनके संघर्षों का ख्यालल रहे तो प्रत्योक व्यहक्ति सफल और कामयाब हो सकता है बशर्ते वह गंभीर हो, उसमें लगन और सफलता हासिल करने का जज्यबा हो। मुश्किल कुछ भी नहीं है अगर ठान लीजिए। सामाजिक दायित्वों की भूमिका निभाने, सामाजिक कार्य करने से स्वुयं के व्येक्तित्व का विकास भी होता है। साथ - साथ रहते, मुद्दों पर बात करते - करते व्क्ति वाक्पटु हो जाता है, सामान्यत ज्ञान तथा तर्क करने की क्षमता बढ़ जाती है जो जीवन में आगे बढ़ने में बड़ी भूमिका निभाते हैं। ये अवसर जिनको नहीं मिलते, वे ज्ञानी तो बने फिरते हैं, रट्टू ज्ञान के आधार पर व्याावहारिक और तर्कशील नहीं हो पाते हैं। इसलिए अपनी पृष्ठऽभूमि, अपना समाज, माँ - बाप और परिवार की भूमिका, परिवेश की भूमिका और अपना समय कभी नहीं भूलना चाहिए। वह हमें ताकत देता है । हम अंदर से मज़बूत होते हैं और संघर्ष से नहीं घबराते।

यहाँ लेखिका का कथन ध्याहन देने योग्य् है 'मैंने कभी अपने आप को अन्यं लड़कियों की तरह नहीं देखा ओर

नहीं अपने अंदर कभी लड़की होने के कारण किसी प्रकार का डर, शर्म और झिझक महसूस की । न ही मेरे अंदर कभी यह भावना पनपी कि मैं दूसरों से कम या अलग हूँ ।मैं सबसे खुल कर बाते करती थी फिर वे चाहे लड़के या लड़किया हों। मौका पड़ने पर अच्छी तरह से सबसे लड़ भिड़ भी लेती थी। अक्सीर हमारे संगठन के लड़के भी कहते थे कि अनीता के साथ रहकर पता नहीं चलता कि कोई लड़की हमारे साथ है।' स्त्रियों की दुनिया में जो कीर्तिमान स्थोपित करने वाली स्त्रिया हैं उन्हेंई सबसे पहले अपने आपको यह सिद्ध करना पड़ता है कि वह किसी से कम नहीं, पुरुष से तो बिल्कुपल नहीं। स्त्रीन होकर स्त्रीआ मान लेना ही एक तरह की कमज़ोरी है जिससे यह लगता है कि हम पुरुषों से कमतर हैं या उनसे मुकाबला नहीं कर सकते। इसलिए लड़का हो चाहे लड़की हो इन सब विभाजनों में हम लड़कियों को फँसना ही नहीं चाहिए। कोई भी काम कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसमें लड़कियाँ पीछे हैं । रही बात दलित समाज की स्त्रियों की तो उन्हेंक भी इसी तरह आगे बढ़ना है और लिंग भेद को नहीं स्वी कारना है। क्यों कि स्त्रीू तो पुरुष प्रधान समाज की निर्मिति है। वो जैसी छवि गढ़ते हैं उसी के अनुसार सोचते हैं किंतु हमें इन सब से ऊपर उठकर के हर मोर्चा संभालना है। लड़की होकर के भी लड़की नहीं मानना है। तभी हम जीवन की चुनौतियों का ठीक से मुकाबला कर पाएँगी। लेखिका के अनुसार 'प्रेम अपने आदर्शवादी रूप में त्यावग और बलिदान होता है, मैं इसे इसी रूप में जानती हूँ। मुझे किसी पर कीचड़ उंछालना, ज़ोर - ज़बरदस्तीव करना, मारना - पीटना पसंद नहीं है। मैं शांति पसंद इंसान हूँ। किसी के जीवन में दखल देना और हमें अपने जीवन में हस्त क्षेप पसंद नहीं है। मैं अपने तरीके से जीवन जीना पसंद करती हूँ। अगर कोई मेरी कसौटी पर खरा उतरे, मुझे कोई अच्छात लगे, पसंद आए तो फिर मैं उसके लिए केवल अपने मन की ही सुनूँगी। कोई कितना भी मुझे उस व्य क्ति के खिलाफ भढ़काए मैं उसके खिलाफ भड़कावे में नहीं आती'।

यह एक लेखिका और स्त्रीी का आत्म विश्वातस दलित समाज की स्त्रियों को इसी आत्मगविश्वा।स की ज़रूरत है। उनका पुराना रूप, छवि और मापदंड, प्रतिमान सब रूढ़ हो चुका है। इसलिए उसमें उलझने और फँसने की ज़रूरत नहीं है। दुनिया बहुत तेज़ी से बदल रही है। सूचना क्रांति के युग में हम जी रहे हें। उत्तर आधुनिकता के दौर में सब कुछ भोग और उपभोग में बदल गया है। दलित स्त्रीस को अपने प्रतिमान खुद बनाने हैं अपनी छवि खुद गढ़नी है। मूल्यर और नैतिकता का जो आवरण सदियों से लादा गया है। उसे तोड़ने में ही भलाई है। पढ़ी लिखी स्त्रीी

अपना अतीत, वर्तमान और भविष्यो गढ़ सकती है।। ध्याान रहे यह चुनौती बहुत आसान नहीं है। किंतु इन्हें अपनी बुद्धि, विवेक, कार्यक्षमता से सिद्ध करना है। अब स्त्रियों की दुनिया में ढ़ेले चुनकर शादी करने का समय नहीं है। अब तो लड़कियां स्वियं लड़के के पास जाए उससे बातचीत करें, तर्क करें और पूछे कि तेरा मूल्यश क्याय है? अपनी दुनिया उन्हेंक स्वरयं बनानी है कि उनकी दुनिया कैसी होगी इसका निणन्य उन्हें स्वूयं करना चाहिए। इसका फैसला पुरूषों तथा पुरूष प्रधान समाज के ऊपर बिल्कु ल नहीं छोड़ना चाहिए।

पुरूष प्रेम में एकाधिकार चाहता है और अपनी पत्नीज या होने वाली पत्नीह को वस्तुह में बदल देना चाहता है। वह यह चाहता है कि मेरी पत्नीत / प्रेमिका किसी अन्य? पुरूष से बात न करें, किंतु वह स्वायं अपने लिए छूट लेना चाहता है। 'इन्हींन सवालों से किसी के चरित्र का आराम से मूल्यां कन हो सकता है। यह सवाल स्त्री -पुरूष के रिश्तेग बनने वाली नींव के मूल प्रश्न? हैं'। ज़ाहिर सी बात है पुरूष अगर स्त्रीम से बात नहीं करेगा, स्त्रीय पुरूष से बात नहीं करेगी दोनों एक दूसरे को बराबर की भूमिका में नहीं देखेंगे समझेंगे तो इस रिश्तेु में खटास पैदा होना लाज़मी है। आप सारी दुनिया के लिए समय निकालते हैं किंतु, अगर अपने निजी जीवन के लिए दामपत्य जीवन के लिए समय नहीं निकालते हैं तो कहीं न कहीं कुछ गड़बड़ है। लेखिका कहती हैं 'उम्र और वैचारिकता के जिस दौर से हम गुज़र रहे थे उस दौर में एक दूसरे के प्रति आकर्षित होना उतना ही सहज होता है, जैसे रोज़ भूख लगने पर खाना खाना या नींद आने पर सो जाना । मतलब उस उम्र में अपनी हम उम्र के व्यसक्ति से दोस्तीर होना कोई बड़ी बात नहीं होती है। जब आप समाज बदलने का सपना देखते हैं और उस समाज परिवर्तन के रास्तेत में कोई अपने जैसे विचारों वाला व्यीक्ति मिल जाए तो आप अचानक एक और ग्योरह होने की शक्ति से भर उठते हैं । काम करने में मज़ा आने लगता है। एक अच्छी और स्वकस्थ? दोस्तीस कि तो की पहचान है''। दरअसल स्त्री और पुरूष के बीच के संबंधों का जो दायरा होता है वह किसी शर्त या माँग पर नहीं टिकता है। साथ काम करते - करते संबंधों की गहराई और उसका ताप सहजता से बढ़ने

लगता है और किसी लड़की का किसी लड़के से प्रेम हो जाए तो बहुत बड़ा पाप नहीं मानना चाहिए । प्रेम न सही पर दोस्तीऔ तो है । बहुत शुद्धतावाद और शुचिता तथा नियम कानूनों के दायरे में बँधकर, प्रतिबंधों में रहकर अच्छेस काम तो ही नहीं हो सकते न ही उसकी उत्पातदकता में वृद्धि हो सकती है। कुछ मामले में समाज बहुत दकियानूस होता है। कार्यक्षेत्र में काम करते - करते दोस्ती्ु तो हो जाती है किंतु उसी दोस्ति को जब जीवन साथी बनाना होता है तो पुरूष का आदर्श बदल जाता है। यह व्य त्कि्त का अंतर्विरोध ही कहा जा सकता है। लेखिका के अनुसार 'संगठन के सदस्यों के तौर पर महिला कार्यकर्ताओं से यह उम्मी द की जाती है कि वे संगठनात्म क तौर पर संगठन को बढ़ाने मज़बूत करने में बढ़चढ़कर अपनी सक्रिय भूमिका निभाएं, उसके विस्ता र के लिए सबसे बात करे। संगठन से हटकर वही भूमिका महिला साथी यदि निजी जीवन के रिश्तोंा या फिर परिवार साधने में निभाएँ तो यह सभी पुरूष साथियों को बरदाश्तू नहीं होता''। यह पुरूष समाज में बढ़ रहे असंतोष और अं?तर्विरोध का परिणाम है कि जो सामाजिक कार्य में /संगठन के कार्य में संलग्न् हैं उनसे बेहतर कार्य की अपेक्षा की जाती है, बढ़ावा दिया जाता है, किन्तुम वैसे ही लोगों में अपना जीवन साथी चुनने या परिवार का सदस्य बनाने में पुरूष समाज को असुविधा होती है, यह उनके दोहरे चरित्र का द्योतक है। यह पुरूषों की मानसिकता है कि जो स्त्रीं समाजिक कार्य, संगठन के कार्य से जुड़ी होती है, नारे लगाती है वह रफ - टफ हो तब भी संगठन के साथी कार्यकर्ता उसकी बढ़चढ़ कर प्रशंसा करते हैं पर अपना जीवन साथी बनाने के लिए सर्वाधिक लचीली, शर्मिली और स्त्रियोचित गुणों वाली महिला को ही पसंद करते हैं । यह मैंने अपने सामाजिक और सार्वजनिक जीवन में देखा और बार - बार महसूस किया है।'

लेखिका का यह कथन दलित समाज के पुरूषों के दोहरेपन को संकेति?त करता है । उनके भी आचरण- व्यिवहार में, कथनी-करनी में बहुत बड़ा अंतर है। सवर्ण पुरूषों की तरह उन्हेंं भी अपना जीवन साथी चुनने के लिए स्त्रियोंचित लज्जा वाली महिला ही पसंद है, किंतु सामाजिक संगठन और सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में काम कर रही महिला को जीवन संगिनी नहीं बनाना चा?हते। यह दोहरा चरित्र स्त्रियों को विभाजित करता है । एक तो वह स्त्रिोयां जो बाल बच्चो घर-गृहस्थीन, नौकरी-चाकरी में लगी रहती हैं दूसरी जो सामाजिक संगठन और सामाजिक कार्यों में लगी रहती हैं । उन दोनों में सामाजिक सांस्कृ,तिक स्तरर पर यह भेद बराबर देखा जा सकता है । यही कारण है कि सामाजिक कार्य में महिलाओं की भूमिका ना के बराबर है । क्यों कि वे महिलाएँ जो घर गृहस्थी। बाल-बच्चेर नौकरी-चाकरी में व्यवस्तक हैं दलित समाज में उनके पति उन्हेंर सामाजिक कार्य या सांगठनिक कार्य के लिए इजाज़त नहीं देते । इसीलिए सामाजिक आंदोलनों में दलित स्त्रियों की संख्याम नगण्य् रहती है । पुरूष चाहता तो है कि सामाजिक और सांगठनिक कार्य स्त्रि यां करें, किंतु उसकी अपनी बहन बेटी या पत्नी न हो कोई और हो । यह विचार कहीं न कहीं दलित सममाज के सामाजिक आंदोलनों और संगठनों को कमज़ोर करता है।

सामाजिक कार्य से जुड़ी औरतें काम तो करती हैं, किंतु उन्ही के बीच में से कोई न कोई ऐसा व्यसक्ति मिलता है जो अपने प्रेम जाल में उलझा लेना चाहता है और उसपर उत्तराधिकार प्राप्तन करना चाहता है । वह चाहता है कि वह स्त्री संगठन के किसी और पुरूष से बात न करे । संगठन में शामिल व्यचक्ति ही संगठन को जाने अनजाने कमज़ोर कर देता है और बैर पाल लेता है। ऐसे ही एक चरित्र का नाम महेंद्र है जिनका लेखिका ने उल्लोख किया है ये वैसा ही साथी था जो जाने अनजाने लेखिका से प्रेम कर बैठा और एकाधिकार प्राप्तख करना चाह रहा था। दूसरे की सहमति और असहमति का कोई मतलब ही नहीं समझता। वह लेखिका से बार - बार अलग मिलने, भीड़ से अलग चलने की बात करता है, किंतु लेखिका के बहुत विरोध करने या मना करने पर तुरंत नाराज़ हो जाता है और गाली गलौंज पर उतर जाता है। 'वह यह शब्दब बोलकर तेज़ी से चला गया। मुझे लगा जैसे मेरे गाल पर किसी ने झन्नोटेदार थप्पवड़ मार दिया हो। मैं स्त,ब्धु खड़ी रह गयी। मेरे कान में उसके शब्दे गूँज रहे थे। सोच रही थी कि विश्विद्यालय में पढ़ने आने वाली लड़कियाँ यदि अन्य सहपाठी लड़के के साथ मिल बैठकर बातें कर लें, चर्चा कर लें तो उन्हेंव कुत्सित उपाधि से विभूषित करने वाली ये कौन - सी मानसिकता है? मुझे उसकी संकीर्णता का कुछ - कुछ तो आभास था। पर इतनी भयंकर संकीर्णता'। यह बहुत ही निदंनीय और घटिया प्रवृत्ति है । दलित संगठनों द्वारा हो रहे सामाजिक कार्यों में इसी तरह की संकीर्णताओं से बहुत बवाल होता है और परिणाम स्वरूप संगठन कमज़ोर होता है और लगभग टूट जाता है। लोग मनमाना अपनी

तरफ से एक तरफा प्याार कर बैठते हैं दूसरे पुरूषों से मिलने, बात करने, खुलकर हँसने आदि पर प्रतिबंध लगा देते हैं और थोड़ी बहुत असहमति प्रकट कीजिए तो गाली गलौज अपमान पर उतर जाते हैं। इस घटना-परिघटना से स्त्री समाज कौन सा सबक सीखे? लेखिका का कथन है कि 'यह महेन्द्र्नहीं उसके रूप में आदिपुरूष ही खेल रहा था। अपने संगठन के साथियों से चर्चा-विमर्श करो तो कोई हर्ज नहीं है क्योंरकि उसमें हम भी शामिल है, दूसरे संगठन के लोगों से चर्चा करो तो चरित्र हीन, क्योंलकि वहाँ हमारी मर्जी नहीं । यह है छात्र संगठनों में छायी पुरुष मानसिकता । स्त्रीक अधिकारों की बात करने वाले ये विभिन्नो छात्र संगठनों के कार्यकर्ता व उनके ठेकेदार सहयोगी लड़कियों को अपनी पूँजी समझते हैं । पितृसत्ता और ब्राहमणवाद की जड़े इनके अंदर इतनी गहरी पैठ चुकी हैं कि वह चाहे नीले, पीले, लाल, हरे कोई भी रंग में रंगे हो उसमे कोई फर्क नही पड़ता' ।

कहने का आशय यह है कि स्त्री के मामले में दलित पुरूष भी पितृसत्ता और ब्राहमणवादी मानसिकता की तरह ही व्ययवहार करता है। ऐसा नही है कि उनके साथ-साथ घर गृहस्थीा घर-बाहर कार्य क्षेत्र में हर जगह दलित स्त्री छाया की तरह साथ रहती है, किन्तु घर जाने पर वह पुरूष पितृसत्ता और ब्राहाणवादी मानसिकता की तरह ही व्यावहार करता है ।अन्यक पुरूष द्वारा प्रयोग किए जा रहे अपशब्दों , शब्दा प्रयोगों पर अध्यीयन किया जाए तो दलित पुरूष की मानसिकता सवर्ण पुरूष की मानसिकता से अलग नहीं होगी। खासतौर से स्त्रि यों के संदर्भ में, इसलिए लेखिका का कथन बहुत सार्थक प्रतीत होता है वह लिखती है 'उस एक शब्द ने मेरी स्त्री चेतना को झकझोर कर रख दिया। मैं दलित होने की पीड़ा के साथ- साथ दलित स्त्री की पीड़ा को भी समझने लगी । उस एक शब्द ने मेरी विचारधारा को प्रखरता प्रदान की और मुझे लड़ने के लिए मजबूर किया' ।

संवेदना के स्तबर पर स्त्री होना और दलित स्त्री होना दोनो में बहुत अंतर है। स्त्री -विमर्श तो प्रचलन में है । चारो तरफ उसका शोर सुनाई दे रहा है पर दलित स्त्रीस विमर्श अभी विचारों के गर्भ में है । उस पर अभी खुलकर बात नहीं हो रही, किन्तुल हालात ऐसे बन रहे हैं कि दलित स्त्री आंदोलन और दलित स्त्रीख विमर्श भविष्यन में सशक्त रूप में खडे हो सकते हैं । अगर दलित स्त्रीह विमर्श खड़ा हो गया तो दलित विमर्श और दलित आंदोलन घुटने टेक देगा । शायद इसी डर से उसे दबाने की कोशिश लगातार होती रहती है । हालांकि स्त्री् आत्मशकथाओं में आए प्रामाणिक तथ्योंस के आधार पर यह स्पगष्टा होने लगा है कि दलित स्त्री आत्मशकथाओओं में चित्रित पुरूषों की भूमिका भी सामंती पितृ सतात्म क और ब्राहणवादी मानसिकता से ग्रस्त हैं ।

प्रायः समाज में अतीत की घटनाओं/उदाहरणों से सबक लेकर भविष्यक के फैसले लिए जाते हैं। दलित समाज का हर स्त्री -पुरूष डॉ भीमराव अम्बेदडकर को बेशक पढ़ता-समझता हो उनको अपना आदर्श मानता हो, किन्तुा जिस समय काल परिस्थितियों में उन्होडने अंतरजातीय विवाह किया था वह परिस्थितियाँ अब नही है। उस समय अम्बेरडकर जैसे अंतर्राष्ट्रीीय प्रबुद्ध व्यीक्ति के समकक्ष कौन सी दलित स्त्रीे होती जो उनके स्टे नो, पी.ए. केयर टेकर का काम करती, नर्स का काम करती। पत्नीी की मृत्युव-उपरांत कठिन संघषी के बीच उन्हेर अधुरे कार्य पूरे करने के लिए दूसरी शादी करनी पड़ी थी और उनका सिद्धांत था कि समाज के अंदर अंतरजातीय विवाहों से समाज मे समरसता और भाईचारा बढेगा तथाऔ साम्प्रादायकि कटुता कम होगी। इसलिए स्?वयं वह एक उदाहरण बने थे। बहुत सारे लोग फैशन की तरह अंतरजातीय विवाह किए, किन्तुर जातिगत अहंकार और जातिवादी मानसिकता उन लोगो के दिलों दिमाग से नहीं निकली और उसी को औजार बनाकर दलित स्त्रि यों को बहुत जलील अपमानित तथा लांछित किया गया। जिन-जिन लोगो ने दलित स्त्रिकियों का सवर्ण पुरूषों से विवाह कराया लगभग समाज में नसीहत यह मिली कि यह ठीक नहीं हुआ । योग्यल दलित लड़की अगर दलित परिवार में शादी करती तो वह परिवार बहुत आगे जाता और समाज के लिए रोल माडल बनता । हुआ यह कि योग्यड दलित लड़कियाँ सवणी के घर में उनकी पीढ़ी सुधारने लगी । लांछन, अपमान और घृणा सहकर अपने को सवर्ण कहलाने का सपना पालने लगी । इधर योग्य दलित पुरूष सवर्ण लड़की से शादी रचाकर सवणी का घर-परिवार, नात-हित, रिश्ते दार तो अपना लिया उन्हीय का फायदा और विकास देखता रहा, किंतु उसका फायदा दलित परिवार-समाज को नही हुआ। हालांकि इससे दलित आंदोलन, दलित विमर्श और दलित समाज को गहरा झटका लगा कि एक व्यदक्ति को योग्या बनाने के लिए पीढियाँ गल जाती हैं और वह अपनी शानो शौकत और आन-बान-

शान में सवर्ण लड़की को अपनाकर खुद को सवर्ण बनने की कोशिश करता है। इससे भी दलित समाज मे बहुत चोट पहुँची है। पढाए लिखाए कोई और, उसका फायदा ले कोई और । इस क्षेत्र में अलग-अलग तरह के अनुभव समाज ने देखे हैं। कही बेटियाँ दुखी हुई, कहीं बेटे दुखी हुए, क्योंशकि समाज के रीति रिवाज को छोडकर और अपनो को छोडकर जो बाहर गया वह बाहर रह गया। अनीता भारती ने भी सवर्ण व्यीक्ति राजीव से अन्तीजातीय विवाह किया । उनका खुद का मानना है कि जब मेरे पास यह विचार आया तो वह डर गयी थी उन्होरने खुद लिखा है - 'राजीव के माता पिता मुझे अपने बहू के रूप में बिल्कु ल बर्दाश्तो नहीं कर पा रहे थे, वह मुझे राजीव से पता चलता रहता था । वह मुझे परिस्थितियों से लड़ने के लिए तैयार करता था और हकीकत का सामना करने के लिए कहता था । पर राजीव की दोनो बहनों और उसके छोटे भाई को इस रिश्तेर से कोई आपत्ति नहीं थी । राजीव के पिता का मेरे बारे में मानना था - लड़की सुदर नही हैं । इसकी सारी डिग्रियाँ जाली होंगी । इसके भाई पढे लिखे नहीं हैं । रोज नई मुसीबतों में फसाएंगे। इसके पिता को अस्थरमा है। तुम्हा रे बच्चोंय को भी हो जाएगा और भी न जाने क्या -क्या मेरी कमियाँ राजीव को गिनवा देते थे । मैं हमेशा ही आदर्श में या सपनों मे जीने वाली रही हूँ पर राजीव के परिवार वालों के अपने और अपने परिवार के प्रति ऐसा रवैया देखकर जमीन पर धड़ाम से गिरी ।'

यही कारण है कि अंतरजातीय विवाह करने पर दलित समाज की लड़कियों को काफी अपमान और तिरस्काणर सहना पड़ता है । दलित समाज इसे अच्छाय नही मानता है, इसलिए अंतरजातीय विवाह के लिए लड़कियों को अनुमति नहीं देता । लेखिका के अनुसार 'किसी भी दलित स्त्रीक-पुरूष का समाज में अंतरजातीय विवाह करने का मतलब है हजार ताने, अपमान और जलालत सहकर अपनी गृहस्थी बसाना, पर मैं सब अपमान इसलिए पी गई, क्योंलकि राजीव हरकदम पर मेरे साथ था । दूसरा आँखो ने जो सपना पाला था समाज बदलने का, उसको पूरा करना था'। रिस्कर तभी लिया जा सकता है जब जिसके लिए रिस्क लिया वह साथ दे । यहाँ अनीता जी को उनके पति ने भरपूर साथ दिया, किन्तुत अधिकतर मामले में यह देखा गया है कि प्रेमी अपने माँ-बाप घर-परिवार के सदस्योंर के साथ हो जाता है और किसी भी अत्यातचार और अपमान का विरोध नहीं करता । वैसी स्थिती में लड़कियों को सारा भुगतना पड़ता है और वे टूट जाती हैं, उनकी जिंदगी नर्क बन जाती है ।

लेखिका का मानना है कि 'समाज से जाति को कोढ़ कलंक को समाप्ती करने का एकमात्र अचूक हथियार अंतरजातीय विवाह ही हो सकता है । जाति के बंधन सब जातियों को मिलकर तोडने होंगे । चूंकि जाति बनाने वाले उसको कायम रखने वालों में ऊँची जाति के लोगो का हाथ है । अतः उनको ही बढ़कर जाति के बंधन को काटने होंगे । मैं इसी जाति तोड़ने के अचूक हथियार अंतरजातीय विवाह के हथियार से कई बार घायल हुई और आहत भी हुई पर राजीव के दृढ़विश्वातस और प्याार ने मेरे विश्वा स को हर बार टूटने से बचाया' । यह वही विश्वा्स है जिसे सवर्ण लोगो को अपने व्य वहार से समाज को उदाहरण के रूप में प्रस्तुसत करना चाहिए । क्योंशकि जातियों को कट्टर बनाना, उसको लंबे समय तक कायम रखना उन्ही का काम है । श्रेष्ठाता बोध ही अधिकांशतः उन्हीश में हैं, इसलिए उन्हे ही बदलना है । उन्हें शादी विवाह जैसे मामले में उदार होना होगा और दूसरी सारी रूढियों को तोड़ना होगा । अगर प्रेम विवाह पारिवारिक और सामाजिक मान्यहता प्राप्तह करता है तो इससे बेहतर कुछ नहीं, किंतु जो इसे न समझ पाता है और न निभा पाता है उसके लिए यह किसी नरक से कम नही और सच यह है कि उसका दंश दलित समाज ही भुगतता है ।

लेखिका ने लिखा है कि 'ऊपरी जातियों के आपस में विवाह होते हैं, माता- पिता भी मान जाते हैं, परन्तु दलित और सवर्ण की शादी होने पर जैसे सवर्ण समाज को हजारों जहरीले बिच्छुदओं ने काट लिया हो । वे अपनी इस बिच्छूर पीड़ा को दलित परिवार से आए लड़के-लड़की को ताउम्र देते रहते हैं' । यही कारण है कि दलित समाज इसकी सजा भुगतता है । दरअसल यह समाज बहुत जलालत और जहालत झेलकर अपना आत्म्सम्माहन बचा पाया है । यही उसकी पूँजी हैं । जब-जब उसके आत्मलसम्माजन पर ठेस पहुँचती है या पहुँचाई जाती है तब-तब वह विषैले बिच्छुहओं के डंक को सहता है । सवर्ण समाज दलित समाज को अपना उपनिवेश समझता है और बार-बार डंक मारने की कोशिश हजारों साल से करता रहा है ।आज भी दस्तूोर जारी है । इस सोच और मानसिकता को बदलना होगा ।

यह रिस्क वही ले सकता है जो बहुत शिक्षित है और उसको अपने प्रेम और प्रेमी पर भरोसा है । प्रेमी भरोसे का हो, अपने परिवार से लड़ने का हौसला रखता हो और अपमान के समय लड़े और प्रेमिका/पत्नी का मनोबल टूटने से बचाए । साथ ही अपने समाज में वकालत करे कि जाति का जहर आप लोगो ने बोया है और अगर आप लोग उसे कम नहीं करेंगे तो आप का समाज ही नष्ट हो जाएगा । अभी भी समय है बदल जाओ । तभी समाज में समरसता बढेगी, भाईचारा बढ़ेगा और जातिवाद की दीवारें ढहेंगी और दलित समाज की लड़कियाँ/लडके निःसंकोच अंर्तजातीय वि?वाह को प्रश्रय देंगे ।

अनीता की शादी के बाद ससुराल की रस्मव के अनुसार बड़े-बुजुर्गी के पाँव छूना था । उनके मन में आया कि ‘मुझे नही छूने तुम्हासरे पाँव । तुम मुझे मेरी गुलामी का, मुझे जातिहीनता का बोध करना चाहते हो । हम सदियों से तुम्हाकरे पैर छूते आए हैं, कभी एक के नाम पर तो कभी दूसरे नाम पर और अब विवाह के नाम पर । भारतीय संस्कृकति, नैतिकता, मर्यादा के नाम पर केवल झुकाने का नहीं झुकने का भी नाम हैं ।’

दरअसल यह सब ब्राहमणवादी व्यतवस्थाा तथा धर्म और अध्युात्म सत्ता के वर्चस्व् का मामला हैं । इसे भारतीय संस्कृहति का नाम लेकर स्त्रियों को सदियों से गुलाम और वस्तुत बनाने-समझने की कोशिश है । और यह सब सदियों से बदस्तू?र जारी है । आज कोई असहमति व्युक्तत करता है तो उसे भारतीय संस्कृसति का विरोधी मान लिया जाता हैं । लेखिका कहती हैं - ‘मुझे हिन्दूक धर्म में व्यायप्त तथाकथित अभिन्ने, अविभाज्य और अखंडित महिमापूर्ण बखाने गए जातिवाद से सख्तै नफरत थी । धर्म में औरतों को पतियों का गुलाम बनाकर रखने में कामयाब सुहागचिहों से भी नफरत थी । अतः मैने शादी के बाद पहले ही दिन बिछुए नहीं पहने, छुई-मुई बहू बनकर नहीं रही। मैने माँग नही भरी और मंगलसूत्र कभी नही पहना । ये मेरा प्रतीकात्मीक विद्रोह था पिता के प्रति किए गए अपमान का । यह विरोध था उस धर्म के खिलाफ जिसकी नींव ऊँच-नीच की खाइयों पर टिकी है और जो गर्व से मानवता के खून को पीता है और पूरी एक कौम को पशुओं की तरह जीने को मजबूर करता है ।’ दरअसल यही कारण है कि सारे पर्व-त्यौरहार स्त्रियों के व्रत से शुरू होता है । कभी वह अपने पति के लिए व्रत करती हैं, कभी अपने पुत्र के लिए । कभी किसी के लिए, कभी किसी व्रत लिए । पुरूष स्वहतंत्र है वह करे चाहे न कर । अगर स्त्रीए नहीं करती है तो उसे भारतीय संस्क ति की दुहाई देकर असंस्कावरी बता दिया जाता है। स्वहस्थक मानसिकता के साथ अगर अंतर्जातीय विवाह किए जाते हैं जिसमें अधिकतर सवर्ण समाज आगे आए तो निश्चिैत ही सामाजिक परिदृश्य बदलेगा । जातिवाद की कट्टरता कम होगी । आपसी समरसता और भाईचारा कायम होगा । जातीय श्रेष्ठकता का दंभ दरकेगा और एक स्वीस्थम समाज का निर्माण होगा । जिस उद्देश्यर के लिए लेखिका ने अंर्तजातीय विवाह को अपनाया था बहुत हद तक उनके मामले में वह उद्देश्यऔ फल फूल रहा है । भविष्यउ में ऐसा ही हो । इस दिशा में लोग अग्रसर हों तो समाज और राष्ट्रथ के लिए बेहतर होगा ।

अवधारणात्म क समझ बचपन में ही पैदा होती है ‘मेरे अपने जीवन में लिए गए मेरे फैसले ही मेरे जीवन की पोलिटिक्सम को स्पचष्टै करते हैं। इन्हीअ फैसलों से हमारे अपने जीवन की बुनियाद तय होती है तो दूसरी ओर हमारे जैसे लोग जो समाजिक कार्यकर्त्ता का जीवन जीते हुए समाज बदलाव का कार्य करना चाहते हैं उनके फैसले अपने साथ-साथ बाकी समाज को भी कहीं न कहीं गहराई से प्रभावित और प्रेरित करते हैं ।’ मुक्तिबोध ने भी कहा था ‘पार्टनर तुम्हाकरी पोलिटिक्स् क्याा हैं ?’ अर्थात आपकी सोच क्याह हैं ? निश्चित ही लेखिका का लिया गया निणन्य शेष समाज को प्रभावित करता है और करता रहेगा, क्योंहकि उसमें व्यदक्ति, समाज और राष्ट्र हित शामिल है ।

लेखिका के अनुसार ‘अगर आप सामाजिक जीवन जीना चाहते हैं और समाज के लिए काम करना चाहते हैं तो आप के द्वारा लिए गए निणन्य आपके जीवन और विचारधारा को मजबूरी प्रदान करने का काम करेंगे। ‘हम हर बात को जीवन में एक बार ही तो होनी है, ऐसा सोचकर या कहकर हल्केक में लेते हैं । कई बार हम रिश्तोंआ के द्वारा ब्लैवकमेल हो जाते हैं । कई बार समाज के सामने हम घुटने टेक देते हैं । शायद यही कारण है कि समाज में कुरीतियाँ, कुपरंपराएँ, कुप्रथाएँ घटने की बजाय रात-दिन पैर पसार कर आगे बढ रही हैं। हम इनका विरोध नहीं कर पा रहे हैं । दान-दहेज का विरोध, साधारण,सरल तरीके से शादी, फेरे-मंगलसूत्र व कन्यामदान जैसी स्त्री को गुलाम बनाने वाली परंपराएँ टूटने

की बजाय जीवन में बस एक बार के नाम पर मजबूत होती जा रही हैं ।' दरअसल यह वही चिंता है कि पढ-लिखकर भी अगर समाज में चेतना नही ला सकते, जर्जर रूढियाँ और परंपराएँ नहीं तोड़ सकते तो उस शिक्षा-दीक्षा का क्याग मतलब ? परिवर्तन के लिए समाज में से ही किसी न किसी को आगे आना पड़ेगा । एक दूसरे के इंतजार में सदियाँ गुजर जा रही है । लेखिका ने स्व यं के दृढ निणय से खुद को समाज के लिए बड़ा उदाहरण बनीं। उन्होरने किसी का इंतजार नहीं किया । क्रांति अगर होनी है तो खुद से ही करनी होगी । जहाँ पढ़ा-लिखा लड़का खरचीली शादी का पक्षधर है और उसका तर्क ये है कि यह जीवन में एक बार ही होगा तो मैं अपने अरमान निकालूंगा । पढी- लिखी लड़कियाँ भी कीमती कपड़े-गहने और लपक-दमक को ही अपना आदर्श मानती हैं तो परिवर्तन कैसे होगा ? कुल मिलाकर वे स्त्री विरोधी परंपराओं का ही समर्थन करती हैं । बदलने को तैयार नहीं। लेखिका कहती हैं कि 'क्या इसका एकमात्र कारण हमारे मन व समाज में बैठी ब्राहमणवादी पितृसत्ता नहीं है? अगर हाँ है तो क्यों वह हमारे अंदर इतनी गहरे बैठ गई है कि हम उससे बाहर निकलने की बजाय उसके षडयंत्र में और गहरे धसते जा रहे हैं ।'

यही कारण है कि प्रेम विवाह करने के बाद भी गृह कलह, संबंध-विच्छे द और तलाक होते रहते हैं । इसकी बारीकी से पड़ताल करेंगे तो पाँएगे कि वह ब्राहमणवादी पुरातन रूढिया पितृसत्तामक समाज की जड़ताएँ ही उसकी जड़ में होंगी । लेखिका कहती है कि 'जब तक विवाह की राजनीति नहीं समझेंगे तब तक विवाह को लेकर हो रही तमाम तरह की राजनीति थी नही समझ पाएँगे । क्या् दो लोगो के बीच पैसा, पद, जाति और सामाजिक-राजनीतिक प्रतिष्ठाक विवाह के आधार होने चाहिए।?' यही सारी बीमारी की जड़ है । लोग इसे ही प्राथमिकता देते है जिससे आपसी संबंधो में खटास पैदा होती है और संबंध ज्या?दा दिनों तक निभा नहीं पाते हैं । पैसा, पद, प्रतिष्ठात, जाति, धर्म, मकान, खेती-बाड़ी, जमीन, प्लाट या सामाजिक-आर्थिक हैसियत ही शादी का आधार मानते हैं जो कि बिल्कुंल वाहयात है । मनुष्याता और आचरण-व्यावहार एक दूसरे की जरूरत तथा ख्यौल रखना दरअसल संबंधो की अहमियत है । किंतु अनीता जी ने इनको तवज्जों। नहीं दिया और दान-दहेज के विरूद्ध जाकर अपनी शती पर कोर्ट मैरिज किया और शान से रह रही है । खुद को बुलंद रखना और ठोंककर निणय लेना और चली आरही लीक से अलग चलना तो कोई लेखिका से सीखे । दान दहेज, पद-प्रतिष्ठाल, हैसियत आदि के चक्क र में लड़की के घर-परिवार पर कितना बोझ पड़ता है । जहाँ दो परिवारों का मिलन हो, वहाँ एक परिवार को उजाड़कर कर्ज का बोझ चढ़ाकर दूसरे परिवार का घर भरना कितना उचित है ? लड़की का परिवार उजड़ जाता है शादी विवाह के प्रदर्शन और टोटके में इसलिए दलित समाज को यही पैटर्न अपनाना ज्याादा श्रेष्ठ कर होगा जिससे किसी पर बोझ न बने ।

शादी से पहले लड़का-लड़की अपने विचारों का मेल देखने की बजाय सुख-सुविधा, घर-गृहस्थी, रूपया-पैसा, धन-दौलत, बैंक-बैलेंस, पद-प्रतिष्ठाज, हैसियत, नौकरी और परिवार का बैकग्राउंड देखते हैं । परिणाम अंततः यह होता है कि शादी ज्यौदा दिनों तक चल नही पा?ती । कुछ ही दिनों बाद दाम्पठत्य- जीवन में खटास पैदा होती है । एक-दूसरे के प्रति शक और सुबह होने लगता है और अंततः शादी टूट जाती है । जिनका मन और विश्वा स मिला होता है वे अपना सुखी जीवन जीते हैं, बेशक वह प्रेम विवाह हो अंर्तजातीय विवाह हो । उदाहरण के लिए स्वायं लेखिका अनीता भारती ।

'दूसरी तरफ पुरूष मित्र अपने जीवन साथी के रूप में प्रेजेंटेबल पत्नी की कामना रखते हैं । उनको शादी के लिए ऐसी लड़कियाँ चाहिए होती हैं जिसकी पहले किसी से दोस्ती न रही हो । होने वाली पत्नीउ घर का अनुशासन और रीति-रिवाज मानने वाली हो, माँ-बाप की सेवा करने वाली हो, खाना बनाने से लेकर साथ सोने तक के सारे काम खुशी से करने वाली हो । यह सारे गुण माँ-बाप द्वारा तलाशी गई लड़की में आराम से मिल जाने की अधिक संभावना के चलते हमारे सामाजिक-राजनीतिक पुरूष कार्यकर्ता अपने आस पास की और अपने समूह की चेतना सम्पवन्नह लड़कियों को छोड़कर माँ-बाप की मर्जी से शादी करना बेहतर समझते है।' पुरूषों के आचरण और व्यपवहार में कितना विरोधाभास है। दलित समाज के पुरूष, स्त्रियों के संबंध में खासतौर से पत्नीर का चुनाव करने में घरवाली और बाहरवाली का अंतर करते हैं । प्रेजेंटेबल पत्नीी अर्थात सौंदर्य की परी चाहिए । बाहर की खूबसूरती पर फिदा होते हैं और अपने समाज की चेतना संपन्ने लड़कियों को पसंद नही करते । एक अलग तरह का अंतरर्विरोध पाले रहते हैं ।

यही कारण है कि दलित समाज की लड़कियाँ सामाजिक-राजनीतिक आंदोलन में उत्साकह के साथ नहीं जुड़ती हैं । जो जुड़ती हैं उनके प्रति उन्ही- के समाज के स्त्रियों और पुरूषों का नजरिया ठीक नहीं होता और वे अपने समाज में बहू के रूप में ससझान स्वीपकृति नहीं पाती है । बदलाव होगा तो कहाँ से? जब आंदोलनों में सामाजिक, राजनीतिक, संस्कृ ति का क्षेत्रों में स्त्रियों को आगे नहीं आने देते । जो गलती से अभी गई तो वह उस सम्मांन की हकदार नही हो पाती जैसे वे अपनी पद्रीष और बहन-बेटियों को देते हैं । यह भी एक प्रमुख कारण बन सकता है कि और दलित समाज जो स्त्रियों की स्वअतंत्रता का सामाजिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक आंदोलनों में भाग ले रही दलित लड़कियों के कायी की सराहना करते- करते उन्हेंह अपनी और आकर्षित कर लेते हैं । उदाहरण के रूप में स्वमयं अनीता भारती के साथ यही हुआ किंतु यह चुनाव अनीता भारती और उनके सामाजिक कार्यकर्ता पति देव का था।

पितृसत्तात्मतक समाज में स्त्री और पुरूष की परवजरिश ही अलग-अलग ढंग से होती है जिसमें पुरूष और स्त्रीी के काम अलग-अलग ढंग से होती है जिसमें पुरूष और स्त्री के काम अलग-अलग चिहित कर दिए जाते हैं। पुरूष का काम है कमाकर लाना और अपने बेटों के भविष्यि की चिंता करना । जबकि स्त्री का काम है घर संभालना और परिवार की लड़कियों को तमीज़/सहूर सिखाना । पुरूष के काम में कोई गलती नहीं निकालना है। बेशक यह गलत करता हो । 'परिवार का मुख्ये काम लड़को को मर्द के रूप में तैयार करना और लड़कियों को औरत के रूप में तैयार करना होता है। परिवार में लड़कियाँ हमेशा पितृसत्ता की राजनी?ति का शिकार होती है । बचपन से ही पहनाने, खिलोने, पिलाने पढ़ाने से लेकर अन्यृ बातों की उसे इस प्रकार ट्रेनिंग दी जाती है जिससे वह परिवार व्यावस्थान का मजबूत स्तंपभ बनकर काम करें ।' लड़का कुछ भी करे, कैसा भी करे उसे माँ-बाप का समर्थन रहता हैं। अगर उसकी शिकायत माँ-बाप से करो तो उल्टेन माँ-बाप लड़कियों को डाँट कर शांत कर देते हैं कि आखिर 'वे मर्द हैं, ऐसे ही होते हैं, घर तो आखिर लड़कियों को ही संभालना पड़ता है । इस प्रकार घर में ही लड़कों को सारे अधिकार अनायास और बेराकटोक विरासत में मिल जाते हैं जबकि लड़कियों को खाना-पकाना, घर साफ करना सबकी सेवा करना उसे जन्म घुट्टी में पिलाकर उसके सामान्य अधिकारों में भी कटौती कर दी जाती है । हमारे परिवार की लड़कियाँ सिर उठाकर नहीं चलती, ऊँचा नहीं बोलती आदि जुमलों से लड़कियों की पैदावार को खालिस ब्राहमणवादी पितृसत्तात्मलक व्यीवस्थाि की पोषक के रूप में स्था पित कर दिया जाता है ।'

कहने का आशय यह है कि पैदा होने से लेकर लालन, पालन, पोषण, पहनना-ओढ़ना, शिक्षा आदि सभी स्तेरों पर लड़कियों से भेदभाव होता है । उनके क्च्क्तित्व, के स्व-तंत्र विकास को रोका जाता है, अवसर नहीं उपलब्धन कराए जाते हैं। अगर कोई दलित लड़की किसी तरह स्वियं पहल करती है, अपने बल बूते अपने व्यैक्तित्व का विकास करती भी हैं तो परिवार वाले उसे हाथ से निकल गई मानते हैं । 'अक्स र हाथ से निकलने का मतलब कि स्वातंत्र रूप से सोच-विचार कर अपने निणन्य ले रही लड़की को समाज के तौर पर किसी भी प्रकार के लड़के से चाहे वह पढ़ा-लिखा हो या अनपढ़, सदाचारी हो या दुराचारी, लायक हो अथवा नालायक, कुछ भी बिना देखे-भाले आनन-फानन में उसकी शादी कर अपना बोझ उतार लिया जाता है ।'

दलित समाज भी स्त्रियों के मामले में समाज वही ब्राहमणवादी रवैया अपनाता हैं । छुयी मुई की तरह उनको समझना और ब्राहमणवादी सामाजिक जो रीति रिवाज और मान्यवताएँ बिना सोचे-समझे वह अपनी स्त्रियों पर लागू करना । जबकि होना यह चाहिए कि दलित स्त्रीन का विकास स्वितंत्र और सहज होना चाहिए तभी वह पुरूष के साथ कंधा से कंधा मिलाकर हर संघर्ष में साथ रहेगी जिससे दलित पुरूष का मनोबल बढ़ेगा और संघर्ष में हाथ बटेगा, जिससे समाज में चेतना आयेगी और समाज का विकास होगा । स्विर्ण समाज में लड़कियों को अपनी जिंदगी जीने की अपने व्याक्तित्वग का विकास करने की भरपूर छूट होती है । वे जीवन को सहजता से जीती हैं, किंतु दलित समाज की लड़की को जन्मं से लेकर बाद तक उसे हीनता ग्रंथि से भर दिया जाता है । हंसना, बोलना, खेलना, पढ़ना, लिखना, दूसरों से बातचीत करना, घूमना-फिरना सब पर शिकंजा कस दिया जाता है । माँ-बाप के घर पराया धन समझकर सुरक्षा के घेरे में और ससुराल में सास-ससुर, देवर देवरान, जेठ- जेठान, ननद आदि के घेरे में जकड़ कर रख दिया जाता है । उसके व्यंक्तित्वं का विकास कहाँ होगा ? यही नहीं, लड़की अपनी स्वेघच्छा से लड़के का चुनाव नहीं कर

सकती। सदैव माँ-बाप, घर परिवार की इज्जगत की रखवाली की जिम्मेडदारी वही मान ली जाती है। सबका ठेका उसी के सिर पर रहता है-यह दुर्भाग्य? की बात है। दलित समाज ही दलित लड़कियों के दब्बूरपन की भी जिम्मेतदार है।

लेखिका ने स्त्रियों संबंधी पुरानी रूढियों तथा ब्राहमणवादी रूढियों पर गहरी चोट की है और लड़कियों के पिछड़े होने के लिए उन्हीं जिम्मेकदार भी बनाया है। लेखिका ने तीखे सवाल उठाए हैं - 'आखिर क्यूँ यह महिला कार्यकर्ता सामाजिक जीवन में न जुड़कर पढ़ाई खत्मह होने के बाद या एक उम्र बीतने के बाद घरों में हाउसवाईफ या फिर संगठन में ही किसी साथी से शादी करके उसकी घर गृहस्थीह में पूरी तरह डूबकर या डुबाने पर मजबूर होकर अपना जीवन निष्क्रिय होकर बिता देती हैं। यह सारे सवाल मुझे अक्सनर मथते रहते थे।' लेखिका ने सवाल उठाया है कि सामाजिक कार्यकर्ता, छात्र संगठनों में काम करने वाली लड़कियों का भविष्या क्याा है? अगर यही उनका भविष्यी है कि जैसे-तैसे किसी कम पढ़े-लिखे या गृहस्थन के साथ जुड़कर हाउस वाइफ बन जाना, वह भी मजबूरी में। पढ़े- लिखे युवा द्वारा उनकी उपेक्षा होगी तो दलित स्त्री का भविष्या क्याउ होगा ? अगर यही हस्र होना है तो पढ़ी-लिखी लड़की किसी आंदोलन में क्यों भाग लेगी ? इसलिए दलित समाज में पुरूषों का वर्चस्व और स्त्रियों की उपेक्षा लगातार हो रही है जिस पर किसी का ध्यातन नहीं जा रहा है। यही कारण है कि दलित समाज की महिलाएँ सामाजिक जीवन में एक्टिव नहीं है। सब की सब घरों में ही खप जाती हैं अपवाद स्वंरूप बहुत कम संख्याज में सामाजिक कार्य या आंदोलनों में जुड़ पाती है।

किंतु जिन लोगों में आत्म शक्ति है, स्वापभिमान के साथ सामाजिक जीवन से जुड़कर जो समाज के लिए कुछ करना चाहती हैं वे बहुत घाटे में नहीं रहती। जीवन का उद्देश्या किसी पुरूष की पत्नीु बनकर घर-गृहस्थी में मर-खप जाना नहीं हैं। अपनी शती पर जीवन जीना और अपनी तरह से जीना प्रमुख है। स्वुयं के निणन्य पर भरोसा करना और अपने जीवन के बारे में दूसरों के फैसले जस का तस मान लेना कितना उचित है? अनीता भारती का कथन ध्यारन देने योग्यज है - 'मैं सामाजिक जीवन में रहते हुए लगातार दलित और स्त्रियों के मुद्दे पर काम करना चाहती थी, इसलिए मैं सोचती थी जिससे मेरी शादी हो चाहे माँ-बाप की मर्जी से हो अथवा अपनी मर्जी से, उस व्ययक्ति में एक सामाजिक कार्यकर्ता के गुण जरूर हाने चाहिए। मैं एक आम घरेलू औरत जीवन नही जीना चाहती थी। मैं स्वउतंत्रता से नौकरी करते हुए बाकी समय समाज के लिए अर्पित करना चाहती थी।'

लेखिका अनीता भारती का कथन दलित समाज की स्त्रियों के लिए आदर्श हो सकता हैं। क्यों कि पढ़-लिखकर भी दलित लड़की अपने जीवन का फैसला खुद नहीं लेगी और परिवार वालों के इशारे पर अपना जीवन कैसे व्यक्ति के साथ काटेगी जिसकी समाज में कोई अहेमियत ही नहीं, बिल्कुरल जरूरत नहीं हैं। दलित समाज की लड़कियों को अपने जीवन का फैसला खुद लेना है, जैसा भी लेना है किन्तुह खुद। पैसा-रूपया, हैसियत माने कुछ नहीं। अपने जीवन का फैसला वह खुद करें और अपनी शती पर करें, किंतु कोशिश हो कि निभ जाए। वरना बुराइयाँ बहुत तेज फैलती है।

जीवन साथी के चुनाव में अनीता यह निणन्य स्वकयं लड़की पर छोड़ती हैं, जिनको लड़के के साथ जीवन जीना है उसका फैसला खुद लड़की करे। दूसरे उसके भाग्यन का फैसला क्यों करेंगे ? माँ-बाप के द्वारा चुने गए लडके से शादी करने के पक्ष में वह नहीं थीं। उन्होने कहा है कि 'शायद अब मैं अपने माँ-बाप द्वारा चुने गए लड़के से शादी नहीं कर सकती थी। इसलिए मैंने तेजी से महसूस करना ही नहीं बल्कि मन ही मन सोच लिया था कि मैं किसी सामान्य घरेलू से शादी न कर किसी सामाजिक कार्यकर्ता से ही शादी करूंगी। मेरे साथ किसी व्याक्ति के साथ दोस्तीप की पहली शर्त है - उसकी सरलता, सहजता, ईमानदारी और प्रतिबद्धता। मैं कभी भी किसी व्य्क्ति की हैसियत उसके पैसे, पद और उसके सामाजिक रूतबे से नही आँकती और न ही कभी भविष्यर में आकूँगी।' खुद जब निणन्य लेना है तो दूसरे के फैसले पर भरोसा क्योंी ? कहना आसान है किन्तुन उस पर चलना, अमल करना चुनौती से कम नहीं है। जीवन में कुछ भी ऊँच-नीच होता है माँ-बाप से मदद लेने की हैसियत नहीं रह जाती। यहीं स्त्रियाँ कमजोर पड़ जाती हैं। वे माँ-बाप, भाई- भौजाई का घर अपना घर समझती हैं और उन पर आजीवन निर्भर रहने की कोशिश करती हैं। अपने बलबूते, अपना निणन्य, अपनी दुनिया बनाए बिना स्त्रियाँ आत्म निर्भर नहीं हो सकतीं। आत्मशनिर्भर होने की पहली शर्त है खुद निणन्य लेना और अपने लिए हुए निणन्य पर चलना। अनीता

भारती लिखती हैं-'जीवन के रूप में चुनने के लिए मेरी अपनी शर्त यह थी कि सबसे पहले तो वह एक सामाजिक कार्यकर्ता हो, दूसरे वह मेरे विचार और भावनाओं की कद्र करने वाला हो, तीसरे वह एक ईमानदार और पुरूष अहम से मुक्?त हो तथा उसे मेरे समाजिक कार्यों से परहेज न हो ।' प्रत्येरक व्यएक्ति का अपना निणऱ्य, अपना स्व,प्रे होता है। लेखिका का स्वेप्र्ज था कि मैं सामाजिक कार्यकर्ता से शादी करूंगी । यहाँ तक तो बात ठीक थी, किन्तु अंतर्जातीय विवाह होगा और उस जाति के व्यरक्ति से होगा जिन्हो ने सदियों से दलितों का शोषण दमन किया हे भला ऐसी शादी को कोई कैसे मान्य ता दे ? लेखिका के परिवार वाले इस शादी के पक्ष में नहीं थे । दूसरे लड़के का परिवार भी अपनी जाति के बाहर निचली जाति की लड़की से शादी की ईजाजत कैसे देता ? यह सच है कि शादी करने वाले जोड़े शादियाँ तो कर लेते हैं, किन्तुद भुगतता है उनका परिवार और जो दबंग जातियाँ है वह फिर अन्यो तरह से पूरे परिवार और जाति को दबाने और कुचलने का प्रयास करती हैं । भारतीय समाज में ऐसे हजारों उदाहरण हैं जहाँ परिवारों को पलायन करना पड़ा हैं । अपना घर-परिवार, जमीन जायदाद छोड़कर जान बचाकर भागना पड़ा है । प्रेम तो किए लड़के-लड़की और कीमत चुकाया पूरा परिवार ।

यही कारण है कि समाज में अर्न्तरजातीय विवाह को अच्छी नजर से नहीं देखा जाता और न ही परिवार और समाज उसका समर्थन करता है । लेखिका स्वजयं लिखती हैं 'चूंकि मेरे दादा जी और उनके परिवार के लोगों का गाँव के ऊँची जाति के खासकर जिस जाति के व्यचक्ति से मैं शादी करने जा रही थी उन लोगों ने प्रताडित कर गाँव से पलायन करने पर मजबूर कर दिया था । ऐसे में मेरे पिता जी का चिंतित होता स्वालभाविक था । मेरे पिता जी को लगा कि मैं जिस परिवार में शादी करने जा रही हूँ वहाँ जा?ति के नाम पर मुझे गालियाँ या ताने देंगे तो क्याव मैं उन गालियों या तानों को बर्दाश्त कर पाऊँगी ।' दरअसल यह डर स्वा भाविक है क्योंकि समाज का ढ़ाँचा और उसकी संवेदना इतनी बदली नहीं है कि यह सब सहज लगे । देश, जाति, धर्म, रंग, लिंग आदि की जड़ताओं से आज की ग्रसित है इनसे पार पाना बहुत कठिन है । संविधान बनाते समय डॉ. बी.आर.अंबेडकर ने यह कोशिश की यह सामाजिक जड़ता खत्मा हो, जाति-पाति,छूआ-छूत भेदभाव खत्म हो और समाज प्रगति के राह पर अग्रसर हो, लोगों के बीच रोटी-बेटी के संबंध कायम हो और समाज समरसता की ओर अग्रसर हो किन्तुं वह विचार, वह दर्शन आशा और आकांक्षा के अनुरूप आजादी के इतने वर्षों बाद भी फल-फूल नहीं सका । लेखिका का मन भी दुविधा ग्रस्त् रहा । इतने विरोध के बाद भी यह सम्भपव कैसे होगा, पर उन्हो ने ठान लिया कि मुझे शादी अपने मनपसन्द व्य क्ति से ही करनी है चाहे लाख विरोध हो । लेखिका लिखती हैं - 'पता नहीं क्योंा उस समय मेरे मन में यह धारणा बैठ गयी कि शादी के बाद ठीक-ठाक चला तो ठीक है अगर नहीं चला तो कोई बात नहीं । यानी मैं मन ही मन शादी के असफल होने के परिणाम को लेकर की मानसिक रूप से तैयार थी ।'

लेखिका का यह दृढ़ निणऱ्य ही उसके आत्मकबल को ताकत प्रदान करता है और रिस्कय लेने की मनोदशा को मजबूत बनाता है । बर्बस मीराबाई का कथन याद आता है-

माई री मैं तो लियो गोविन्दोब मोल
कोई कहे सस्तो कोई कहे महंगो
मैने लिया तराजू तोल ।

उपर्युक्त पंक्तियों से यह ज्ञात होता है कि निणऱ्य हमेशा ठोक-बजाकर लेना चाहिए । दुनिया को जो कहना हे सो कहे, हमे जो करना है वही करेंगे । यह निणऱ्य लेने की प्रवृत्ति जिस दिन दलित स्त्री में आ गयी वह अपने जीवन को दिशा दे सकती है और आत्म निर्भर बन सकती है । दलित स्त्री को आत्म?निर्भर होने के लिए उसके आत्मदबल को मजबूत करना होगा और उसे अपना निणऱ्य खुद लेना होगा । समाज अभी बँधी-बंधाई परिपाटी और परम्प्रागत छवियों में बंधकर चल रहा है, जी रहा है । कोई तो उन्हेंत तोड़ेगा, मीरा ने भी तो स्त्री की परम्प रागत छवि को तोड़ा था और कीमत चुकाई थी । अनीता यह कहती है कि मुझे मेरे पति राजीव का साथ बराबर मिलता रहा, तमाम विरोध-अवरोध आये, किन्तु। उन्होंनें मेरा साथ नहीं छोड़ा । 'मुझे राजीव की तरफ से कभी महसूस नहीं हुआ कि मैं दलित परिवार से आई हूँ और मेरी अस्मिता केवल एक दलित स्त्री की है।'

समरस समाज की स्थाचपना तब तक नहीं होगी जब तक समाज में रोटी-बेटी का सम्बं ध कायम नहीं होगा। तब तक जातीय श्रेष्ठनता बोध समाप्तो नहीं होगा जब तक समाज की जातीय अस्मिता समाप्ता नहीं होगी । डॉ. भीमराव अंबेडकर ने ~~अंतर्जातीय विवाह करके रोटी-बेटी~~ के संबंध की वकालत करते हुए एक आदर्श प्रस्तुहत किया था, किन्तुन

अफसोस यह है कि उस आदर्श पर समाज नहीं चला । अब तो जातीय-उपजातीय अस्मिता भी अपने कट्टर रूप से जड़ होती जा रही है । खुशी की बात है कि अनीता भारती और राजीव जैसी जोड़ी समाज में सम्मामन और आदर्श प्रस्तुरत कर रहे हैं । किन्तुत उन्हें परिवारिक और समाजिक स्वी कृति की आवश्य कता है । देर-सबेर वह भी संभव है और होकर रहेगा ।

आजादी के कई वर्ष बाद भी महिलाओं/दलित महिलाओं का शोषण, दमन उत्पीड़न, हिंसा, बलात्का र बदस्तूकर जारी है । एक तरफ देश बहुत उत्साहि से आजादी का अमृत महोत्सीव मना रहा है, दूसरी तरफ दलित स्त्रियों का यौन शोषण, बलात्काफर/हत्यासकर उसके शव को जला दिया जाता है । दलित स्त्रियों को शासन सत्ता भी अपना उपनिवेश मानकर उसका शोषण कर रही हैं । परिवार के लोग न्यायय की आकांक्षा के लिए थाना, जिला प्रशासन के पास जाते हैं उल्टे उन्हें ही परेशान किया जा रहा है । उन्ही् के परिवारों के खिलाफ झूठे मुकदमें लगाकर जेल में डाल दिया जा रहा है । आजादी के अमृत महोत्सपव में स्त्रियों का बलात्काहर और उनकी हत्याव आम बात है। आम जनता की कोई सुनवाई नही हैं । अगर ऐसा ही चलता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब घर में लड़कियाँ पैदा होने से पहले ही मार दी जाएँगी या पैदा हुई तो पैर में अफीम चुभाकर मार दी जाएँगी, जैसा पहले होता था । जब समाज जागरूक हुआ था, लड़कियाँ प्रत्येक क्षेत्र में अपनी सफलता का परचम लहरा रहीं हैं ।

आज बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ का नारा गूँज रहा है और उसी की आड़ में स्त्रियों का बलात्काहर और उसकी हत्याा इस नारे को फर्जी करार दे रहे हैं । समाज क्यों नहीं जागरूक होता ? प्रत्ये क घर में माँ, बहन, बेटी है फिर भी दामिनी और निभन्या कांड क्योंा हो रहे हैं ? समाज की संवेदनहीनता, शासन-प्रशासन, पुलिस की ह्दयहीनता और अकर्मण्यीता तथा गुनहगारों के पक्ष में समर्थन उनकी भूमिका को संदेह के घेरे में ला रहा है । अनीता भारती लिखती है 'दलित महिलाओं पर सामाजिक हिंसा बहुत तेजी से बढ़ ही रही है, साथ में घरेलू हिंसा की घटनाओं में भी काफी बढ़ोतरी होती जा रही है । जहाँ एक ओर सामाजिक हिंसा का दायरा उनके साथ बलात्कोर करना, निर्वस्त्रभ घुमाना और धार्मिक व सामाजिक अंधविश्वाहस के नाम पर उन्हेन डायन और चुड़ैल करार देकर सरेआम पत्थ्रों, लाठी डंडो से पीट-पीटकर मार रहे हैं, वही दूसरी ओर उनकी इंसानी गरिमा के खिलाफ जातिगत पेशे के नाम पर मैला दोने जैसी अमानवीय कृत्यस से लेकर देवदासी और बेड़नी जैसी देह उत्पीड़क परंपराएँ चल रही हैं ।' दलित स्त्रीं न समाज में सुरक्षित है न घर में । समाज उन्हेंड अपना उपनिवेश समझता है। इसलिए उनके साथ बलात्काजर करता है, निर्वस्त्रं घुमाता है और आग लगाकर हत्याक करके पुलिस प्रशासन की मौजूदगी में जला देता है, ताकि कोई निशान ही नहीं रहे । जातिगत द्वेष के कारण दलित स्त्रियाँ समाज में सुरक्षित नही हैं । अंधविश्वाहस समाज में जड़ कर गया है । जहाँ दुनिया चाँद पर, मंगल पर जीवन तलाश रही है, वहीं जाति के नाम पर डायन और चुडैल कहकर पत्थ्रों से मारा जा रहा है । न तो वह कार्यस्थणल पर सुरक्षित है और न ही समाज में, रास्तेप में । ऊपर से धर्म की आड़ में उसे देवदासी बनाकर मंदिर के पंडे पुरोहितों के लिए यौन शोषण करने के लिए लाइसेंस दे दिया जाता है ।

घर परिवार में भी दलित स्त्री पर हिंसा बलात्का र और शोषण होता रहता है । पुरूष के समान भागीदारी करने पर उसके हर संघर्ष में साथ रहने पर भी दलित स्त्रीर बच्चाण पैदा करने की मशीन समझी जाती है । शराब पीकर पुरूष उसे अपनी हम सफर नही बल्कि दासी समझता है । घर का सारा काम, बच्चोंज की परवरिश ऊपर से पति का अत्या चार, शोषण और हिंसा । परिवार में बहू, बहू न होकर नौकरानी मान ली जाती है । यही कारण है कि दलित स्त्री शोषण का शिकार होती, संघर्ष करती हुई असमय बूढ़ी हो जाती है और उसकी इच्छाहएँ मर जाती हैं ।

अनीता भारती मानती हैं कि दलित स्त्रियों पर तीसरी तरह की ज्या दती, मानसिक हिंसा,उत्पी डन और वैचारिक हमले हो रहे हैं - 'यह तीसरी तरह की हिंसा उन चेतनाशील दलित स्त्री सामाजिक कार्यकर्ताओं लेखिकाओं और दलित बेटियों को झेलनी पड़ रही है जो लगातार सक्रिय रहकर लिखने पढ़ने के अलावा सामाजिक कायी से भी जुडी हैं।' संयोग या दुर्योग कहिए कि यह हिंसा दलित पुरूषों के द्वारा की जा रही है । ऐसा क्योंक हो रहा है, यह चिंता का विषय है । क्याड दलित स्त्री का पढ़ना-लिखना, आगे बढ़ना, सामाजिक कायी में आगे बढ़ना दलित पुरूषों को असह्य हो रहा है या वह अपने समाज की स्त्रियों को नेतृत्व करते नहीं देख पा रहे हैं अथवा उन्हेंम यह चिंता सता रही है कि ये

दलित स्त्रियाँ सवर्ण पुरूषों की कठपुतली बन गई हैं, इसलिए सामाजिक कार्य या पढ़ लिखकर दलित पुरूषों का विरोध कर रही हैं । जबकि प्रत्ये क जाति और समाज की आधी दुनिया स्त्रियों का पढ़ लिख कर चैतन्यु होना सुखद माना जाना चाहिए । स्त्री के शिक्षित होने का अर्थ परिवार का शिक्षित होना । उनके नेतृत्व। से समाज में परिवर्तन अवश्य भावी है । पुरूष इसलिए उनका दमन-उत्पीड़न, शोषण करते हैं कि दलित स्त्रियाँ दलित पुरूषों के नेतृत्वन को चुनौती दे सकती हैं । उनका वर्चस्व। खतरे में पड़ सकता है । इसलिए यह तीसरे तरह का अर्थात् पढ़ी लिखी सक्रिय लेखिकाओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं या दलित बेटियों का दलित साहित्य?कार विरोध करते हैं ।

अनीता भारती यह आरोप लगाती हैं कि 'दलित पुरूषों के अंदर बैठी ब्राहमणवादी पितृसत्ता और उनकी सामंतवादी सोच के कारण ये कुछ दलित साहित्यसकार उनका विरोध करते हैं । इस तथाकथित साहित्यतकारों को दलित महिलाओं का स्वुतंत्र होकर लिखना-पढ़ना और अपने अधिकार और मुक्ति के सवाल पर खुलकर अपनी बात रखना पसंद नहीं है।' साथ ही वह यह भी आरोप लगाती हैं कि 'पता नही क्योंी हमारे दलित बुद्धिजीवियों के अंदर दलित महिलाओं के अधिकारों के लिए लड़ने और उन्हे बराबरी की जगह देने की चाहत नजर नहीं आ रही थी । वे दलित महिलाओं के मुद्दों, विषयों को दलित आंदोलन का हिस्सार मानने को तैयार नहीं हैं । हमारे दलित साथियों की राय है कि दलित समाज में दलित-महिला पुरूष दोनों की एक सी स्थिति है अर्थात दोनो ही गुलाम हैं इसलिए पहले हमें सामूहिक होकर जाति मुक्ति की लड़ाई लड़नी है । जब हमें जाति से मुक्ति मिल जाएंगी तब हम दलित महिलाओं के लिए लड़ लेंगे ।'

यह सच है कि दलित स्त्रियाँ, दलित पुरूषों के हर संघर्ष में साथ रहीं हैं तो पहले और बाद में क्योंर ? दलित पुरूष अपनी मुक्ति के साथ ही दलित स्त्रीी की मुक्ति का सवाल क्यों नहीं उठाता ? अनीता लिखती हैं 'मेरा हमेशा यह मानना रहा है कि हमें एक साथ सामूहिक लड़ाई के साथ दलित स्त्री अधिकारों की लड़ाई भी साथ-साथ ही लड़नी पडेगी । लेकिन हमारे पुरूष साथियों को यह बात बिल्कुकल गले नही उतर रही है ।' अनीता भारती का यह कथन बहुत ही महत्विपूर्ण है । मुक्ति के सवाल पर प्राथमिकता क्यों ? दलित पुरूष मुक्तर हो सकते हैं, और साथ देते हुए दलित स्रीहत् क्यों नहीं मुक्त हो सकती ?

इतिहास से दलित पुरूष सबक क्यों नही लेते? डॉ भीमराव अंबेडकर ने देश की आजादी के सवाल से जोड़कर दलितों, पिछडे, आदिवासियों तथा स्त्रियों की मुक्ति के सवाल को एक साथ ही लिया था । अगर वे यह साझी लड़ाई न लड़ते तो न दलितों, न पिछडों का और न ही स्त्रियों को संविधान में इतने अधिकार मिलते । ध्यीन रहे पूरी व्यावस्थाब से यह लड़ाई डॉ. भीमराव अंबेडकर ने अकेले लड़कर हासिल किया था । आज लाखो दलित पढ़ लिखकर ऊँचे पदों पर आसीन हैं वह अपनी लड़ाई ठीक से, अविभाजित होकर नहीं लड़ पा रहे हैं । उन्हींख में आपस में तमाम तरह के मतभेद हैं । दलित पुरूषों को मुक्ति तब तक नहीं मिल सकती जब तक वे दलित स्त्रियों की मुक्ति के सवाल को एक साथ नहीं उठाते । इसलिए दलित पुरूष की मुक्ति दलित स्त्रीक की मुक्ति एक साथ ही संभव है। मुक्तिबोध का स्पथष्ट कथन है कि -

> 'याद रखो मुक्ति कभी अकेले में नहीं मिलती
> यदि वह है तो सबके साथ है ।'
> अंधेरे में (मुक्तिबोध)

यहाँ दलित पुरूष अपनी मुक्ति की बात करता है, किंतु दलित स्त्री की मुक्ति पर मौन रहता है और कहता है इस मुद्दे को बाद में देखेंगे । यह बहुत बड़ा अं?तर्विरोध हैं । अपनी स्त्रियों को स्वपतंत्रता दिये बिना, मुक्तत किए बिना वह स्वमयं मुक्त। नहीं हो सकता । यह साधारण बात समझ से परे है । यही कारण है कि दलित स्त्रीी जाति के कारण, स्त्रीब के कारण और स्वोयं दलित पुरूष के कारण शोषित, दलित और उत्पी डित की जाती है । अगर यह सही नही है तो ३३इ स्त्रियों के आरक्षण का विरोध क्योंण किया गया । इस मुद्दे पर अनीता जी का आरोप देखिए - 'आज दलित आंदोलन में दलित महिलाओं को अलग से अपनी आवाज उठानी पड़ रही है, पर दलित आंदोलन के तथाकथित पैरोकार द्वारा न केवल दलित महिलाओं को उनके अधिकारों के लिए लड़ने से रोका जा रहा है, अपितु उन्हें सुनियोजित तरीके से लांछित करने की मुहिम भी चलाई जा रही हैं ।'

इस बात से यह स्पकष्टम होता है कि स्वअयं

दलित पुरूष साहित्यजकार, दलित लेखक दलित स्त्रियों को उनके हक लेने या उनकी मुक्ति या स्व तंत्रता के विरोधी हैं । जब दलित स्त्रियाँ दलित पुरूषों के शोषण की शिकार हैं, वे ही उन्हें अपना उपनिवेश समझे उन्हेंं मुक्तय और स्वततंत्र नहीं कर रहें है तो फिर दलित स्त्रियाँ उनकी शिक्षा, उनके स्वोस्थ्य , उनके निणन्य का सम्मातन कहाँ हुआ ? वे तो दलित पुरूषों से ही मुक्ति की लड़ाई नहीं लड़ पाएँगी । बाकी दुनिया से कैसे लड़ेंगी ? दलित पुरूष ही उनके समग्र विकास तथा सामाजिक, राजनीतिक पहचान के साथ नहीं उन्हेंक आगे आने नही देते । सामाजिक आंदोलनों में उन्हेंर आगे नहीं आने देते । अनीता भारती लिखती हैं- 'हिंदी के दलित साहित्य में पिछले १०-११ सालों से दलित स्त्रियों के मुद्दे और उसके सवालों को लेकर दलित साहित्याकारों ने जिस तरह से भयंकर बवाल मचा रखा है, वह सबको काफी हैरान करने वाला है । हिंदी पट्टी के दलित साहित्यत की एक धारा के साहित्यरकार जिनमें एक प्रमुख ग्रुप दलित स्त्रियों के खिलाफ, दलित स्त्रीी विरोधी जारवाद के सिद्धांत को खोजकर लाया है । इस जारवाद के सिद्धांत के अनुसार दलित महिलाएँ जारकर्मी होती हैं । वे दलित पुरूषों को अपमानित करके सवर्ण जाति के लोगों से बच्चेत पैदा करती हैं और अपने दलित पति से वह बच्चे पलवाती हैं। जब दलित पति विरोध करता है तो वे दलित स्त्रियाँ एक तो अपने दलित पति को तलाक नहीं देतीं, दूसरे पीड़ित पति से मुआवजा जैसी भीख मांग-मांग कर उनको लूट लेती हैं ।' अनीता भारती का यह आरोप बहुत गंभीर आरोप है और यह बिल्कुभल बेबुनियाद नहीं हैं । अफसोस है कि दलित साहित्यत के कुछ साहित्यरकारों द्वारा दिया गया प्रमाणपत्र कि दलित स्त्रियाँ जारकर्म करती है, यह निंदनीय हैं । इस तरह का प्रमाणपत्र वे देने वाले कौन हैं ? दलित साहित्य कार को यह प्रमाणपत्र बांटने का हक किसने दिया? जब वे ही अपनी ही माँ, बहन, बेटियों का सम्मा?न नहीं कर पा रहें हैं । तो फिर दूसरों का क्यान कहना ? मान लिया जाय यदि ऐसा हो तो आप किसी अपवाद का सामान्यीहकरण कैसे कर सकते हैं ? फिर समाज में सेक्सकवर्करों का धंधा चल रहा है, धनिकों की मंडी उन्हें वस्तुप और बाजार समझती है। उसी मानसिकता का परिचय आप क्योंा दे रहे हैं ? अगर दम है तो हर समय साथ रखो, उन्हेंन रोटी, कपड़ा, मकान के लिए न तड़पाओं । अपनी अक्षमता को दूसरों के सिर मढ़ना आप की मानसिक विकृति को प्रकट करता है । जो स्त्रियाँ आप की माँ, बहन, बेटी आप के संघर्ष में साथ-साथ संघर्ष करती रही हैं, उनके संघर्ष को भूल गए आप ? आप का पेट भरने लगा तो वे जारकर्मी लगने लगी । शर्म आनी चाहिए ऐसी सोच पर, जो दलित स्त्रियों को जारकर्मी साबित करते हैं । तुम अपने साथ अपनी स्त्रीी को रखो, उसका ध्यातन दो उसमें सवर्ण क्याम करेगा ? कहीं यह आरोप इसलिए तो नहीं लगाया जा रहा हैं कि तुम खुद ही जारकर्म में लिप्त हो, घर अपनी पत्नी का सम्मा न नही करते, बाहर दूसरों के यहाँ ताक झाँक करते हो और अगर तुम्हा री पत्नीद तुम पर शक करे, ऊंगली उठाए तो तुम उसे जारकर्मी साबित करने लगो। यह कैसी बेशर्मी है? कितनी प्रतिशत दलित स्त्रियाँ जारकर्मी है ? कितनी प्रतिशत सेक्स्वर्कर हैं ? तुम अपने आचरण को कब सुधारोगे ? अपनी पत्नीर के साथ हिंसा करोगे, शराब पीकर उस पर हाथ नहीं उठाओगे, अपने बीवी बच्चों को साथ नहीं रखोगे,उसका भरण-पोषण नहीं करोगे ऊपर से उसके चरित्र पर सवाल करोगे ? अगर कोई पूछे कि तुम पुरूषों का चरित्र कैसा है उसको कभी झांककर देखा ? उसका प्रमाणपत्र किसी स्त्रीत से किया ? अपनी पत्नीछ से लिया ?

अनीता भारती कुछ दलित साहित्येकारों पर दूसरा आरोप लगाती हैं - 'समाज में दलित-गैर दलित महिलाओं की दलित-पुरूष उत्पी ड़क छवि गढ़ने में रात दिन कार्यरत हैं । यह दलित साहित्य कार दलित पुरूषों को तो जातीय शोषण से त्रस्त यानि उत्पीीड़ित मानते हैं । जबकि दलित औरत इनको गुलाम बनाने वाली, इनके ऊपर अत्यातचार करवाने वाली शत्रु कौम के रूप मे दिखती है । उत्पीतड़क दलित स्त्रियाँ सवर्ण जातियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर इनको प्रताड़ित कर रही हैं । यह जारवादी साहित्य?कार दलित स्त्रियों के लिए कामचोर, निठल्ली , पेटपूजक, वेश्या , रखैल, देवदासी जैसे शब्दस आमतौर पर इस्तेतमाल करने में इन्हें न तो कोई गुरेज है और न ही शर्म महसूस करते हैं ।'

यह आरोप भी बिल्कु ल निराधार नहीं है । इन दलित साहित्ययकारों को किसने यह दृष्टि दे दी है किसने ये सर्टिफिकेट दे दिया है कि वे अपने समाज की स्त्रियों को जारकर्मी, वेश्यास, देवदासी, पेटपूजक, रखैल, और कामचारे सिद्ध करने में तुले हैं? यह ठेकेदारी इन्हेंे कैसे मिली? यह कैसी कुंठा है कि खुद को बड़ा दलित साहित्यैकार कहने-कहाने के मोह में अपने ही समाज की स्त्रियों की छवि चौपट करने में अपनी उर्जा लगा रहे है । क्याद उन्हेंं यह समझ में

नही आता है कि इस समाज को तोड़ने, विभाजित करने, आपस में लड़ाने की पूरी कोशिश वे ही कर रहे हैं। जो सदियों से सत्ता-व्यसवस्थो पर कब्जाा जमाए हुए हैं फिर ये कुछ दलित साहित्यपकार अपनी लकीर बड़ी करने के चक्कोर में अपने समाज को भेदने में क्योंज अपनी अज्ञानता का परिचय दे रहे हैं । अनीता भारती आगे लिखती है- 'दुःख और निराशाजनक बात यह है कि जो दलित आंदोलन समता-समानता और बंधुत्वा के सिद्धांतों की मशाल को लेकर आगे बढ़ रहा है । उसी आंदोलन में ये कौन लोग हैं जो सबसे ज्याादा समानता के खिलाफ बोल और लिख रहे हैं । यह किस विचारधारा का पोषण कर रहे हैं ? क्या यह प्रतिक्रियावादी विचारधारा दलित साहित्ये और आंदोलन के लिए कब्र खोदने का काम नहीं कर रही ? यह बात बिल्कुतल विचारणीय है कि जब एक सामाजिक आंदोलन, साहित्यिक आंदोलन चला रहे हैं, सभी को साथ रखना हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए । किन्तुा स्वऔयं को श्रेष्ठक समझने-समझाने के मोह में अपने समाज और आंदोलन को कमजोर करने का प्रयास कर रहे हैं । इन आंदोलनों के विकास काल में ही रूढ़िवादियों के तथाकथित शुद्धतावादी और शुचितावादी अप्रोच को अपनाकर आप उन्हीु की भाषा और शब्दा वली अपनाकर अपने समाज की जड़ों में मठ्ठा डाल रहे हैं । ध्याचन दे तो ये जार क्रम तथाकथित वर्चस्व वादी समाजों में ज्याअदा घिनौने रूप में फैला है । उसे अंदर ही अंदर खोखला कर रहे हैं । ये कुछ दलित साहित्य कार उन्हीज विमर्शवादी औजारों का प्रयोगकर अपने पैरों पर कुल्हारड़ी चला रहे हैं । अफसोस है कि वे जिस डाली पर बैठे हैं उसी को काट रहे हैं, किन्तुऔ उसका उन्हेंप बोध नही है ।

अनीता भारती एक और उदाहरण प्रस्तुहत करती हैं और कहती हैं - 'मैंने कफ़न कहानी की दलित नायिका बुधिया की पीड़ा से दलित महिलाओं की पीड़ा को जोड़कर दिखाया तो इससे दलित साहित्यहकारों के अहम पर चोट लग गयी । मेरे इस लेख के विरोध में डॉ धर्मवीर ने अपनी किताब प्रेमचंदः सामंत का मुंशी के कई पाठ मेरे दलित अस्मिता को ललकारते हुए तथा मुझ पर व्येक्तिगत आरोप लगाते हुए समर्पित कर दिए । मुझे रखैल, वेश्यार, देवदासी, गैरदलित पुरूषों के साथ खड़ी और न जाने कितने स्त्रीर विरोधी संबोधन दे मारे ।' इन कथनों, वक्ताव्यों लगता है कि कोई व्यदक्तिगत राग द्वेष है, किन्तुे इसे व्यीपक दलित समाज से जोड़ना उचित नही लगता । दरअसल दलित समाज में कुछ लोग ऐसा स्वुयं अपने को मानने लगते हैं कि उनके अनुसार समाज के सभी लोग नही चलते, उनको महत्व नही देते न ही उनके लेखन को, तो वे फतवे देना शुरू करते हैं । दूसरा कुछ प्रबुद्ध दलित समाज का प्रवक्ता खुद को मान लेते हैं । उनको लगता है कि उनके समाज की लड़कियाँ खासतौर से पढ़ी-लिखी वे शादी विवाह अपने समाज में ही करें। अगर वह इतिहास में शताने वाली वर्चस्व वादी जातियों में शादी-विवाह करती हैं तो इन प्रबुद्ध लोगों की आलोचना का पात्र बन जाती हैं, जबकि यह गलत है । किसी भी समाज की लड़की हो, शादी-विवाह करना उसका निजी मामला है चाहे वह जिस भी समाज के व्यनक्ति से करें, स्वीयं मठाधीश मानकर फतवा देना, आलोचना करना उचित नहीं ।

अनीता भारती सवाल खड़ा करती हैं - 'क्यास दलित स्त्रियों की अस्मिता किसी गैर दलित स्त्री की अस्मि?ता से कम होती है ? जब एक सवर्ण लेखिका पर हमला हुआ तो सारी लेखक बिरादरी इकठ्ठी हो गई पर जब दलित लेखिकाओं पर हमले हो रहे हैं तो सब चुप्पीर मार कर बैठे रहे ?' क्योंह बैठे रहे ? क्याअ दलित समाज अपनी स्त्रियों या अपने मान-

अपमान, आत्मतसम्मायन के प्रति सचेत नही हैं या वे अनीता भारती को गैरदलित से शादी-विवाह करने से उन्हें अपना ही नहीं समझते ? अनीता भारती ने जिन दलित साहित्यरकारों पर प्रश्नद उठाए कि वे दलित स्त्रीी लेखिका के चरित्र पर कीचड़ उछालते हैं क्या् ये उन्हींी लोगों द्वारा दी गई व्या्ख्यो का सरलीकरण नहीं हैं ? क्याि ये वही दृष्टि नहीं है कि ये लोग कफन कहानी की नायिका के पेट में पल रहे बच्चौ को गैरदलित का बच्चाा समझकर घीसू माधव को इस तथ्य की जानकारी होने का दावा करते हैं ओर उनकी उदासीनता को सही ठहराते हैं ? अनीता भारती फिर लिखती हैं - 'आखिर ऐसा क्योंक होता है कि दलित महिलाएँ तो सबके साथ जुड़ जाती हैं पर दलित महिलाओं के साथ कोई नही जुड़ता । सवाल है ये कौन सी ऐसी विचारधारा या सोच हैं जिसके कारण दलित महिलाओं के मुद्दे, समस्याईओं व विषय पर सब चुप्पीक लगा जाते हैं ।' इस दृष्टि के पीछे क्या मानसिकता है ? क्यौ दलित समाज दलित साहित्यैकारों, लेखकों या बुद्धिजीवियों के साथ अपने को जुड़ा नहीं पाता है ? क्याा दलित बुद्धिजीवी स्व यं को बड़ा दिखने-दिखाने के चक्क र में शेष समाज से कट जाता है या उसके साहित्यज में उसकी निजी कुंठा की अभिव्यलक्ति है जिससे शेष समाज

का कोई लेना-देना नहीं है या दलित समाज पूरी तरह शिक्षित, जागरूक नही है इसलिए किसी भी मुद्दे पर संगठित नहीं हो पाता? या वह अपनी जातियों-उपजातियों के दलदल में धँसा हुआ है, बिखरा हुआ हैं । या वह अपने समाज की स्त्रियों को अपना उपनिवेश समझता है इसलिए नहीं आगे आता है ? या फिर दलित स्त्रील गैर दलितों के इशारे पर काम करती है, अपने ही समाज से बगावत करती है इसलिए दलित समाज उनके प्रति खड़ा नही होता । ये सारे प्रश्नम चिंतन और विश्लेहषण की माँग करते हैं ।

अनीता भारती ने कुछ और प्रश्नन उठाए हैं और इन प्रश्नोंम का जवाब भी पाना चाहती हैं शायद उनसे जो लोग दलित सक्रिय स्त्रियों को जारकर्मी का प्रमाण पत्र देते हैं । उनका कहना है कि जिन संयुक्तत परिवार में बहुओं को पेटभर खाना नसीब नहीं होता, अपनी पसंद का खाना उन्?हें नहीं मिलता जिसके लिए तरस जाता हैं, उन्हेंा अपनी इच्छा ओं को मारना पड़ता हैं । या फिर वे लड़कियाँ जो अपने माँ-बाप द्वारा शादी के नाम पर किसी दूसरे के हाथों गाय-भैंस की तरह बाँध दी गई हों और शादी के बाद उनकी कोई सुन्धि लेने वाला न हो । कोई प्यारर करने वाला, उसकी चिंता करने वाला न हो तो वह अपने ऊपर होने वाले अन्याकय, शोषण और अपमानका बदला कैसे चुकाएँ? वह भी एक परंपरागत परिवार में जहाँ बहुओं की हैसियत एक कमाऊं नौकरानी या दासी से कम नहीं होती या जिन घरों में पति शराबी, अनपढ़, गवाँर और जाहिल होते हैं और उसे बाहर खदेड़ कर जेठ हथिया लेता है क्यों कि पत्नीर और बच्चोंप की पेट की आग पति नहीं शांत कर पाता है, उसका फायदा जेठ उठाता है। उस स्थिति में वह किससे बदला ले ? कैसे जीए ? अथवा उन परिवारो में जहाँ पति निहायत शराबी हैं, मारता-पीटता है और अपने घर में अनेक दोस्तों को रखता है और दोस्तोंथ की नज़र उसकी पत्नीं पर होती है और उस बेवड़े को कोई फर्क नहीं पड़ता । या कुछ परिवार ऐसे हैं जहाँ पति परदेश कमाने चला गया है न कोई चिठ्ठी न संदेश, घर खर्च के लिए कुछ नहीं भेजता, बच्चे के साथ पत्नीा कैसे जीवन-यापन करे ? कुछ मूर्ख बेवड़े ऐसे हैं जो अपनी पत्नियों को अपने दोस्तोंन के साथ सोने को मजबूर करते हैं, ऐसी स्थितियों से तंग आकर वे औरतें गलत रास्तेत पर चली जाती हैं, कोठे पर चली जाती हैं, दूसरों की गुलाम बन जाती है । ऐसी स्थिति के लिए कौन जिम्मे दार है ? दलित पुरूष या स्त्री ? क्याअ कभी ये फर्जी दलित साहित्यककार जो दलित स्त्रियों को जारकर्मी का प्रमाणपत्र बाँटते हैं उन स्त्रियों के बारे में सोचते हैं, उनके लिए कुछ करते हैं ? ध्यादन रहे इस तरह की स्त्रियों की इन स्थितियों के पुरूष पितृसत्तात्मतक व्यकवस्थोएँ ही जिम्मोदार है। स्त्रीत को उसके स्वततंत्र व्य क्तित्वं की पहचान नहीं बनने देते, उनकी स्वंतत्रता के प्रबल विरोधी होते हैं । ये स्वपयं पितृसत्ता के गुलाम और उसके पोषक हैं और दलित स्त्रियों की स्वीतंत्रता इन्हेंप रास नहीं आती, समाज के लिए कुछ करने की बजाय ये दूसरों का चरित्र हनन करते रहते हैं और अपनी चाटुकारिता की आदत से पद, प्रतिष्ठो पाने की ललक में दूसरों की चरणचापी करते हैं और पूरे दलित समाज का प्रवक्ताआ बने समाज की दलाली करते हैं।

मिथिलेश्वर के उपन्यासों में बदलते ग्रामीण जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति

अनूप कुमार

शोधार्थी, हिन्दी साहित्य
हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
इलाहाबाद विश्विद्यालय, प्रयागराज-उत्तर प्रदेश
ई-मेल.anu9699406@gmail.com
संपर्क-९३५४९५७५६२

मिथिलेश्वर ग्रामीण अंचल के रचनाकार हैं। उनके उपन्यासों की कथावस्तु बिहार के भोजपुर जिले से संबंधित गाँवो की कथा है। इनके उपन्यासों की कथानक इसी भोजपुरी अंचल में रहने वाले लोगों की कथाओं से निर्मित हुआ है। मिथिलेश्वर के उपन्यासों में सामजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति बड़े ही सशक्त रूप में हुई है। यह सामाजिक यथार्थ मिथिलेश्वर के भोगे हुए अनुभव से निर्मित हुआ है। यही कारण है कि मिथिलेश्वर कथा तो बिहार के किसी अंचल विशेष की करते हैं,किन्तु उसका सामाजिक और राजनीतिक संदर्भ उस दौर में घटित होने वाली घटनाओं से संबंधित होता है।

मिथिलेश्वर के उपन्यासों में जो ग्रामांचल है, वह स्वातंत्र्योत्तर भारत के बदलते हुए ग्रामांचल है। जहाँ वर्ग-संघर्ष, सयुंक्त परिवार का विघटन, भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था, बेरोजगारी की समस्या, जाति व्यवस्था, नैतिक मूल्यों का पतन आदि तमाम सामाजिक कुरीतियाँ समाज में व्याप्त हैं। मिथिलेश्वर अपनी आधुनिक संवेदना की अभिव्यक्ति के लिए ग्रामांचल को चुनते हैं, क्योंकि वह उनका अपना भोगा हुआ यथार्थ है।

भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में आज़ादी के बाद तेजी से बदलाव देखने को मिलते हैं। यह परिवर्तन चाहे सामाजिक हो या राजनीतिक दोनों ही स्तरों पर यह बदलाव देखा जा सकता है। मिथिलेश्वर के उपन्यासों में वर्ग-चेतना की अभिव्यक्ति प्रमुखता से हुई है। मिथिलेश्वर के उपन्यासों में जो जातीय संघर्ष है, वह दरअसल वर्ग संघर्ष ही है। 'यह अंत नहीं' उपन्यास में मिथिलेश्वर भोजपुर के तीन गाँव 'खवासडीह', 'पहाड़पुर' और 'रघुनाथपुर' को आधार बनाकर बिहार के ग्रामीण अंचल की यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं। 'खवासडीह' गाँव बड़टोली और कहारटोली में विभाजित है। इस गाँव में बड़टोली वालों की संख्या अधिक है, जिस कारण इनका दबदबा कहरटोली वाला पर बना रहता है। वहीं पहाड़पुर में पिछड़ो की जनसंख्या आधिक थी, जिस कारण उनका दबदबा अधिक था। रघुनाथपुर में अगड़ों और पिछड़ों की आबादी बराबर थी। इसलिए वहाँ दोनों वर्गों में तनाव बना रहता था।

जातियों में विभाजित गाँवों की जो वर्ग-चेतना उभर के सामने आती है वह कुछ इस प्रकार है- 'गाँवों में वर्ग-चेतना और जाति-चेतना दोनों उभार पर हैं। प्रत्येक जाति की अपनी हथियारबंद सेना है। खूनी संघर्ष से घबराकर लोग शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। सभी में असुरक्षा का भाव है। राजनीति दिशाहीन हो गई है। वर्ग-चेतना का कोई वैचारिक आधार नहीं है। चुनावों में जातिवाद, गुंडागर्दी और बूथ कब्जा का बोलबाला है। दलित चेतना भी उभरने लगी है। बिहार के गाँव अब 'नागार्जुन' या 'रेणु' के गाँव नहीं है। गाँवों में अब सभी तरह के अंतर्विरोध खुलकर सामने आ गए हैं। विशेष बात यह है कि अब दलित और शोषित बचाव की मुद्रा में नहीं प्रतिरोध की स्थिति में आ गए हैं।'१

अब समय बदल रहा है। वह समय गया जब शोषक वर्ग मजूदरों और दलितों की बहन-बेटियों पर अत्याचार करते थे और शोषित वर्ग मूक बन कर सब कुछ सहता रहता था। किन्तु अब ग्रामीण समाज में प्रतिरोध की संस्कृति जन्म ले रही है, जो मजदूरों और दलितों द्वारा समाज के प्रभु वर्ग के विरूद्ध मुखर रूप से जवाब दे रही है। यह 'अंत नहीं' उपन्यास में कहार टोली की चुनिया जो कि श्रवण सिंह के यहाँ नौकरानी का कार्य करती है। श्रवण सिंह का लड़का अगम जब उसका बलत्कार करने की कोशिश करता है तो चुनिया इसका न सिर्फ विरोध करती है, अपितु अपनी आत्म रक्षा में अगम को बुरी

तरह घायल भी कर देती है। निम्न जाति की लड़की का पूँजीपति के विरुद्ध प्रतिकार की भावना गाँव के बदलते सामाजिक चेतना का परिचायक है। चुनिया का यह रौद्र रूप देखकर-

'क्षण-भर के लिए श्रवण सिंह की आँखों में भी खून उतर आया। उनकी नौकरानी और उनके बनिहार की बेटी की यह मजाल ? ऐसे बिगड़ैल परजा- पवनियों की खाल उधेड़ उनके पुरखे उसमें भूसे भरवाते थे। उनके बेटे ने इसे छेड़ ही दिया तो क्या हो गया ? ऐसी नौकरानियों को तो उनके बाप-दादे विधिवत रखैल बनाकर रखते थे। लेकिन बदल गए समय को ध्यान में रखकर श्रवण सिंह ने अपने गुस्से को काबू में कर लिया।'२

यहाँ श्रवण सिंह की उस सामंतवादी मानसिकता को दिखाया गया है, इनके लिए गरीब की बेटी मात्र उपभोग की वास्तु है। श्रवण सिंह जैसे सामंतवादी मानिसकता के लोगों को अपने धन और बाहुबल का इतना अधिक अहंकार है कि समाज में कोई भी कुकर्म करने से बाज नहीं आते। आज भी ऐसे लोग समाज में मौजूद है, जिनके अन्दर सामंतवादी मानसिकता विद्यमान है। मिथिलेश्वर अपने उपन्यास में चुनिया और जोखन जैसे दबंग चरित्रों का सृजन कर पिछड़ी जाति के वर्ग-चेतना को मजबूती से अभिव्यक्त किया है। दोनों पति-पत्नी विपरीत परिस्थितियों में भी एक-दूसरे का साथ नहीं छोड़ते हैं। जोखन साहसी तो है ही, साथ ही समझदार भी है। संगठन की शक्ति को अच्छी तरह पहचानता है। यही कारण है कि जब चुनिया के पिता पर बड़टोली वाले अत्याचार करते हैं और उसे जान से मारने की धमकी देते हैं। तो जोखन उन्हें समझता है कि बरटोली के अत्याचारों से डरना नहीं है, बल्कि उनके विरुद्ध पुलिस केस करना होगा जोखन के कहने पर चुनिया का पिता नरोत्तम अगले ही दिन गाँव के दोषियों के विरुद्ध पुलिस में मुकदमा करता है। इस मुकदमे का इतना असर होता है कि बड़टोली वाले पंचनामा लिखकर सुलह कर लेते हैं। इस तरह साहस और समझदारी से चुनिया का परिवार सुरक्षित रहता है।

अब गाँव मे सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ राजनीतिक परिवर्तन भी देखने को मिल रहे है। एक समय था जब राजनीति में पूंजीपतियों और ज़मीदार वर्ग के ही लोग जाते थे, क्योंकि यह वर्ग सामाजिक और आर्थिक रूप से मजबूत वर्ग था। किंतु अब समय बदल रहा है। अब सामाजिक रूप से पिछड़ी जाति के लोगों का भी राजनीति में भागीदारी देखने को मिल रही है। उपन्यास में यह देखने को मिलता है कि कहार टोली का ललन कहार गाँव के मुखिया का चुनाव में विजयी होता है जो कि पिछड़े वर्ग से है। राजनीतिक समीकरण अब तेजी से बदल रहे हैं। जाति आधारित राजनीति ने पिछड़ी जातियों को भी सत्ता में आने का अवसर दिया है। किंतु अक्सर देखा जाता है कि पिछड़ी जाति का व्यक्ति प्रभु वर्ग के सहयोग से सत्ता में आ तो जाता है, लेकिन वह पूरी तरह से उसी प्रभु वर्ग या शोषक वर्ग का पिछ्लू बन कर रह जाता है। सत्ता की शक्तियों का प्रयोग शोषक वर्ग अपने लाभ के लिए करता है और जिस पद पर पिछड़ी जाति का व्यक्ति बैठा है वो मात्र रबड़ स्टंप बन कर रह जाता है। स्वतंत्र रूप से कोई कार्य नहीं कर पाता।

मिथिलेश्वर जहाँ 'यह अंत नहीं' उपन्यास में सामाजिक यथार्थ और वर्ग- चेतना की बात करते हैं, तो वहीं एक अन्य उपन्यास 'सुरंग में सुबह' के माध्यम से भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था और नेताओं के शोषणकारी शासन व्यवस्था की पोल खोलते हैं। 'सुरंग में सुबह' मिथिलेश्वर का पहला राजनीतिक उपन्यास है जो भ्रष्ट लोकतांत्रिक व्यवस्था और स्वार्थ लोभ प्रवृत्ति के राजनीतिक दलों का चित्रण करती है। इस उपन्यास में भी दो वर्ग देखने को मिलते हैं। पहला वर्ग जानता है जिसका प्रतिनिधित्व जनार्दन करता है। जो की कथा नायक भी है। दूसरा वह वर्ग है जो राजनीतिक शासन व्यवस्था में बैठा है जिसके प्रतिनिधित्व राव मानवेंद्र बाबू करते हैं। कथाकार ने जहाँ जनार्दन के माध्यम से भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था को स्थापित करने का प्रयास किया है, तो वहीं मानवेंद्र जैसे भ्रष्ट नेताओं को बेनकाब करने का कार्य भी किया है।

यह उपन्यास उन राजनेताओं के असली स्वरूप को भी उजागर करती है जो राजनीति में समाज सेवा के नाम पर आते हैं। किंतु जैसे ही एक बार सीट मिल जाती है वह अपनी स्वार्थपूर्ति और भ्रष्टाचार में लग जाते हैं। राव मानवेंद्र बाबू ऐसे ही नेता है। जो अपने को तो जनता का सेवक बताते हैं किंतु अंदर से वह बहुत ही स्वार्थी और भ्रष्ट किस्म के नेता है। पार्टी में अध्यक्ष पद पाने के लिए वह किसी भी हद तक जाने के लिए तैयार हैं। यहाँ तक की अपनी बेटी का भी प्रयोग करते हैं। पार्टी के अपने प्रतिद्वंदी नेता आर.अंडमान को खुश करने के लिए अपनी बेटी द्वारा यौन संबंध बनाने पर भी कोई एतराज नहीं करते। एक तरह से अध्यक्ष पद के लिए वह सभी नैतिकता और इज्जत को ताक पर रख देते हैं।

सत्ता दल राजनीति में बने रहने के लिए अमानवीय कृति करने से भी नहीं डरते। हिन्दू-मुसलमानों में सांप्रदायिक दंगा भी कराते हैं और दंगों के बाद जनता के बीच जा कर सहानुभूति में मगरमच्छी आँसू भी बहाते है, जो कि एक ढ़ोंग होता है। उपन्यास में एक जगह प्रसंग आता है कि काशी में

हिंदू-मुसलमानों में सांप्रदायिक दंगे हो गए हैं। जिसे शांत करने के लिए पार्टी आलाकमान अपने लोकप्रिय नेता मानवेंद्र बाबू को काशी भेजती है। दंगा शांत करवाने में मानवेंद्र सफल होते हैं। लेकिन बड़ी बात यह होती है कि इस दंगे को सुनियोजित ढंग से मानवेंद्र बाबू के पार्टी ने ही करवाया होता है। अपनी राजनीतिक जमीन को मजबूत बनाने के लिए यह राजनीतिक दल किसी भी हद तक जा सकते हैं। चुनाव से पहले इस तरह के दंगे एक साजिश के तहत करवाये जाते हैं। एक नेता के कथन से इस बात की पुष्टि होती है कि यह दंगा सुनियोजित तरीके से करवाया गया है- ' इस शहर में पार्टी की साख कमजोर हो गई थी। ऐसा कुछ नहीं होता तो यहाँ से हमारा जनाधार समाप्त हो जाता। इस घटना के बाद अब फिर यहाँ हमारा रूतबा कायम हो गया है।'३

मिथिलेश्वर ने सांप्रदायिकता का मुद्दा उठाकर वर्तमान राजनीति की और संकेत किया है, कि किस प्रकार राजनीतिक दल सत्ता में आने के लिए आम-जन के जीवन से खिलवाड़ करते हैं। और चुनाव जीतने के लिए दंगे जैसे अमानवीय कृत्य करने से भी पीछे नहीं हटते। उनका एकमात्र लक्ष्य होता है सत्ता। चाहे उसके लिए कुछ भी करना पड़े। सांप्रदायिकता लोकतंत्र के लिए बहुत ही खतरनाक है। प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक मैनेजर पाण्डे 'सुरंग में सुबह' उपन्यास में लोकतंत्र के संकटों की पहचान के माध्यम से अपना विचार रखते हुए लिखते हैं-

'साम्प्रदायिकता इस देश के लोकतंत्र के लिए बड़ा खतरा है। साम्प्रदायिकता के तहत दंगे कैसे प्रायोजित होते हैं, उपन्यास में वर्णित काशी के दंगे के प्रसंग में स्पष्ट देखा जा सकता है। तब यह साफ दिखाई देता है कि सूचना तंत्र के सारे विकास के बावजूद झूठ जीत गया। अब यह लोकतंत्र अगर झूठ और लूट का ही तंत्र है तो वह किसी तंत्र का विकल्प नहीं हो सकता, बल्कि उसके विकल्प को खोजना बहुत जरूरी है झूठ और लूट के बिना पूँजीवाद चल नहीं सकता और जीस लोकतंत्र का आधार पूँजीवाद होगा वह लोकतंत्र झूठ और झूठ से मुक्त नहीं हो सकता।'४

लोकतंत्र इस देश की आत्मा है। आज़ाद भारत की संकल्पना है। जिस लोकतंत्र में गरीब, मजदूर, हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई सभी धर्मों और जातियों के लोगों को समान अधिकार देने की बात कही गई है। आज वह कुछ चंद पूंजीपतियों और नेताओं के हाथों का तमाशा बन कर रह गया है। आज भ्रष्ट शासन व्यवस्था अपने स्वार्थलोलुप्ता में लोकतंत्र की रोज हत्या कर रहे हैं।

निष्कर्ष

अंतः यह कहा जा सकता है कि मिथिलेश्वर अपने उपन्यासों में जो बदलते हुए सामाजिक व्यवस्था और लोकतांत्रिक मूल्यों के विघटन का जो चित्रण किया है वह बहुत ही चिंतनीय है। मिथिलेश्वर अपने कथा-साहित्य में समाज में हो रहे सामजिक परिवर्तन को चित्रित करने में सफल हुए हैं। कथा साहित्य में सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में प्रसिद्ध कहानीकार राजेन्द्र यादव लिखते हैं- 'कथा-साहित्य में सामाजिक परिवर्तन का अर्थ घटनाओं और स्थितियों के ब्यौरों से नहीं उनके दबावों में बदलते हुए मानसिक और आपसी सम्बन्धों से है, चीज़ों और लोगों के प्रति हमारे बदलते हुए सहज रवैये से है। वहीं रचना व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों स्तरों पर प्रमाणिक हो पाती है। इसलिए कोई भी कहानी या उपन्यास तभी सार्थक या समय के साथ है जब वह हमें आपसी सम्बन्धों को नए सिरे से सोचने को बाध्य करे, या स्वीकृत सम्बन्धों को अनदेखे आयाम खोले।'५

मिथिलेश्वर के उपन्यासों में मात्र घटनाओं के ब्यौरों नहीं है बल्कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में लोक और सत्ता के बीच बदलते सम्बन्धों की एक पृष्ठभूमि है। हमें उन तमाम घटकों का अधययन करना होगा जो की सामाजिक बदलाव के कारक है। मिथिलेश्वर अपने उपन्यासों के माध्यम से एक दृष्टि देते हैं कि समय के साथ बनते-बिगड़ते संबंधों की पड़ताल करता है।

सन्दर्भ सूची

१. तिवारी,डॉ.रामचन्द्र.(२०२२).हिन्दी का गद्य-साहित्यःविश्वविद्यालय प्रकाशन.पृष्ठ संख्या-३१४

२. मिथिलेश्वर.(२०१३).यह अंत नहीं.नई दिल्लीःकिताबघर प्रकाशन. पृष्ठ संख्या-३८

३. मिथिलेश्वर.(२००६).सुरंग में सुबह.नई दिल्लीःभारतीय ज्ञानपीठ. पृष्ठ संख्या-५०

४. (सं) कुमार,कृष्ण.(२०१६).उपन्यास की जमीन.नई दिल्लीःविजया बुक्स पृष्ठ संख्या-१७

५. यादव,राजेन्द्र.(२०२०).उपन्यास स्वरूप और संवेदना.नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन.पृष्ठ संख्या-१४

’हल्दीघाटी’ और ’जौहर’ के आईने से श्यामनारायण पाण्डेय का स्वातंत्र्य चिंतन

अमन वर्मा (दीप अमन)

शोधार्थी, हिंदी विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय
मोबाइल- ९३६९९४२२४५६
ईमेल- kaviamandeep@gmail.com

हिंदी काव्य परंपरा में श्यामनारायण पाण्डेय का काव्य अविस्मरणीय है। उनकी काव्य रचना का प्रारंभ स्वतंत्रता से पूर्व हुआ अतएव उनकी रचनाओं में स्वाधीनता के प्रति आग्रह दिख जाता है। हालांकि यह आवश्यक नहीं है कि स्वातंत्र्य पूर्व लिखे गए सभी काव्य स्वतंत्रता के प्रति आग्रही रहे ही हों, किन्तु राष्ट्र के प्रति चिंतन रखने वाला कवि मन कैसे न स्वतंत्रता के विषय में सोचे यह प्रश्न जरूर पाठकों के सम्मुख खड़ा होता है। कविवर श्यामनारायण पाण्डेय अपनी ऐसी ही छवि प्रस्तुत करते हैं जिसमें उनका राष्ट्र के प्रति चिंतन, राष्ट्रीय गौरव का बोध और संस्कृति के प्रति सहृदयता बसी हुई हो। उनके लगभग छह दशक के रचनाकाल का कुछ हिस्सा स्वाधीनता के पूर्व गुजरा। स्वतंत्रता पूर्व के उनके रचनाकाल में उनकी चार रचनाएँ प्रकाशित हुई। त्रेता के दो वीर उनकी पहली काव्यकृति है जिसका प्रकाशन १९२८ ई. में हुआ। यह कृति लक्ष्मण और मेघनाद को केंद्र में रखकर रची गयी जिसमें दोनों की वीरता चित्रित है। इस कृति का प्रकाशन बाद में ’तुमुल नाम से किया गया। इसके उपरांत उनकी सर्वाधिक चर्चित कृति हल्दीघाटी प्रकाशित हुई। इसका प्रकाशन १९३९ में किया गया। यह कृति श्यामनारायण पाण्डेय के काव्य चर्चा का आधार बनी। यही वह कृति है जो श्यामनारायण पांडेय को स्वातंत्र्य चिंतक कवि की श्रेणी में आगे खड़ा करती है। ’हल्दीघाटी के बाद प्रकाशित उनकी एक अन्य कृति ’जौहर’ ने उनके यश को और अधिक उज्जवल किया। यह उनकी स्त्री पात्र को केंद्र में रखकर रची गयी पहली पुस्तक थी। जौहर का प्रकाशन १९४४ ई. में हुआ जो स्वातंत्र्य संघर्ष काल में रची गई। स्वाधीनता के युग में ही उनकी एक अन्य कृति आरती’ प्रकाशित हुई। आरती का प्रकाशन १९४६ में हुआ। फिलहाल इस लेख में उनके प्रबंध काव्य ’हल्दीघाटी और जौहर के आधार पर उनकी स्वतंत्रता विषयक अवधारणा और जनजागरण को केंद्र में रखा गया है।

हल्दीघाटी और जौहर दोनों ही काव्यकृतियों श्यामनारायण पाण्डेय के रचना संसार की अनमोल धरोहर हैं। हल्दीघाटी में उन्होंने स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत महाराणा प्रताप के जीवन चरित पर प्रकाश डाला है जिसमें उन्हें स्वाभिमान से समझौता न करने वाला और स्वतंत्रता प्रेमी दर्शाया गया है। उन्होंने घास की रोटी खाना स्वीकार किया किंतु स्वाभिमान से कभी समझौता नहीं किया। स्वतंत्रता संघर्ष काल में उन्होंने ऐसा काव्य रचकर भारतवासियों को महाराणा के जीवन से प्रेरणा प्राप्त करने का संदेश दिया है। राणा प्रताप के समय भी कमोवेश यही स्थिति थी जो स्वतंत्रता पूर्व भारतीयों के साथ राणा प्रताप का प्रतिद्वंद्वी ’अकबर’ जैसा विशाल साम्राज्य का सम्राट था तो भारतीयों के समक्ष कभी अस्त न होने वाले सूर्य के साम्राज्य के स्वामी ब्रिटिश राणा प्रताप के सम्मुख मुश्किलें आई किंतु वे डटकर लड़े और अंततः अपने राज्य को अपने अधिकार में कर लिया। इसी प्रकार यह काव्य भारतीयों के लिए भी प्रेरणा बना। हल्दीघाटी के संदर्भ में डॉ विजयानंद लिखते हैं- ’सम्पूर्ण हिन्दुस्तान आजादी की जंग का मैदान बना हुआ था। हर तरफ गौरी सरकार के अत्याचार का मुकाबला हो रहा था...। ऐसी स्थिति में बाहु बाहु में जोश भरने की आवश्यकता थी। रोम रोम को जागृत करने की जरूरत थी। ऐसी स्थिति में ’हल्दीघाटी’

लेकर कवि रणभूमि में इस तरह उतरे, जिस तरह कभी हल्दीघाटी की रणस्थली में मेवाड़ नरेश महाराणा प्रताप चेतक पर सवार, हाथ में नंगी तलवार लेकर उतरे थे।'१

लगभग यही स्थिति 'जौहर के साथ भी रही जौहर में चित्तौड़ की महारानी पद्मावती को नायिका के रूप में रखकर उन्होंने इस काव्य की रचना की महारानी पद्मावती ने भी स्वतंत्रता के लिए खुद को कुर्बान कर दी। अलाउद्दीन खिलजी ने जब चित्तौड़ पर आक्रमण किया और रत्नसेन मारा गया तब खिलजी की इच्छा पद्मावती को प्राप्त करने की थी किंतु पद्मावती को यह स्वीकार नहीं था कि उसकी देह को खिलजी हाथ भी लगाए। अतएव पद्मावती ने चित्तौड़ के किले में ही हजारों स्त्रियों के साथ जौहर कर लिया पद्मावती को भी स्वतंत्रता प्रिय थी किन्तु किसी के आधीन रहकर वह सुख से जिये, यह उसे स्वीकार नहीं था। डॉ. विजयानंद इस काव्य के बारे में लिखते हैं- 'इस महाकाव्य का करुणा से परिपूर्ण वह परिक्षेत्र है, जब खिलजी से पराजय के उपरांत चित्तौड़ के राजभवन की औरतें आत्मोत्सर्ग करती हैं, अपने आप को आग के अम्बार में झोंक कर निःस्वार्थ भाव से अपना जौहर कर डालती हैं, चूंकि ये सब दकियानूसी परम्परायें हिन्दू संस्कृति में व्याप्त थीं, अतएव यही उनके विनाश का हिंसात्मक कारण बनी।'२ महाराणा प्रताप पर काव्य रचना के पश्चात जब एक मंच पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उनका काव्यपाठ सुना तो उन्हें किसी स्त्री पात्र की वीरता को केंद्र में रखकर रचना करने की सलाह दी जिसे श्यामनारायण पाण्डेय जी ने स्वीकार कर लिया रामचंद्र शुक्ल की इसी सलाह का मान रखते हुए उन्होंने 'जौहर' प्रबंध काव्य की रचना की। श्यामनारायण पाण्डेय के पूर्व स्वतंत्रता संग्राम को आंदोलित करने वाला काव्य रचा जा रहा था। इसमे भारत भारती का उल्लेख प्रमुख है। डॉ वेदप्रकाश उपाध्याय लिखते हैं- 'राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की भारत- भारती' को 'जौहर' महाकाव्य का प्रेरणा स्रोत माना जा सकता है। कई स्थानों पर पाण्डेय जी ने स्वीकार किया है कि उनके आदर्श अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध रहे है इसीलिए भारत भारती पर लगाये गए प्रतिबंध का विद्रोहात्मक स्वर 'जौहर में जगह- जगह - प्रस्फुटित हुआ है। भारत में ही 'भारत भारती का यह अपमान संभवतः 'जौहर' के प्रणयन का कारण बना।'३

श्यामनारायण पाण्डेय के इन दो काव्यों में से पहले प्रकाशन हल्दीघाटी का हुआ। हल्दीघाटी के विषय में स्वयं श्यामनारायण पाण्डेय बताते हैं कि इसकी रचना में सात वर्ष लग गए। जिस प्रकार राणा प्रताप ने हल्दीघाटी का समर लड़ा था उसी प्रकार पाण्डेय जी ने भी स्वतंत्रता के समर हेतु अपनी काव्य कृति से अपनी आहुति दी। अपने नायकों की स्वातंत्र्य प्रियता, स्वाभिमान जीविता और वीरता के चित्रण से आम जनमानस में उत्साह का प्रसार भी स्वाधीनता आंदोलन में उनका योगदान ही तो है। हल्दीघाटी को पढ़कर लोगों की स्वाधीनता के प्रति चाहत और बढ़ती गई। इसका परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजी सरकार ने इसे जब्त कर लिया, फिर भी लोग चोरी-छिपे इसे पढ़ते रहे हल्दीघाटी की भूमिका पाण्डेय जी का यह कथन 'मैने साहित्य देश धर्म की क्या सेवा की, मैं नहीं कह सकता। यह तो तू ही बता सकता है कि मेरी 'हल्दीघाटी और तेरी 'हल्दीघाटी' में क्या अंतर है।'४ इसी प्रकार भूमिका में ही उनका यह कथन कि 'वाह री स्वतंत्रते! तुझमें कितना आकर्षण है, तू अभी कितनी दूर है।'५ उनके निजी मन की पीड़ा है।

श्यामनारायण पाण्डेय हल्दीघाटी का प्रारंभ राणा प्रताप और उनकी स्वातंत्र्य प्रियता को नमन करते हुए करते हैं। राणा प्रताप को नमन करते हुए उन्होंने उनकी यशगाथा को आगे बढ़ाया है। उन्हें अकबर कालीन और स्वातंत्र्य पूर्व देश की स्थिति एक जैसी प्रतीत होती है। मुगलकाल का सबसे प्रभावशाली शासक अकबर, जिसके पास सेना सहित युद्ध जीतने के पर्याप्त संसाधन थे, उसके साथ राणा प्रताप का युद्ध होना कोई मामूली बात नहीं थी। पहले तो यही अनुमान लगाया जा सकता था कि राणा की हार ही होगी। ऐसा हुआ भी किन्तु अंततः उन्होंने विजय प्राप्त की। यही स्थिति पाण्डेय जी के समकाल में थी। भारत में अंग्रेजों का अधिकार था, जिनसे भारतीय मुक्ति पाना चाहते थे। कहते हैं, अंग्रेजों का साम्राज्य इतना विस्तृत था कि उनके राज्य में कभी सूर्य अस्त नहीं होता था श्यामनारायण पाण्डेय इसी स्थिति को अकबर के साथ जोड़कर लिखते हैं-

'सबसे अधिक राज विस्तार
धन का रहा न पारावार
राज-द्वार पर जय-जयकार

भय से डगमग था संसार'६

हल्दीघाटी में राणा को माध्यम बनाकर वे खुद अपनी भी बात कह देते हैं। स्वतंत्रता प्रेमियों को संबोधित करते हुए उन्होंने सेनानियों को सब कुछ बलिदान करने का आह्वान किया है। नेताजी सुभाष चंद्र बोस की तर्ज पर (तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा) उन्होंने देशवासियों से आत्म- त्याग करने की अपील की है-

'संदेश यही उपदेश यही
कहता है अपना देश यही
वीरों दिखला दो आत्म-त्याग
राणा का है आदेश यही।'७

श्यामनारायण पाण्डेय स्वाधीनता प्राप्ति के लिए चिंतित दिखाई देते हैं। वे स्वाधीनता प्राप्ति का हर जतन करना चाहते हैं किन्तु इसके लिए सभी का सहयोग आवश्यक है। वे मानते हैं कि जिस प्रकार से भी हो, हमें स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहिए। हमें इसके लिए राणा प्रताप जैसा महान बनकर राष्ट्र के लिए कुर्बान होने की जरूरत पड़े, तो हो जाना चाहिए। वे लिखते भी हैं-

'आओ खोज निकालें यंत्र
जिससे रहें न हम परतंत्र
फूँके कान कान में मंत्र
बन जायें स्वाधीन स्वतंत्र'८

हल्दीघाटी की रचना के समय स्वाधीनता आंदोलन चरम पर था। कई क्रांतिकारी आंदोलनों के माध्यम से देश आजादी प्राप्ति के लिए व्याकुल था। इन स्थितियों में हल्दीघाटी जैसी कृति का प्रकाशन आजादी के दीवानों के लिए आग में घी का काम कर रहीं थी जलियांवाला बाग हत्याकांड, काकोरी, चौरी-चौरा और भारत छोड़ो आंदोलन जैसी घटनाओं ने भारतीयों के हृदय में स्वतंत्रता के प्रति आग पैदा कर दी थी उसे हल्दीघाटी के प्रकाशन से और हवा मिली। अंग्रेजी सरकार ने इसे जब्त भी किया तब भी यह चोरी छिपे पढ़ी जाती रही श्यामनारायण पाण्डेय के काव्य के प्रमुख अध्येता वेदप्रकाश उपाध्याय ने इस रचना के बारे में लिखा है- ''इस वीर काव्य की रचना के पीछे तत्कालीन परिवेश एवं परिस्थितियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। देश में स्वतंत्रता के युद्ध का आरम्भ हो चुका था। परतंत्रता की असह्य पीड़ा झेलते-झेलते जन सामान्य का धैर्य टूटने लगा था। आक्रांताओं की बर्बर दमनकारी नीति से मुक्ति के लिए विद्रोह का स्वर मुखरित होने लगा था . तरुणाई जाग चुकी थी। देश का दर्प और जुल्म सहने के लिए तैयार न था। इसी विषमता के बीच साहित्य की धारा अपना नया आकार गढ़ने लगी। युग के आग्रह की पूर्ति में ही 'हल्दीघाटी' जैसी अमर कृति का सृजन हुआ।'९

श्यामनारायण पाण्डेय की अन्य कृति के रूप में जौहर बहुचर्चित है जौहर में श्यामनारायण पाण्डेय ने स्त्री चरित्र को प्रधान बनाकर काव्य रचना की है। यह कृति स्वतंत्रता और स्वाभिमान के मूल्य को समझने के लिए पर्याप्त है जिस प्रकार से अलाउद्दीन खिलजी ने पद्मिनी को पाने की चाहत से चित्तौड़ दुर्ग पर आक्रमण किया तथा निज कुल और राष्ट्र के अभिमान की रक्षा के लिए पद्मिनी ने हजारों स्त्रियों के साथ जौहर कर आत्मबलिदान कर दिया, वह रेखांकित किया जाता रहा है। यह भारतीय स्वाभिमान की रक्षा के लिए दिए गए बलिदानों में से एक महत्वपूर्ण बलिदान है। श्यामनारायण पाण्डेय इसी वजह से इस भूमि को तीर्थ मानते हैं इस काव्य की शुरुआत ही पुजारी और पथिक के संवाद से शुरू होती है और पूरी रचना इसी संवाद के आधार पर चलती है। वे मानते हैं कि चित्तौड़ की भूमि इसलिए भी पवित्र है क्योंकि यहाँ की मिट्टी ने बलिदान की एक मिसाल देखी है। डॉ वेदप्रकाश उपाध्याय मानते हैं कि प्रताप के चरित्र के लेखन के बाद देश की स्त्रियों के स्वाभिमान जागरण हेतु ऐसे काव्य की आवश्यकता हुई जो उन्हें ऊर्जित कर सके। इस संदर्भ में वे लिखते हैं- 'प्रताप की वीरता की अनुगूँज नवयुवकों को तो सुनाई देने लगी, किन्तु समाज की महत्वपूर्ण कड़ी स्त्रियाँ उससे वंचित थीं, उन्हें राष्ट्रीयता की मुख्य धारा से बिना जोड़े हम स्वतंत्रता के युद्ध को नहीं जीत पाते। संभवतः इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए जौहर का प्रणयन किया गया।'१० श्यामनारायण पाण्डेय जी जौहर कृति के माध्यम से देश की स्त्रियों और बच्चों को प्रेरित करते दिखाई देते हैं। वे मानते हैं कि जहाँ स्त्रियों और बच्चों के मन में बलिदान देने का भाव हो वह भूमि स्वतः तीर्थ हो जाती है-

'सुंदरियों ने जहाँ देश हित
जौहर व्रत करना सीखा।
स्वतंत्रता के लिए लिए जहाँ
बच्चों ने मरना सीखा।।

वहीं जा रहा पूजा करने
लेने सतियों की पद- धूल ।
वहीं हमारा दीप जलेगा
वहीं चढ़ेगा माला-फूल।'११

पाण्डेय जी इतिहास की इस घटना (जौहर) पर क्षुब्ध दिखाई देते हैं। उनकी संवेदनशील लेखनी रो पड़ती है। वे भावुक हो उठते हैं वे मानते हैं कि भविष्य में इसे सुनकर लोग भी भावुक हो जाएंगे और रो पड़ेंगे। इसे सुनने वालों में ओज स्वतः ही फूट पड़ेगा। वे लिखते हैं-

'रानी की अमर कथा क्या
सुन सकते हैं सोने वाले।
पर उन्हें सुनानी होगी
जो सुन हैं रोने वाले।।'१२

वस्तुतः श्यामनारायण पाण्डेय का स्वातंत्र्य चिंतन और राष्ट्र हेतु कुछ कर गुजरने की इच्छा बड़ी प्रबल है। वे देश को जगाने का काम करते हैं। समय की जरूरतों को समझते हुए अपनी लेखनी को धार देते हैं। स्वतंत्रता के पूर्व की उनकी रचनाएँ स्वातंत्र्य चिंतन से परिपूर्ण और आम जनमानस को स्वतंत्रता हेतु आंदोलित करने के लिए पर्याप्त हैं। उनका काव्य चिंतन निश्चित रूप से सेनानियों के साथ-साथ आजादी के संघर्ष में भाग ले रहा था। कृष्णचन्द्र लाल पाण्डेय जी के दोनों काव्यकृतियों के बारे में लिखते हैं- 'हल्दीघाटी और जौहर श्यामनारायण पाण्डेय की दो विशिष्ट कृतियाँ हैं। इन कृतियों से उन्हें हिन्दी जगत् में अपार लोकप्रियता ही नहीं मिली, वरन् वीरभावना और राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के ओजस्वी कवि के रूप में स्थायी महत्त्व भी मिला। इन्हीं रचनाओं से उन्होंने अपने को आर्य धर्म और संस्कृति के वीर पुजारी और 'इतिहास में सोये हुए वीरों को पुनः जगानेवाले वीरकाव्य के अन्धड़ कवि के रूप में प्रतिष्ठित किया। इन रचनाओं से भारतीय स्वाधीनता संघर्ष के तमाम अमर सेनानियों को भी अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ते रहने और स्वतंत्रता के लिए सर्वस्व बलिदान कर देने की प्रेरणा भी मिली है।'१३

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि श्यामनारायण पाण्डेय राष्ट्रीय चिंतन धारा के प्रमुख कवि हैं। भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष को प्रभावित करने वाले साहित्यकारों में उनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। अपने नायकों से सीखकर वर्तमान को प्रेरणा देने का जो कार्य कवि ने अपनी कलम से किया है वह रेखांकित करने योग्य है।

संदर्भ सूची-

१- डॉ. विजयानंद महाकवि श्यामनारायण पाण्डेय प्रकाशक हिंदुस्तानी एकेडमी प्रयागराज- संस्करण २०१६- पृष्ठ २९

२- वही- पृष्ठ ७०

३- डॉ. वेदप्रकाश उपाध्याय भारतीय गौरव के उद्गाताः श्यामनारायण पाण्डेय प्रकाशक हिंदुस्तानी एकेडमी प्रयागराज संस्करण २०२०- पृष्ठ १२४

४- श्यामनारायण पाण्डेय- हल्दीघाटी (भूमिका) प्रकाशक इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद संस्करण २०१६ पृष्ठ ७

५- वही पृष्ठ १५

६- वही- पृष्ठ ५१

७- वही- पृष्ठ ८८

८ वही पृष्ठ १५३

९- डॉ. वेदप्रकाश उपाध्याय भारतीय गौरव के उद्गाताः श्यामनारायण पाण्डेय प्रकाशक हिंदुस्तानी एकेडमी प्रयागराज संस्करण २०२० पृष्ठ ८९

१०- वही- पृष्ठ १२२

११- श्यामनारायण पाण्डेय- 'जौहर'- विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी-संस्करण २०१९-पृष्ठ ५,६

१२- वही- पृष्ठ १८९

१३- कृष्णचन्द्र लाल भारतीय साहित्य के निर्माता श्यामनारायण पाण्डेय - प्रकाशन साहित्य अकादमी, दिल्ली- संस्करण २००० पृष्ठ ६८

नारी स्वाधीनता का संघर्ष और 'एक जमीन अपनी' उपन्यास

मनीष कुमार शुक्ला

शोधार्थी, हिन्दी विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय
मो. ८८४००६१८९०
ईमेल-maneeshau90@gmail.com

भारतवर्ष में नारी हमेशा देवी जैसे संबोधनो से उद्धृत की जाती रही है। पुरातन धर्म ग्रन्थों और पौराणिक साहित्य मे उनकी प्रशंसा तथा श्रेष्ठता को दर्शाते हुए क्या कुछ नहीं कहा गया है। उसे शक्ति स्वरूपा से लेकर के महिषासुर मर्दिनी की संज्ञा दी गई। इस बात की पुष्टि करने के लिए पुरातन साहित्य में अनेक उक्तियाँ विद्यमान हैं। जिनमे प्रमुख है -

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः' ।। (१)

इस तरह के अनेक सूत्र वाक्य वैदिक साहित्य तथा उसके बाद के साहित्य में नजर आते हैं जो नारी को समुचित आदर देने की वकालत करते नजर आते हैं तथा उनके उदात्त रूप को जन मानस के सम्मुख रखते हैं। लेकिन विचारों के परे जब हम इस बात की तस्कीद करते हैं तो पाते हैं कि वस्तुस्थिति हमेशा इसके उलट ही रही। विचारों के स्तर पर भारतीय संस्कृति जितनी उदार नजर आती है,व्यवहार के स्तर पर उतनी ही पक्षपात पूर्ण और क्रूर घटित होती है।वैचारिकता में नारी जितनी श्रेष्ठ घोषित की जाती रही यथार्थ ठीक इसके उलट रहा। एक और जहाँ उसे देवि के रूप में प्रतिष्ठित किया गया वहीं दूसरी ओर उसे नौकरानी से भी बदतर व्यवहार किया गया। पग पग पर उसे अपमानित होना पड़ा। आँसू तो छोडि़ये खून के घूँट पीकर रह जाना पड़ा। सीता से लेकर द्रोपदी और आज तक यह परम्परा अपने नग्न रूप में विद्यमान है। इसी नारी स्थिति को देखकर ही मैथिली शरण गुप्त फूटकर कह उठते हैं -

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी
आँचल में है दूध और आंखों में पानी (२)

इस तरह की दुःखद स्थितियों के समानांतर प्रतिरोध के स्वर भी फूटते रहे हैं। जिसने सदियों से पद दलित स्त्री चेतना को मुखर करते हुए समय समय पर पुरुषों के वर्चस्व वाले इस समाज की चूलें हिलाकर रख दीं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समय समय पर संघर्षरत महिलाएं मशाल का रूप धारण कर सम्मुख आईं। जहाँ एक ओर सावित्री बाई फुले ने शिक्षा के क्षेत्र में लाखों विपत्तियाँ का सामना करते हुए समाज के उपहास को पचाकर स्त्रियों को शिक्षित किया वही दूसरी ओर फूलन देवी, कुसुमा नाइन, गुल्लो बेडि़नि निडर योद्धाओ ने पुरुषों के वर्चस्व रूपी ताबूत पर अंतिम कील ठोकी। संघर्ष की ये कथाएँ आज भी भारत वर्ष के कोने कोने में फैली हुई हैं।

शिक्षा के प्रचार प्रसार से उसे एक नई सोच मिली है। जिससे वह आत्मनिर्भर होने के लिए प्रयास कर रही है। जिसकी प्रथम सीढ़ी आर्थिक स्वलंबता है और इसी से नारी स्वतंत्रता की कामना की जा सकती है। इस मुक्ति के लिए नारी को विभिन्न समस्याओं से जूझना पड़ा। नारी मुक्ति के सही मायने मूल्यों और विचारों से है।

'स्त्री मुक्ति का तात्पर्य पुरुषों का बहिष्कार, विरोध नहीं है। विरोध उन मूल्यों, संस्कारों से है, जो पति- पुरुष को वर्चस्वता प्रदान करते हैं (३)

धी? धीरे संघर्ष की यही प्रवृत्तियाँ जीवन से निकलकर जीवन के प्रतिबिंब साहित्य तक पहुँची।

समय समय साहित्यकारों ने ऐसे किरदार रचे जो जीवन की उसी तीव्र जिजीविषा और प्रतिरोध से लैस थे।'नारी

अधिकार या स्त्री मुक्ति से आशय 'मानव' माने जाने की आकांक्षा है '। (४) और इसी आकांक्षा को फलीभूत करने की खातिर वे सदियों से खुद को गलाती चली आ रही हैं। अपने अधिकारों के लिए खुद को गलाने की इस कथा को, जो समय समय पर दुनिया के अलग अलग हिस्सों में घटित होती रही, अनेक साहित्य साहित्य शिल्पियों ने रेखांकित किया है।इन शिल्पियों में चित्रा मुद्गल का एक महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी रचनाएँ स्त्री मुक्ति का जयघोष करती नजर आती हैं। उन्होंने अपने साहित्य में स्त्री मन की अंजान सतहों को न सिर्फ छुआ है बल्कि उसे पूर्ण रूप से जनाभिमुख् करते हुए स्त्रियों को स्वतंत्रचेता बनने की प्रेरणा दी है।

चित्रा मुद्गल का उपन्यास 'एक जमीन अपनी' नारी स्वतंत्रता के संघर्ष के रूप में प्रकट होता है। जहाँ मध्यम वर्गीय परिवार की लड़की अंकिता के संघर्ष की गाथा पिरोई गयी है। उपन्यास में मुख्य कथा के साथ साथ कुछ अवांतर कथाएँ भी समानांतर चलती हैं।मसलन,अंकिता के परिवार की कहानी, मेहता की घरेलू जिंदगी तथा सबसे महत्वपूर्ण तथा विज्ञापन जगत की सच्चाइयों से जुड़ी छोटी छोटी कहानियाँ। इस उपन्यास में सर्वत्र स्वाधीनता की आकांक्षा में बहाए गए श्रम बिंदु बिखरे हुए हैं।

विज्ञापन की इस चकाचौंध भरी दुनिया में जितना हिस्सा पूंजी का है उतनी ही हिस्सेदारी स्त्री की भी है। एक जमीन अपनी विज्ञापन की उस दुनिया की कहानी भी है जहाँ समाज की इच्छाओं को पैना करने के औजार तैयार किये जाते हैं। और स्त्री के उस संघर्ष की भी जो वह इस दुनिया में अपनी रचनात्मक क्षमता की पहचान अर्जित करने और सिर्फ देह भर न रहने के लिए करती है। चित्रा मुद्गल ने इस उपन्यास में उसके इस संघर्ष को निष्पक्षता के साथ उकेरते हुए इस बात पर भी पूरा ध्यान रखा है कि वे सवाल भी अछूते न रह जाएं जो विज्ञापन जगत की अपेक्षाकृत नई संघर्ष भूमि में नारी स्वातंत्र्य को लेकर उठते हैं या उठ सकते हैं।

चित्रा मुद्गल इस उपन्यास में परिवारिक सपोर्ट सिस्टम के महत्व को उद्घृत करते हुए स्पष्ट करती हैं कि परिवार ही वह इकाई है जहाँ से प्राथमिक सुधार संभव है। पहले तो परिवार की इच्छा के विरुद्ध शादी करना ही कठिन कार्य होता है फिर तोड़ना तो और भी दुरूह। लड़कियाँ पहला कदम तो उठा लेती हैं लेकिन दूसरा असंभव हो जाता है क्योंकि उनके पास सपोर्ट सिस्टम नहीं होता लेकिन यहाँ ऐसा नहीं है।

'लड़की समाज में इसीलिए उपेक्षित,निरीह रही है क्योंकि.. अपने घर में वह मात्र कर्त्तव्य होती है- कर्त्तव्य से उऋण हो उसे पराया मान लिया जाता है...मगर जीवन-संघर्ष में आत्मविदग्ध होकर भी मैं इसलिए बच गई क्योंकि अम्माँ ने...इस घर ने मुझे कभी कर्त्तव्य से उऋण नहीं समझा... हर उस लड़की का आत्मबल प्रखर होता है, जिसे मायकेवाले पराया नहीं मान लेते'। (५)

ये एक प्रमुख रास्ता भी है जिसके माध्यम से लड़कियाँ ऊँचे सोपानों पर बेझिझक पहुँच सकती हैं। और आजादी के उच्चतम स्तर को स्पर्श कर सकती हैं। एक प्रसंग में जब वह लिफ्ट से जा रही है तो अनेक प्रसंगो को लेकर (जैसा कि आज भी पुरुष समाज सभ्य और शिक्षित स्त्रियों को देखकर करता है) तिलक उस पर फब्तियाँ कसता है। क्योंकि पुरुष चाहता ही नही है कि स्त्री अपना अस्तित्व तलाशते हुए स्वतंत्र घूमे। वह स्त्री को गुलाम के रूप में ही देखना चाहता है।यही उसकी फितरत रही है। तब अंकिता बेहद कड़े स्वर में अपना प्रतिरोध दर्ज करते हुए बेहद क्रोध और तिलमिला के जवाब देती है ' छीः .... छिछोरेपन की भी हद होती है। किसी लड़की को यूँ सरेआम लांक्षित करते हुए तुम्हें शर्म नही आती? क्या मतलब है तुम्हे उसकी व्यक्तिगत जिंदगी से? वह जो भी है जैसी भी है , जिस किसी के साथ रहना चाहती है- उसका निजी मसला है,आपसे मतलब'।(६)

उपरोक्त कथन स्त्री उत्थान की दृष्टि से काफी तर्क संगत है। जीवन में आदर्श के साथ साथ इस तरह के विचारों का होना बहुत ही आवश्यक है।

स्वतंत्रता के लिए सर्वाधिक आवश्यक है खुद की मजबूती, धैर्य की प्रगाढ़ क्षमता, जिसके द्वारा आप लम्बी लडाइयों में निभय्ता से भाग लेते हैं। और यह निभय्ता को प्रदान करने वाली मजबूती व्यक्ति के अंदर से आती है। तभी तो एक जगह मुख्य पात्र की माँ उसे संबोधित करते हुए कहती है -

'मजबूती अपने अंतरमन में ही होती है बिट्टी! कोई उसे किसी को दे नहीं सकता है। हाँ, उसका मनोबल सींचकर वह उस दृष्टि को विकसित करने में अवश्य सहायक सिद्ध हो सकता है... जो भीतर की अदृश्य शक्ति को अन्वेषित कर व्यक्ति को चुनौतियों का सामना करने का साहस और आत्मविश्वास प्रदान करती है...जिनमें वह शक्ति अन्वेषित नहीं हो पाती, वे संघर्ष से पलायन कर आत्मघात को प्रवृत्त होते हैं या समझौते को...।'(७)

इसीलिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है अपनी आंतरिक

क्षमताओं से साक्षात्कार करना क्योकि विषम समय में व्यक्ति की आंतरिक क्षमताएं ही उसकी जूझने की स्थिति को दिशा देती हैं। जो आज की स्थिति में नारी ह्रदय मे उदित हो रही हैं। भारतीय पुरुषवादी समाज में नारी को शोषित करने की दृष्टि से समय समय पर अनेक उक्तियाँ गढ़ी जाती रहीं। जिनमें कहा जाता रहा कि नारी का अपना कोई घर नहीं होता । एक तो पति का घर होता है और दूसरा मायका जो शादी के पश्चात उसका नही रहता। और उसे पति के घर में दासियों की तरह दिन रात खटने को ही उसका कर्तव्य कहा गया। लेकिन इस उपन्यास में अंकिता उस कुरीति का विरोध करती है। जब वह घर आने वाले पति के मित्रों एवं उनके व्यवहार से तथा घर के काम से थक जाती है तो वह विरोध दर्ज कराते हुए कह उठती है - ' धर्मशाला की तख्ती आज से मेरे घर के दरवाजे पर नहीं टंगेगी-- मैं सिर्फ गृहिणी ही नही हूँ -- आखिर सुबह से रात के बीच कोई एक क्षण ऐसा नहीं हो सकता जिसे मैं नितांत अपने लिए जी सकूँ -- कागज कलम लेकर बैठ सकूँ --जो पढ़ना चाहती हूँ पढ़ सकूँ-- लिखना चाहती हूँ लिख सकूँ'? (८)

शहर से लेकर सुदूर ग्रामों तक नारी की यही स्थिति है।, उसके लिए व्यक्तिगत स्पेस न के बराबर है।पतियों की सेवा में खटना ही उनकी नियति है।जिसे अंकिता ने मुखर होकर अभिव्यक्त किया है। भारतीय समाज में विवाह को ऐसे संस्कार के रूप मे पेश किया गया जिसमें नारी से उसका घर, उसका अस्तित्व, उसकी सोच, उसका नज़रिया, पति के अनुकूल करने के लिए सिर्फ आशा ही नही की जाती बल्कि दबाव भी डाला जाता है, विवश किया जाता है। परंतु अंकिता एक शिक्षित नारी है। उसने अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए पति गृह को त्यागना ही उचित समझा। वह कहती है - ' मुझे तुमसे घृणा है -- धृणा -- तुम्हारी एयाशियों और ज्यादतियों सती साध्वी बनी, माँग में सजाये झेलते जाना-- इस मुगालते में रहना की स्त्रित्व की पूर्णता का भ्रम जीती रहूँगी-- लो इसी वक्त यह रिश्ता खत्म। उसने अपनी कलाइयों की चूड़ियाँ झन्न से फर्श पर उछाल दी थी और पैरों के बिछुए लोढ़े से कुचल दिए थे '। (९)

स्त्री विमर्श प्रमुखतः स्त्री का वस्तु से मनुष्य में रूपांतरित होने का प्रयास है। अंकिता चाहती है कि नारी को एक मात्र वस्तु और भोग्या के रूप में देखा गया, उसे मनुष्य के रूप में देखा जाए। इसीलिए नारी अधिकार या स्त्री मुक्ति से आशय मानव माने जाने की आकांक्षा है। इसीलिए अंकिता चाहती है कि नारी को नारित्व के गुणों से मुक्ति अर्थात मर्दों की तरह व्यवहार करना नहीं बल्कि उन रूढ़ियों परंपराओं से मुक्ति आवश्यक है

जिसने उसे वस्तु के रूप मे देखा है। ' नीतू! चेतने की जरूरत है-- स्त्री को स्त्रीत्व से मुक्ति नही चाहिए। उसे रूढ़ियों से मुक्ति चाहिए। जिसने उसे वस्तु बना रखा है -- तुम वर्जना हीनता के तर्क से लैस पुरुष की उसी पिपासा को पूर्ण करने जा रही हो, जो स्त्री को भोगवस्तु मानकर उसे इस्तेमाल करता आया है। और कर रहा है '। (१०)

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'एक जमीन अपनी' उपन्यास में चित्रा मुद्गल जी ने एक ऐसी जमीन की अपेक्षा की है जिसमें नारी को परिवारिक रूढ़ियों से मुक्ति , इस्तेमाल की राजनीति से मुक्ति और मानवता की दृष्टि से देखा जाय। और अपना मूल रूप अर्थात स्त्रीत्व खोये बग़ैर उसके हक मिले क्यों की हक को प्राप्त करते करते अगर मूल रूप ही न रहा तो उस हक का भी कोई अर्थ नही रह जाता। नारी स्वाधीनता की दृष्टि से मुद्गल जी का यह उपन्यास प्रमुख स्थान रखता है और चेतना को सच्चाई के प्रकाश से प्रत्यक्ष करता है। और आने वाले संघर्षों की ओर अग्रसर करता है तभी तो अंकिता कहती है - 'स्त्री के अस्तित्व की तलाश तब तक पूरी नहीं होगी-- जब तक वह वर्गों में बटकर स्वार्थों और सुविधाओं में उलझी, विभाजित होकर जीती रहेगी'। (११) अतः समस्त नारी जाति को स्वतंत्रता की ऊष्मा से परिचित कराता यह उपन्यास एक प्रमुख दस्तावेज है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

१ - मनु स्मृति , अध्याय- ३, श्लोक - ५६

२ - यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त

३ - उत्तरशती के उपन्यासों में स्त्री, डॉ. शशिकला त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, पृष्ठ संख्या ९२

४ - उत्तरशती के उपन्यासों में स्त्री --- पृष्ठ संख्या १०

५ - एक जमीन अपनी, चित्रा मुद्गल, सामयिक प्रकाशन,पृष्ठ ८२

६ - वहीं पृष्ठ संख्या २१

७ - वहीं पृष्ठ संख्या ४८

८ - वहीं पृष्ठ संख्या २४

९ - वहीं पृष्ठ संख्या २४

१०- वहीं पृष्ठ संख्या २१४

११- वहीं पृष्ठ संख्या १२८

भारतीय चिंतन परम्परा में वेदान्त दर्शन

भुमिका मनसुख सोलंकी

शोधार्थी - संस्कृतविभाग,
सरदार पटेल विश्वविद्यालय,
वल्लभ विद्यानगर - आणंद,
गुजरात - ३८८१२० ।

भारतवर्ष में चिंतन की एक अक्षुण्ण परम्परा रही है, जो वैदिक युग से प्रस्फुटित होकर वर्तमान तक निरन्तर प्रवाहमान है । सामान्य रूप में चिंतन की बात की जाए तो यह मानवीय जीवन से जुड़ा हुआ एक महत्वपूर्ण पहलू है, जिसमें हम एक समस्या का हल खोज नहीं पाते और दूसरी समस्या उपस्थित हो जाती है और इन समस्याओं का हल खोजना हमें चिंतन की ओर अग्रसर करता है । हमारे यहाँ बहुत पहले से ही कहा जाता रहा हैं कि 'कुछ भी करने से पहले सोचना चाहिए ।' अर्थात् सोचना एक चिंतन की प्रक्रिया है जिसके केन्द्र में तर्क होता है । आधुनिक युग में चिंतन को दर्शन से जोड़कर स्थापनाएँ की जा रही हैं और दर्शन ने यह सिद्ध कर दिया है कि विश्व की प्रगति मानव चिंतन पर ही निर्भर करती है । चिंतन के संदर्भ में अनेक विद्वानों ने अपने अपने मत दिए है जिसमें पाश्चात्य विचारक 'गैरेट' का मानना है कि - 'चिंतन एक प्रकार का अव्यक्त एंव रहस्यपूर्ण व्यवहार होता है जिसमें सामान्य रूप से प्रतीक, बिम्बों, विचारों एंव प्रत्ययों का प्रयोग होता है ।'

भारतीय चिंतन की बात की जाए तो यह प्राचीन वैदिक युग से समयानुसार अनेक रूपों में हमारे सामनें उपस्थित होती है; किन्तु इसका समृद्धिशाली रूप हमें आधुनिक युग में दृष्टव्य होता है । देखा जाए तो भारतीय चिंतन पूर्णतः अध्यात्म से जुड़ा हुआ है जिसके मूल में धर्म एवं दर्शन निहित है । भारतीय चिंतन विश्व के सभी चिंतनो में सर्वश्रेष्ठ है, जिसकी व्यापक पृष्ठभूमि रही है । इतना ही नही हमारा साहित्य भी इन्ही चिंतनों से प्रभावित रहा है । इन्ही भारतीय चिंतन परम्परा में वेदान्त दर्शन का स्थान सर्वोपरी है । इसके अन्तर्गत अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, द्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद और अचिन्त्यभेदाभेदवाद - यह छः दर्शन समाविष्ट हैं, जो ज्ञान परम्परा की दृष्टि से भी भारतीय चिंतन में सर्वोच्च माने गए हैं । इन्हें हम निम्नलिखित रूप में समझने का प्रयास करेंगे ।

अद्वैतवाद

भारतीय चिंतन परम्परा में 'अद्वैतवेदान्त' चिंतन प्रक्रिया का अभिन्न अंग है । इसके प्रतिष्ठापक शंकराचार्य है । यह संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे और इन्होंने अपने मत को 'अद्वैतवाद' के नाम से प्रतिष्ठापित किया । शंकराचार्य का यह नियम उपनिषदों के बहुत निकट है । इन्होंने अपने मत के प्रतिपादन में उपनिषद, ब्रह्मसूत्र, तथा गीता पर लिखे गए भाष्यों को आधार बनाया और उपनिषदों में वर्णित दार्शनिक सिद्धान्तों को एक सूत्र में पिरोकर क्रमबद्ध दर्शन का रूप प्रदान किया । उनका सिद्धान्त हैं कि -

?सृष्टि में एक मात्र ब्रह्म ही सत्य है ।

?यह दृश्यमान जगत माया का कार्य होने के कारण मिथ्या है ।

?जीव (आत्मा) तथा ब्रह्म में कोई भेद नहीं है ।

शंकराचार्य अनेक मतों का प्रतिपादन करते हैं

किन्तु दार्शनिक दृष्टि से इन सब में उनके भाष्य महत्वपूर्ण है । इन भाष्यों के माध्यम से इन्होनें अपने मूलभूत दृष्टिकोण और उपदेशों को विकसित किया । शंकराचार्यजी ने एकेश्वरवाद पर आधारित एक नई आदर्शवादी प्रणाली को जन्म दिया, जो अद्वैत वेदान्त के नाम से प्रचलित है ।

अद्वैतवाद के अनुसार 'जीव को दुःख अनुभव होता है, अतः जीव दुःख से घृणा करता है और उससे छुटकारा पाने के लिए प्रयत्नरत रहता है ।' अद्वैतवाद अनुसार 'अविद्या ने अनादिकाल से ही आत्मा के स्वरूप को मेघ की तरह आच्छादित कर रखा है । इसी कारण जिज्ञासु को आत्मा का ज्ञान नहीं होता । शंकराचार्यजी ने आत्मा को परमात्मा का स्वरूप माना है । अविधा से तिरोभूत होने के कारण उसी आत्मा ने ही जीव नामधारी होकर स्वयं को आत्मा से अलग मान रखा है । इस प्रकार वह अपना ही अस्तित्व मिटा देता है ।

अद्वैतवाद की मूल प्रतिस्थापना में शंकराचार्य वेदों तथा उपनिषदों के ज्ञान को ही एक मात्र स्त्रोत मानते हैं और इन्हीं के तर्कों और दृष्टि बिन्दुओं के आधार पर अपने मत की पुष्टि करते हैं । तीन गुणों वाले अचेतन आद्य पदार्थ से इस संसार के उद्भव के सांख्य सिद्धान्त, वैशेषिक दर्शन, लोकायत दर्शन और बौद्ध दर्शन - सभी का शंकराचार्यजी ने खण्डन करके तीव्र शब्दों में इनकी निन्दा की ।

शंकरचार्य अपने अद्वैतवाद में ब्रह्म, आत्मा, माया और जगत् को व्याख्यापित कर अपने सिद्धान्त को और प्रबल बनाया । 'ब्रह्म' के संदर्भ में उनका मानना है कि सृष्टि में एक मात्र तात्त्विक पदार्थ ब्रह्म ही है । वह एक ऐसी सत्ता जो सर्वव्यापी, निराकार, निर्विकार, अविनाशी, अनादि - चैतन्य तथा आनन्द स्वरूप है और इसे सिद्ध करने के लिए शंकराचार्य ने किसी युक्ति अथवा प्रमाण की आवश्यकता नही समझी । वह इसे प्रमाण का विषय न मानकर ज्ञान का विषय मानतें है ।

आत्मा की बात की जाए तो शंकराचार्य ने आत्मा को ब्रह्म का पर्याय माना है । इनका मानना है कि एक ही परमतत्त्व आन्तरिक रूप से आत्मा तथा बाह्य रूप से ब्रह्म है । शंकर के अनुसार आत्मा नित्य प्रकाश अर्थात् ज्ञानस्वरूपा है । वह न कर्ता है, न भोक्ता है । यह शरीर, इन्द्रिय, अन्तःकरण आदि से पृथक है । जिस प्रकार अंधकार में रस्सी 'साँप' तथा शुक्ति में रजत का आभास हो जाता है उसी प्रकार अज्ञातवश अद्वैत ब्रह्म या आत्मा का आभास होता है ।

मायावाद; अद्वैतमत का प्रमुख सिद्धान्त है । इसके माध्यम से जगत को विवृत करने का प्रयास किया गया है । शंकरचार्य ने माया और अविधा को समान अर्थ में प्रयोग किया है । इनका मानना है कि माया की दो शक्तियाँ हैं - आवरण तथा विक्षेप । प्रथम के द्वारा वह सत्य को ढक लेती है तथा द्वितीय के द्वारा वह उस पर दूसरी वस्तु को आरोपित कर देती है । इसी के कारण ब्रह्म, ईश्वर तथा आत्मा जीव बन जाता है ।

शंकराचार्य के अनुसार 'जगत' ईश्वर का कौतुक मात्र हैं जो अपनी क्रीडा के निमित्त इसकी रचना करता है । अद्वैतमत के अनुसार निर्विकार ब्रह्म वह अधिष्ठान हैं, जिनके ऊपर माया दृश्य जगत् का अध्यास कर देती है ।

अद्वैतवाद की विशेषताएँ :

?'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः ।' अर्थात् ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है, संसार मिथ्या है और जीव ही ब्रह्म है इसके अतिरिक्त कुछ नहीं ।

?शंकराचार्य ने अद्वैत में अभेद की प्रतिस्थापना की है । उनके अनुसार भेद मायाकृत और असत्य हैं ।

?अद्वैत में जीव और परमात्मा का स्वरूप बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है ।

?इनके अनुसार ब्रह्म ज्ञान होने पर जीवनकाल में ही जीव की मुक्ति हो जाती है ।

?अद्वैतवाद के अनुसार माया ब्रह्म का आच्छादन है । मोक्षावस्था में केवल ब्रह्म ही महत्वपूर्ण है माया नहीं ।

विशिष्टाद्वैतवाद

विशिष्टाद्वैतवाद भारतीय चिंतन परम्परा का एक महत्वपूर्ण दार्शनिक मत हैं । इसके प्रवर्तक रामानुजाचार्य है । रामानुजाचार्य ने इस मत का प्रतिपादन आदिशंकराचार्य के मत के खण्डन के रूप में किया । इन्होंने वेदों उपनिषदों तथा धार्मिक उपनिषदो का अध्ययन कर 'श्रीभाष्य' जैसी कृतियों की रचना की । इन्होंने भगवद्गीता पर भाष्य 'वेदान्तदीप', 'वेदान्तसार', 'वेदार्थसंग्रह' आदि रचनाओं में अपनी दार्शनिक प्रणाली की मूलभूत

प्रतिस्थापनाओं को प्रस्तुत किया जो विशिष्टाद्वैतवाद कहलाता है ।

शंकराचार्य की भाँति ही रामानुजाचार्य भी अद्वैत से प्रेरित हैं किन्तु इनका अद्वैत शंकरचार्य के अद्वैत से भिन्न है । शंकराचार्य के मत में ब्रह्म अद्वैत है किन्तु रामानुजाचार्य ने अद्वैतविशिष्ट ब्रह्म का प्रतिपादन किया है । रामानुजाचार्य का ब्रह्म उपासना का विषय है । वह ब्रह्म के तीन अंग बताते हैं - ईश्वर, आत्मा (चित) और जड़ प्रकृति (अचित) । चित् और अचित् को ईश्वर का शरीर और ईश्वर चित् और अचित् की आत्मा कहलाता है; शरीर की तरह चित् और अचित् का परिवर्तन होता है किन्तु ईश्वर का परिवर्तन नहीं होता । 'आत्मा' और 'जड़ प्रकृति'- दोनों में ब्रह्म विद्‌यमान है; किन्तु वह ब्रह्म इन दोनों से विशिष्ट है और इसी विशिष्टता के कारण ही रामानुजाचार्य ब्रह्म को 'विशिष्टाद्वैत' के रूप में प्रतिस्थापित करते हैं । वह शंकराचार्य की तरह जगत को मिथ्या नहीं मानते इनका मानना है कि 'जगत् को मिथ्या बताये बिना भी ब्रह्म का एकत्व प्रमाणित किया जा सकता है ।'

शंकराचार्य की अद्वैत की अवधारणा ब्रह्म और आत्मा की अवधारणा से भिन्न है । आचार्य रामानुज का मत हैं कि 'यद्‌यपि जीवात्मा परमात्मा से एकाकार है तो भी उसका अपना अस्तित्व है ।' यह सही है कि जीवात्मा परमात्मा का ही अंश है, लेकिन अंश तो सम्पूर्ण के बराबर नही हो सकता । दूसरे शब्दों में परमात्मा और आत्मा की एकता में द्वैत निहित है ।

विदित है कि शंकराचार्य का ब्रह्म निगुर्ण ब्रह्म हैं इसके विपरीत रामानुजाचार्य का ब्रह्म न केवल सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी हैं वरन् उनमें ज्ञान शक्ति, कल्याण तथा दया आदि गुण भी मौजूद है । रामानुजाचार्य ने ब्रह्म को सवीच्च बताया । उनका मानना था कि 'ईश्वर सर्वशक्तिमान है और उसने स्वयं अपने भीतर से इस संसार की रचना की है । एक मकड़ी जिस प्रकार से अपने भीतर से जाला बुनती है, उसी प्रकार ईश्वर ने इस जगत् की रचना की है ।' उनके अनुसार आत्मा एक सूक्ष्म कण है जो किसी भी निर्जीव अथवा अचेतन पदार्थ में प्रवेश कर सकती है । शरीर के अन्दर आत्मा ने इसी प्रकार प्रवेश किया है । आत्मा और शरीर दोनों ही ब्रह्म की रचना है और कर्म के फलस्वरूप पारस्परिक बन्धन में बन्ध जातें है । प्रत्येक आत्मा को वह शरीर मिलता है जिसकी वह पात्र है और यह पात्रता कर्म से निर्धारित होती है ।

रामानुजाचार्य ने माया के सिद्धान्त की आलोचना की और कहा कि 'सभी ज्ञान वास्तविकता का ज्ञान होता है और वास्तविकता मन का भ्रम मात्र नहीं हो सकती है ।' इन्होने भक्ति की आवश्यकता पर जोर देते हुए कहा हैं कि 'आत्मा पर कमी तथा भौतिक शरीर का बन्धन है । मुक्ति का अर्थ आत्मा को इन दोनों बन्धनों से मुक्त कर लेना है ।' रामानुजचार्य ने मुक्ति के तीन मार्ग बताएँ हैं - कमर्त्योग, भक्तियोग, और ज्ञानयोग । वह प्रथमतः भक्ति के मार्ग के ही समर्थक है और यह मानते है कि ज्ञान उसे गहन बनाता है । ज्ञान के प्रकाश से अंधकार दूर हो जाता है । इस ज्ञान की अवाप्ति भगवान् की कृपा एवं शास्त्र के श्रवण से होती है । इस प्रकार अज्ञान के दूर हो जाने पर जीव में परमात्मा के प्रति भक्ति का उदय होता है और जीव जीवन पर्यन्त परमात्मा की उपासना करता रहता है । अंततः देह छूटते ही जीव मुक्त हो जाता है । कह सकते है कि रामानुजाचार्य ने अपने विशिष्टाद्वैत मत के प्रतिपादन में ब्रह्म के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए उसे भक्ति के माध्यम से प्राप्त करने का मार्ग प्रस्तुत किया ।

शुद्धाद्वैतवाद / अविकृतिवाद

भारतीय चिंतन परम्परा में शुद्धाद्वैतवाद महत्वपूर्ण सिद्धान्त है । इस सिद्धान्त को अविकृतिवाद के नाम से भी जाना जाता है और वल्लभाचार्यजी इस मत के प्रणेता हैं, जिन्होंने वेदान्त सूत्रों पर 'अणुभाष्य' व श्रीमद्भगवद्गीता पर 'सुबोधिनी' नामक भाष्य लिखकर ख्याति प्राप्त की । वल्लभाचार्य पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक तथा वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी है । इनका शुद्धाद्वैतवाद; अद्वैतवाद से भिन्न है । शुद्धाद्वैत का अर्थ है माया सम्बन्ध से शून्य । वल्लभाचार्य का मत है कि कल्पित माया से ब्रह्म का कोई सम्बन्ध नहीं है । अतः ब्रह्म कार्य और कारण दोनों रूपों में शुद्ध है, ब्रह्म ही एकमात्र अद्वैत तत्त्व है ।

वल्लभाचार्य के अनुसार आत्मा और पदार्थ दोनों ही ब्रह्म की वास्तविक अभिव्यक्ति हैं । इनके द्वारा ब्रह्म अपनें त्रिगुणात्मक सार तत्त्व सत, चित, और आनन्द को प्रकट करता है, जबकि ईश्वर में कोई परिवर्तन नहीं होता । यह ब्रह्म से उसी तरह प्रकट हुआ है जिस तरह

अग्नि से चिंगारियाँ प्रकट होती है । वल्लुभाचार्य का मत हैं कि जगत् और संसार में महत्वपूर्ण भेद है । जगत् ब्रह्म की वास्तविक अभिव्यक्ति है परन्तु सांसारिक जन्म और मृत्यु का यह चक्र अज्ञान के कारण है । अज्ञान को दूर करने से संसार भी तिरोहित हो जाता है और ब्रह्म की वास्तविक अभिव्यक्ति के रूप में केवल जगत् का अस्तित्व बचा रहता है । यही अविकृतिवाद या शुद्धाद्वैतवाद है ।

आचार्य वल्लुभ के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण ही ब्रह्म हैं; वह निर्विशेष निर्गुण एवं सविशेष सगुण भी हैं । वे अपने सत, चित् और आनन्द स्वरूप का अपनी इच्छा शक्ति से विविध अंशों में आविर्भाव और तिरोभाव करते हुये जड़ जगत, चेतन जीवों और अन्तर्यामी नियामकों के रूप में अभिव्यक्त होते हैं । यह अभिव्यक्ति माया कल्पित नहीं अपितु वास्तविक है । यह जगत् और जीव ब्रह्मरूप होने से सत्य और नित्य है । परब्रह्म की प्राप्ति अनन्यभक्ति से पुष्टिमार्ग के द्वारा होती है । जब भगवान् को रमण करने की इच्छा, एक से अनेक रूपों में अभिव्यक्ति की इच्छा होती है, तब वे स्वयं जगत, जीव और अन्तर्यामी रूपों में अभिव्यक्त होते है ।

द्वैतवाद

द्वैतवाद का प्रतिपादन मध्वाचार्यजी ने किया है । उन्होंने ब्रह्मसूत्र पर 'पूर्णप्रज्ञभाष्य' लिखा है । इन्हें आनन्दतीर्थ और पूर्णप्रज्ञ नाम से भी जाना जाता है । इनके 'भागवततात्पर्य-निणर्य', 'अनुव्याख्यान' ग्रन्थ बहुत ही ख्यातिलब्ध है । इनका मानना हैं कि एक वस्तु अपने 'विशेष' के कारण विविध प्रतीत होती हैं; अतः ये 'विशेष' की सत्ता को स्वीकारते हैं । न्याय-वैशेषिक का 'विशेष' केवल नित्य पदाथी की विशेषता है; जबकि मध्वाचार्य के अनुसार 'विशेष' नित्य और अनित्य दोनों प्रकार के पदाथी की विशेषता हैं ।

आचार्य मध्व का मत हैं कि जीव और ईश्वर में पूर्ण तादात्म्य नहीं हो सकता; दोनों भिन्न-भिन्न है क्योंकि जीव उपासक है और ईश्वर जीव का आराध्य है । ईश्वर ज्ञेय हैं और साधना से प्राप्य है । जीव ज्ञान और शक्ति में सीमित है; जबकि ईश्वर पूर्ण, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है । ईश्वर स्वतन्त्र सत्ता हैं; जीव एवं जगत् परतन्त्र सताएँ हैं । अतः जीव पूर्णरूप में ईश्वर पर आश्रित है ।

इनका मानना कि 'माया या प्रकृति; सभी पदाथी की रचना अपनी संकल्प शक्ति से करता है, वह जगत् का उपादान कारण है । भगवान् माया या प्रकृति से विभिन्न रूप घटित करके अपने आपको अनेक रूपों में दृश्यमान करता है । माया या प्रकृति की स्वतन्त्रता ईश्वर की कृपा पर निर्भर है । जगत् के सन्दर्भ में भी इनका मत हैं कि 'कारण' और 'कार्य' नित्य होने के कारण ब्रह्म के साथ साथ जगत् भी नित्य है ।

प्रस्तुत वाद में इन्होंने आत्मा के लिए भी कहा हैं कि आत्मा ईश्वर में बसती हैं किन्तु ईश्वर को आत्मा के सुख - दुःख का अनुभव नहीं होता । ईश्वर और आत्मा के मध्य जो भेद है उसके ज्ञान एवं ईश्वर के प्रति विनयशीलता से जीव को मुक्ति प्राप्त होती है और यह मुक्ति पूर्वजन्मों के संचित कर्म पूरे होने और देह के त्याग के साथ मिलती है । यही आत्मा की भी मुक्ति होती है ।

द्वैताद्वैतवाद

भारतीय चिंतन परम्परा में आचार्य निम्बार्क द्वैताद्वैतवाद की प्रतिस्थापना करते हुए अपना चिंतन प्रकट करतें हैं । इन्होंने ब्रह्मसूत्र पर 'वेदान्तपारिजातसौरभ' नामक भाष्य रचना की । निम्बार्काचार्य के अनुसार 'ब्रह्म, आत्मा और जगत के बीच भेद भी हैं और अभेद भी है । जीव ब्रह्म का अंश है अतः वह उससे भिन्न भी हैं और अभिन्न भी है । जगत् एवं जीव का अन्तर्यामी ब्रह्म हैं, जीव की क्रियाएँ भी ब्रह्म ही नियन्त्रित करता है । आत्मा और ब्रह्म दोनों भिन्न होते हुए भी पूर्णतया भिन्न नहीं हैं । ब्रह्म सभी जीवो में निवास करता है; फिर भी उनमें (जीव में) जो परिवर्तन होते हैं अर्थात जीव में जो मलिनता होती हैं, उससे ब्रह्म प्रभावित नहीं होता । सूर्य 'किरणों' से भिन्न भी हैं और अभिन्न भी है, उसी तरह ब्रह्म भी 'आत्मा' से भिन्न हैं और अभिन्न भी है । वेदों के द्वारा ही उसका ज्ञान उपार्जित कर सकते है । ब्रह्म अपने आपसे जगत् की सृष्टि करता हैं फिर भी वह जगत् से पृथक रह सकता है । अंततः ब्रह्म का परिवर्तित रूप होने के कारण जगत् सत् है ।'

अचिन्त्यभेदाभेदवाद

अचिन्त्यभेदाभेदवाद के प्रणेता 'आचार्य श्रीचैतन्य महाप्रभु' को माना जाता है। श्रीचैतन्य महाप्रभु पूर्णतः भक्तिवादी थे । जिनके उपदेश के आधार पर ही जीव गोस्वामी एवं बलदेव विद्याभूषण ने दार्शनिक विचारधारा

का संस्थापन किया, जिसे 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' नाम से जाना जाता है। वेदान्त मत अनुसार ब्रह्म शुद्ध चैतन्य एवं पदार्थ का आश्रय हैं; किन्तु जीव गोस्वामी इसे अस्वीकार करते है। वह माया और ब्रह्म के सम्बन्ध को तर्कहीन मानते है। इनका मत हैं कि 'आभासों को उत्पन्न करने वाली शक्ति ब्रह्म में रह सकती है तो भी उसके साहचर्य का रूप सर्वथा अचिन्त्य हो सकता है। ब्रह्म में द्वैत का आभास अज्ञान की मौजूदगी के कारण नही, बल्कि उसकी अचिन्त्य शक्ति के कारण होता है।'

इस वाद के चिंतकों ने 'माया' को ब्रह्म की बाह्य शक्ति कहा है, जिससे जीव प्रभावित होता है, किन्तु ब्रह्म प्रभावित नहीं होता। ब्रह्म प्राप्ति के बाद माया का आभास विलीन हो जाता है। वे माया की सत्ता स्वीकारते हुए कहते हैं कि माया के द्वारा पदार्थ का यथार्थ ज्ञान प्राप्त न होकर आभासित ज्ञान होता है।

निष्कर्ष रूप में कह सकतें हैं कि मानव मात्र का उद्देश्य दुःख से निवृत होकर आत्मज्ञान से ब्रह्म की प्राप्ति है और यह आत्मज्ञान चिंतन के द्वारा ही सम्भव है, जिसमें प्रत्येक दार्शनिक सम्प्रदाय के आचार्य एकमत दिखाई देतें हैं अर्थात आत्मज्ञान के माध्यम से ब्रह्म की प्राप्ति पर प्रत्येक दार्शनिक सम्प्रदाय की सहमति है।

सन्दर्भ :

(१) भारतीय दर्शन, वाचस्पति गैरोला, लोकभारती प्रकाशन, छठवाँ संस्करण - २०१६।

(२) अद्वैत वेदान्त (इतिहास तथा सिद्धान्त), डॉ. राममूर्ति शर्मा, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, तृतीय संस्करण -१९९८।

(३) सदानन्दयतिविरचितः वेदान्तसारः, डॉ. राकेश शास्त्री, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण -
२००३।

(४) भारतीय दर्शन, आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण - वि.सं.
२०७८ ।

(५) भारतीय दर्शन - भाग २, डॉ. राधाकृष्णन, राजपाल एण्ड सन्ज़, संस्करण - २०२१।

(६) भारतीय दर्शन (ऐतिहासिक और समीक्षात्मक विवेचन), डॉ. नन्द किशोर, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, षष्ठ
संस्करण- २००२।

(७) ॅ प्ूदेि द घ्र्गिह झ्पत्देदज्प्ि, न्दत्ल्स. २, ऱ्ल्हूॅ एग्हर्, णर्हूेत ॅदर्दें्ाहम्ि,
र्ैत्र्मूर्, १९५२.

(८) भारतीय दर्शन, म. म. डॉ. उमेश मिश्र, उत्तरप्रदेश शासन, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन हिन्दी भवन,
लखनऊ, चतुर्थ संस्करण - १९७५।

(९) भारतीय दर्शन का इतिहास भाग-१ एवं भाग-३, डॉ. सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,
जयपुर-४, प्रथम संस्करण-१९७८।

(१०) भारतीय दर्शन का इतिहास भाग-४, डॉ. सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर-४, प्रथम संस्करण-१९७२।

(११) श्रीमन्माधवाचार्यकृतः सर्वदर्शनसंग्रहः सपरिशिष्ट 'प्रकाश' - हिन्दीभाष्योपेतः, भाष्यकार- डॉ.
उमाशङ्करशर्मा 'ऋषि' चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण-२०२२।

ताजमहल के आंसू’

सौरभ मिश्र

शोध छात्र,
हिंदी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

यह उपन्यास प्रेम का मार्मिक आख्यान है. उपन्यास का विषय भले ही एतिहासिक हो लेकिन उपन्यास की विषय-वास्तु बेहद दिलचस्प और विचारणीय है. उपन्यास के लेखक इलाहबाद विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्रो. सुनील विक्रम सिंह हैं. जिन्होंने अपनी भाषा की कलात्मकता से न केवल इस उपन्यास की भाषा सौष्ठव को सुन्दर गढ़ा है बल्कि अपनी कल्पनाशीलता से उपन्यास के अन्य पक्षों को भी रमणीयता से परिपूर्ण कर दिया है.

उपन्यास का विषय पाठकों के बीच लगातार चर्चा का विषय बना हुआ है. पाठक एक ओर जहाँ उपन्यास में वर्णित प्रेमख्यान के मार्मिक पक्ष से भावविव्हल हो रहे हैं तो वहीँ दूसरी ओर ताजमहल को गढ़ने वाले तथा इतिहास द्वारा भुला दिए गए कारीगरों के श्रम की उपेक्षा के मुद्दे को पढ़कर उस पर विचार करने को प्रतिबद्ध हो रहे हैं.

उपन्यास की कथा दो स्तरों पर चलती है, एक ओर रोमानी सी प्रेमकथा है जो की पूर्णेंदु शेखर ओर मधुरिमा चटर्जी के बीच घटित होती है और दूसरी ओर पूर्णेंदु शेखर द्वारा रचित उपन्यास ‘ताजमहल’ के किरदारों का संसार. उपन्यास में दो कथा समानान्तर चलती है. उपन्यास में कथा अतीत और वर्तमान की आवाजाही के कसावट पर पूरी तरह खरी उतरी है. एक ओर कथा पाठकों को मुग़ल काल में ले जाती है, जहाँ मुग़ल काल का पूरा परिदृश्य, तहजीब, सभ्यता, भाषादी से पाठक परिचित होता है. वहीँ कथा जब अतित से फिर वर्तमान की ओर बढती है तो पूरा का पूरा परिदृश्य आधुनिक प्रतिमानों से ओत-प्रोत हो उठता है जैसे कथा आधुनिक संसार में प्रवेश कर जाती है. यह जो अतीत और वर्तमान का अपना-अपना दौर उपन्यास में वर्णित हुआ है, उसका शिल्पगत प्रयोग बेजोड़ है.

उपन्यास में प्रेम्ख्यान भले ही असफल हो जाता है लेकिन उपन्यास में ताजमहल का डिज़ाइन बनाने वाले उस्ताद ईशा और शाहजहाँ की बेटी जहांआरा की प्रेम कहानी को इस तरह प्रस्तुत किया गया है कि इसमें एक कलाकार का द्वंद्व उसकी अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति हो जाती है. उपन्यास में कलाकार के मनोविज्ञान को बहुत बारीकी से उकेरा गया है. और यह नज्म-

‘एक शहंशाह ने बनवा के हँसी ताजमहल
सारी दुनिया को मोहब्बत की निशानी दी है’

शकील साहब की इस नज्म से आगे की भी सोचने के लिए पाठक को मजबूर करता है कि ताजमहल केवल मोहब्बत की निशानी मात्र नहीं है, उसके आंसू भी हैं और हमें उसके दोनों पक्षों पर विचार करना चाहिए.

जिसका जिक्र साहिर थ्ळअलुधियानवी साहब ने भी अपनी नज्म में किया है-‘एक शहंशाह ने दौलत का सहारा लेकर हम गरीबों की मोहब्बत का उड़ाया है मजाक’

उपन्यासकार ने इस ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करने की कोशिश की है. बतौर उपन्यास-‘ताजमहल की कहानी ख़त्म हो गयी. उस्ताद ईसा का नाम पता नहीं चला. इतिहास की किताबों में केवल उनका नामोल्लेख होता है.’

उपन्यास में उपन्यासकार ने इलाहबाद शहर के साहित्यिक समाज को भी भरपूर रेखांकित किया है-‘इलाहबाद साहित्य संगीत और अध्यात्म का संगम है. यहाँ गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम है.सरस्वती

नदी का भौतिक अस्तित्व भले ही न हो लेकिन इलाहबाद के कण-कण में सरस्वती विद्यमान है. इलाहबाद को पूरब का ऑक्सफ़ोर्ड कहा जाता है.'

उपन्यास में इलाहबाद विश्वविद्यालय और विद्वत समाज तथा साहित्यिक गतिविधियों का बराबर जिक्र मिलता है. कोई भी रचना अपने समय के यथार्थ को दर्शाती है इस दृष्टि से भी 'ताजमहल के आंसू' एक सफल कृति है.

किसी भी रचना का भाषा और शिल्प वह पक्ष है जो पाठक समुदाय को अपनी और आकृष्ट करने का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है. इस उपन्यास का भाषा और शिल्प बेजोड़ है. जब कथा मुग़ल काल में प्रवेश करती है तो भाषा उर्दूनिष्ठ हो जाती है और जैसे ही कथा पूर्णेंदु शेखर के समय में आती है भाषा शुद्ध कहदी बोली और तत्सम प्रधान हो उठती है, उपन्यास में भाषा का यह प्रयोग दर्शनीय है.

आचार्य रामचंद्र शुक्ल, 'प्रकृति को मानव जीवन के सामानांतर उसके जीवन को प्रभावित एवं प्रेरित वाला एक तत्व मानते हैं' यह उपन्यास अपने परिवेश को न केवल शामिल करता है बल्कि अपने आस-पास की प्रकृति को पूरी तल्लीनता से वर्णित भी करता है-'चरों ओर सुनहरी धूप फैली हुई थी. हवा में हलकी सी सिहरन थी.झील का पानी लहरा रहा था. ...'

यदि सम्पूर्ण रूप से देखें 'ताजमहल के आंसू' प्रेम कथा के आवरण में सामाजिक यथार्थ और सृजनशील मन के अंतर्द्वन्द्व को दर्शाने वाला उपन्यास है.

दिल्ली यूनिवर्सिटी कोर्स में शामिल करेगा दिव्यांग साहित्य

टाइम्स ऑफ इंडिया

इस कोर्स का मकसद है कि अंडरग्रैजुएट स्टूडेंट्स संस्कृति और साहित्य को एक नए नजरिए से पढ़ें। वे साहित्य में दिव्यांगता के रिप्रजेंटेशन को और एक्सप्लोर करें।

दिल्ली यूनिवर्सिटी का अंग्रेजी विभाग अपने कोर्स में दिव्यांग साहित्य को जोड़ने जा रहा है। अंडरग्रैजुएट कोर्स के संशोधित पाठ्यक्रम में अब दिव्यांगों से संबंधित कॉन्टेंट को पढ़ाया जाएगा। इसका मकसद है कि छात्र साहित्य को दिव्यांगता के चश्मे से देख सकें।

इस कोर्स का मकसद है कि अंडरग्रैजुएट स्टूडेंट्स संस्कृति और साहित्य को एक नए नजरिए से पढ़ें। वे साहित्य में दिव्यांगता के रिप्रजेंटेशन को और एक्सप्लोर करें। इसके साथ ही उनके आस पास रह रहे दिव्यांग लोगों के प्रति उनके बर्ताव में कुछ बदलाव आए। पिछले दो दशकों में साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययनों ने ऐसे नए दरवाजें खोले हैं जहां से सामान्य और दिव्यांग लोगों के बीच की नकारात्मक धारणा को चुनौती दी जा सकती है।

विभाग ने कहा कि इस पाठ्यक्रम के अंत तक, छात्रों को दिव्यांग व्यक्तियों के मुद्दों और चिंताओं की समझ हासिल करने में सक्षम होना चाहिए। एचओडी कुमार ने कहा कि बीए और एमए दोनों स्तरों पर जाति पर पाठ्यक्रमों की भी योजना बनाई जा रही है।

ये किताबें होंगी शामिल

ट्राइंग टू ग्रो - फिरदौस कांगा

द स्टोरी ऑफ माइ लाइफ- हेलन केलर

माई लिप्स डोन्ट मूव- टीटो मुखोपाध्याय

डॉ. बी.आर. अंबेडकर विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में ' स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी साहित्य' विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन

आज़ादी के अमृत महोत्सव के उपलक्ष्य में आयोजित स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी साहित्य विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन आज दिनांक ६ जून २०२२ को डॉ. बी.आर. अंबेडकर विश्वविद्यालय दिल्ली में किया गया । कथाकार चित्रा मुद्गल ने दो दिवसीय संगोष्ठी के आगामी सत्रों का आरंभ किया...

स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी साहित्य विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी

नई दिल्ली, जागरण संवादादाता। आज़ादी के अमृत महोत्सव के उपलक्ष्य में आयोजित स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी साहित्य विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन आज दिनांक ६ जून, २०२२ को डॉ. बी.आर. अंबेडकर विश्वविद्यालय दिल्ली में किया गया । कार्यक्रम का उद्घाटन डॉ बी आर अंबेडकर विश्वविद्यालय की माननीय कुलपति प्रोफेसर अनु सिंह लाठर द्वारा दीप प्रज्वलित कर किया गया। इस मौके पर उन्होंने अपने स्वागत उद्बोधन से देश के कोने-कोने से आए विभिन्न प्रतिष्ठित संस्थानों के विद्वानों का आभार व्यक्त किया।

एयूडी साहित्य अध्ययन पीठ के अधिष्ठाता प्रोफेसर सत्यकेतु सांकृत ने अपने वक्तव्य में स्वाधीनता आंदोलन और उसके महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए हिंदी साहित्य में उसके परिदृश्यों के पुनर्मूलयांकन पर ज़ोर दिया। तत्पश्चात इसी क्रम में उद्घाटन सत्र के विशिष्ट वक़्ता प्रोफेसर नंदकिशोर पांडेय ने अपने वक्तव्य से सभी श्रोताओं को अभिभूत किया और आधुनिककालीन साहित्य में स्वाधीनता आंदोलन के बिंबो को प्रस्तुत किया। उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता कर रहीं वरिष्ठ कथाकार चित्रा मुद्गल ने हिंदी साहित्य व स्वाधीनता आंदोलन की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करके दो दिवसीय संगोष्ठी के आगामी सत्रों का आरंभ किया।

एयूडी कुलसचिव डॉ० नितिन मलिक ने अपने धन्यवाद वक्तव्य में स्वाधीनता आंदोलन व हिंदी साहित्य के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए देश के विभिन्न संस्थानों से आए प्रतिष्ठित विद्वानों के प्रति आभार प्रकट करते हुए उद्घाटन सत्र का समापन किया।

इसी के पश्चात द्वितीय सत्र का शुभारंभ हुआ जिसमें मुख्य राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए नहीं था और उस समय औपनिवेशिक शासन था वह अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिये विभाजन तथा फुट का सहारा ले लेता है और कौमी बटवारा को पाटने की कोशिश प्रेमचंद का साहित्य था।

इसी कड़ी में इग्नू हिंदी विभाग से पधारे प्रोफेसर नरेंद्र मिश्र ने अपना वक्तव्य रखा और हिंदी की कुछ प्रमुख कहानियों का ज़िक्र किया और कहा प्रेमचंद भी ग़दर जैसी स्थितियों से बचते हैं और साहित्य में हमें भी अपने आत्मा की रक्षा करनी चाहिए । फिर अगले वक़्ता के रूप में दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्रोफेसर दीपक त्यागी रहे उन्होंने हिंदी कहानियों को माध्यम बनाते हुए अपनी बात रखी और आखिरी वक़्ता हिंदी की प्रख्यात उपन्यासकार मैत्रेयी पुष्पा रहीं जिन्होंने स्वाधीनता से जुड़े जनजागरण की बात कही और भारत को बदहाल उस समय की स्थिति का हवाला देते हुए बंग महिला कहानीकार और कुंभ में छोटी बहू कहानी की चर्चा की और कहा इस समय के कथाकारों में जनता और जनशक्ति की चेतना थी जिसमें स्वाधीनता आंदोलन की गहरी झलक दिखलायी पड़ती थी इसी के बात उन्होंने अपनी बात को विराम दिया और धन्यवाद ज्ञापन कपिल आर्य ने किया ।

अगले दिन दिनांक ७ जून २०२२ के प्रथम सत्र की शुरुआत स्वाधीनता का साहित्य और हिंदी कविता विषय पर केंद्रित रहा पहले वक़्ता के रूप में मुंबई विश्वविद्यालय हिंदी विभाग से पधारे प्रोफेसर करुणाशंकर उपाध्याय जी रहे। उन्होंने इस विषय पर अपना बीज वक्तव्य दिया। उन्होंने कहा आज स्वाधीनता आंदोलन पर हम संगोष्ठी कर रहे हैं इसका मतलब की हम स्वाधीन हैं । उन्होंने १८५७ की क्रांति का जिक्र करते हुए अंग्रेजों के समय में लागू हुए कॉमन सिविल कोड कानून का जिक्र किया और कहा वो समान आचार संहिता थी और डॉ० शिव कुमार मिश्र ने उसे हिन्दू नवजागरण कहा ।

भारतेंदु जैसे जनवादी लिखते हैं 'अंग्रेज राज सुख साज' शीर्षक कविता का जिक्र किया और कहा १८५७ के बाद भारतीय राष्ट्रवाद का उभार आया और कविता के माध्यम से भारत के भौगौलिक विस्तार को भी बताया और भारतेंदु मंडल के कवियों का जिक्र किया कि किस प्रकार उन्होंने अपनी लेखनी स्वाधीनता के स्वर को लिखा तथा इस सत्र के आखिरी में अध्यक्षीय उद्बोधन के लिए दिल्ली विश्वविद्यालय हिंदी विभाग से पधारीं प्रोफेसर कुमुद शर्मा थीं। उन्होंने कहा कि स्वाधीनता के साहित्य पर ऐसी संगोष्ठी किसी शैक्षणिक प्रांगण में हो तो उसका महत्व कुछ और ही होता है । हम स्वाधीनता के समय लिखे गए साहित्य को देखें तो उस समय स्वराज और प्रथम ~~स्वाधीनता संग्राम के सभी पक्षों को~~ साहित्य में समेटा गया तथा कवियों ने संस्कृति के बिखरे स्वरूप को राष्ट्रीयता के साथ पिरोना शुरू किया । इसमें हमारे कवियों ने बड़ा योगदान दिया है । उन्होंने उस समय के कवियों की पंक्तियों का उदाहरण भी दिया और कहा भागवत भक्ति ने राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया है और हमारी राष्ट्रीय चेतना स्वभाषा और स्वदेशी रही है। हमारे साहित्य के निर्माताओं का अपने लेखन में स्वाधीनता विषयक साहित्य लिखने से स्वतंत्रता आंदोलन को बहुत मजबूती मिली। इसी के साथ यह सत्र समाप्त हुआ और उन्होंने सभी का हृदय से धन्यवाद किया ।

इसी के साथ द्वितीय सत्र का आरंभ हुआ और हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग से पधारे प्रोफेसर आलोक पांडेय ने अपना बीज वक्तव्य देकर इस सत्र की शुरूवात की उन्होंने कहा महात्मा गांधी स्वाधीनता आंदोलन के दधिची थे। उन्होंने भारत में औपनिवेशिकता पर अपनी बात रखी साथ ही हिंदी सिनेमा के माध्यम से उन्होंने स्वाधीनता के साहित्य की अवधरणा को स्पष्ट किया। पश्चिमी विद्वानों जैसे पिकासो के मत रखे एवं स्वाधीनता पर लिखे गए पूरे साहित्य की सिनेमाई माध्यम को भी बताते हुए पूरी अवधारणा स्पष्ट की और वो आत्मनिर्भर भारत के मूल बिंदु सिनेमा के पुरुष दादा साहब फाल्के के मूल में रखकर देते हैं। क्योंकि यह सब स्वाधीनता आंदोलन का एक प्रमुख हिस्सा थे। फिर अंतिम वक़्ता जम्मू से आयी डॉ० अनिला सिंह ने इस सत्र का अध्यक्षीय उद्बोधन दिया और कहा क्रांति के लिए साहित्य की धार को तेज करना पड़ेगा।इसी तेज धार से ही हमें स्वाधीनता मिली थी । इस पर उन्होंने चर्चा करते हुए संगोष्ठी के आखिरी सत्र का समापन किया। उसके बाद अंबेडकर विश्वविद्यालय दिल्ली के साहित्य अध्ययन केंद्र अधिष्ठाता प्रोफेसर सत्यकेतु सांकृत ने सभी के प्रति आभार प्रकट किया और विशेष तौर पर अंबेडकर विश्वविद्यालय दिल्ली की कुलपति प्रोफेसर अनुसिंह लाठर के प्रति हृदय से धन्यवाद और आभार प्रकट करते हुए कार्यक्रम के दूसरे दिन का भी समापन किया ।